जातक

मूल पाली भाषा से प्रथम हिन्दी अनुवाद

—:0:—

अनुवादक

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

—:0:—

प्रकाशक

दयानन्द प्रेस,

चङ्गड़ मुहल्ला, लाहौर।

१६३६

जातक

मूल पाली भाषा से प्रथम हिन्दी अनुवाद

—:o:—

अनुवादक

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

—:o:—

प्रकाशक

दयानन्द प्रेस,

चङ्गड़ मुहल्ला, लाहौर ।

१९३६

मूल्य १)

Printed at the Dayanand Press, Changar Mohalla, Lahore,
by Pt. Nanak Chand Bhanot M. A.
& Published by him.

विषयानुक्रमणिका

५. जातक

प्राक्कथन

[लेखक—डाक्टर लक्ष्मण स्वरूप एम. ए., डी. फिल. (आक्सफोर्ड), आफिसर ऐकेडिमी (फ्रांस), आचार्य संस्कृत साहित्य, पञ्जाब विश्वविद्यालय, लाहौर]

वैदिक वाङ्मय आर्यजाति के प्रामाणिक धर्म-ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ श्रुति के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये संहिता ब्राह्मण और उपनिषद् रूप से तीन भागों में विभक्त किए जा सकते हैं। इसी प्रकार बौद्धों के प्रामाणिक धर्म-ग्रन्थ भी तीन भागों में बांटे जा सकते हैं। उन को त्रिपिटक या तिपिटक कहते हैं। पिटक का यौगिक अर्थ है 'टोकरा', पर यह 'विभाग' का पर्यायवाची शब्द बन गया है। 'त्रिपिटक' का अर्थ है 'तीन विभाग'। जिस प्रकार वैदिक वाङ्मय में संहिता एक विभाग है और शाकल संहिता, वाजसनेयि संहिता, तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणीय संहिता, काठक संहिता, पैप्पलाद संहिता इत्यादि अनेक संहिताएं हैं, इसी प्रकार त्रिपिटक का पहला विभाग है विनयपिटक और उस में बहुत से ग्रन्थ शामिल हैं।

I. विनयपिटक विभाग में नीचे लिखे ग्रन्थ सम्मिलित हैं:—

क. सुत्तविभङ्ग—इस में १. महाविभङ्ग और २. भिक्खुणीविभङ्ग दो भाग हैं।

ख. खन्धक—इस में १. महावग्ग और २. चुल्लवग्ग नाम के दो भाग हैं।

ग. परिवारपाठ अथवा केवल परिवार।

विनयपिटक में बौद्ध-संघ के नियम हैं। इस का प्राचीनतम अंश पातिमोक्ख है। इस में मन वचन और शरीर से किए गए पापों के प्रायश्चित्त का वर्णन है। प्रति पक्ष बौद्ध भिक्षुओं की सभा होती थी। उस में प्रत्येक भिक्षु को पक्ष में किए हुए पापों का सभा में वर्णन करना होता था। इस कार्य-क्रम को 'उपोसथ' कहा जाता था और महात्मा बुद्ध के समय से ही यह क्रम चला आता था।

जिस प्रकार वैदिक वाङ्मय का दूसरा विभाग ब्राह्मण हैं जिन में ऐतरेय, शाङ्खायन, शतपथ, पञ्चमहाविंश इत्यादि अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, उसी प्रकार त्रिपिटक के दूसरे विभाग का नाम है सुत्तपिटक।

II. सुत्तपिटक में नीचे लिखे ग्रन्थ सम्मिलित हैं:—

क. दीघनिकाय ख. मज्झिमनिकाय ग. संयुत्तनिकाय घ. अंगुत्तरनिकाय ङ खुद्दकनिकाय।

खुद्दकनिकाय में १५ ग्रन्थ सम्मिलित हैं। १. खुद्दकपाठ २. धम्मपद ३. उदान ४. इतिवुत्तक ५. सुत्तनिपात ६. विमानवत्थु ७. पेतवत्थु ८. थेरगाथा

९. थेरीगाथा १०. जातक ११. निद्देस १२. पटिसम्भिदामग्ग १३. अपदान १४. बुद्धवंश १५. चरियापिटक ।

पहले चार निकायों में महात्मा बुद्ध के संवादों और व्याख्यानों का संग्रह है। इतिहास भी इन में पाया जाता है । महात्मा बुद्ध का संवाद या व्याख्यान किस स्थान पर किस अवसर पर हुआ यह वार्ता भी संक्षेप से मिलती है।

जैसे वैदिक वाङ्मय का तीसरा विभाग उपनिषद् हैं उसी प्रकार त्रिपिटक के तीसरे विभाग का नाम है अभिधम्मपिटक ।

III. अभिधम्मपिटक के सात खण्ड हैं; १. धम्मसंगणि २. विभङ्ग ३. धातुकथा ४. पुग्गलपञ्त्ति ५. कथावत्थु ६. यमक ७. पट्ठानपकरण ।

इस से सिद्ध हुआ कि जातक त्रिपिटक के दूसरे विभाग अर्थात् सुत्तपिटक के पांचवें निकाय, खुद्दकनिकाय का एक अंश हैं । इस प्राक्कथन में जातकों से हमारा विशेष प्रयोजन है, इसलिए जातक सम्बंधी कुछ वर्णन आवश्यक प्रतीत होता है।

'जातक' शब्द 'जात' और 'क' के मिलने से बना है। 'जात' शब्द 'जन्' धातु से क्त प्रत्यय लगा कर बनता है । इसका अर्थ है 'पैदा हुआ' । 'क' प्रत्यय छोटेपन का वाचक है—जैसे ढोल से ढोलक, छोटे बालक को भी जातक कहते हैं। पर यहां 'क' प्रत्यय स्वार्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसलिये 'जातक' शब्द का भी वही अर्थ हुआ जो 'जात' शब्द का है। 'जातक' का रूढी अर्थ है 'महात्मा बुद्ध के पूर्व-जन्म की कहानी'। ऐसी कहानियों के संग्रह रूपी पुस्तक का नाम भी 'जातक' है। जातक नाम की पुस्तक में ५४७ कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों में प्रायः महात्मा बुद्ध के पूर्व-जन्मों का वृत्तान्त है । बुद्ध बनने के समय से पहले वह आत्मा जिसे बुद्ध अवश्य बनना है बोधिसत्त (०सत्त्व) कहलाती है। बुद्ध बनने से पहले गौतम भी बोधिसत्त ही थे। इन कहानियों में बोधिसत्त गौतम प्रायः नायक अथवा पात्र हैं। प्रत्येक कहानी का आरम्भ इस प्रकार होता है—अमुक समय पर (जब ब्रह्मदत्त काशी में राज्य करता था) बोधिसत्त ने अमुक योनि में जन्म ग्रहण किया (महारानी के गर्भ से जन्म लिया) ।

असली जातक ग्रन्थ अब लुप्त हो चुका है। जो ग्रन्थ अब उपलब्ध होता है वह एक व्याख्या मात्र है। इस व्याख्या का नाम है 'जातकट्ठवण्णना' । यह व्याख्या लङ्का-द्वीप के किसी भिक्षु की रची हुई है। भिक्षु का नाम सुरक्षित नहीं रहा । यह व्याख्या एक प्राचीनतर व्याख्या 'जातकट्ठकथा' के आधार पर रची गई

है। 'जातकट्ठवण्णना' पहले लङ्का-द्वीप की भाषा में लिखी गई थी, फिर पाली भाषा में लेखक ने स्वयं ही इस का अनुवाद कर दिया। इस व्याख्या में गद्य पद्य मिश्रित हैं। पद्यों का विशेष नाम है गाथा। गाथा प्राचीन काल से परम्परा से चली आई कविता है। यह भिक्षु की रचना नहीं है। गद्य का भी बहुत सा अंश प्राचीन काल से ही चला आया है पर बहुत सा अंश भिक्षु की रचना भी कहा जा सकता है, इसलिये भिक्षु को संकलन-कर्ता कहना अधिक उपयुक्त है।

इस व्याख्या में जितनी भी जातक-कहानियां मिलती हैं उन में प्रायः पांच भाग होते हैं। १—उपोद्घात—इस का पाली नाम है 'पच्चुप्पन्नवत्थु'। इस में यह बतलाया जाता है कि अमुक अवसर पर महात्मा बुद्ध ने यह कहानी कही। यह कहानी वर्तमान समय की होती है। २—अतीतवत्थु—इस में बोधिसत्त के पूर्व-जन्म का वृत्तान्त होता है और प्रायः इसकी रचना गद्य में ही होती है। ३—गाथा—ये प्रायः पूर्व-जन्म के वृत्तान्त के अन्तर्गत होती हैं। प्राचीन समय से परम्परा द्वारा सुरक्षित ये पाली भाषा के पद्य हैं। ४—वेय्याकरण—इस में गाथाओं के शब्दों का अक्षरशः अनुवाद तथा व्याख्या होते हैं। ५ समोधान—इस में पूर्व वृत्तान्त के पात्रों का वर्तमान समय के पात्रों के साथ सम्बन्ध बतलाया जाता है। यह संबन्ध महात्मा बुद्ध द्वारा ही कहा जाता है।

सभी कहानियां एक जैसी नहीं हैं। कुछ बहुत ऊंचे दरजे की हैं। उन की रचना-रीति श्रेष्ठ है। उन की भाषा ललित है। उन में मनोरञ्जन की मात्रा भी है। उपदेश भी है। वे शिक्षा-प्रद भी हैं। उन में उपहास भी है। तीव्र कटाक्ष भी किए गये हैं। कुछ ऐसी भी हैं जो नीन्द न आने पर सुषुप्ति-जनक औषधि का काम देती हैं, जिनकी रचना विषम, भाषा शुष्क, भाव भद्दे और दृष्टि-कोण संकीर्णता से भरपूर है।

यह जातक ग्रन्थ ईसा से दूसरी या तीसरी शताब्दी पहले का है। यदि पुस्तक रूप में वर्तमान संग्रह विद्यमान न भी हो, तो भी जातक कहानियां इतनी पुरानी तो अवश्य ही होंगी। अजन्ता की कन्दराओं में, अमरावती, सांची और भर्हुत के स्तूपों की दीवारों पर जो चित्र खोदे गये हैं वे जातकों के दृश्य हैं। स्याम देश के सुखोदय मन्दिर, बरमा देश के पगान मन्दिर, और जावा द्वीप के बोरो-बुदुर मन्दिर के सहस्रों चित्र जातकों के दृश्य हैं। चीनी यात्री फा-ह्यीन ने लङ्का-द्वीप में अभयगिरी में ५०० जातकों के चित्र देखे थे। चीनी यात्री ह्यून-साङ्ग ने

भारत में स्थान २ पर स्थित, अपनी आंखों देखे, ऐसे स्तूपों का वर्णन किया है जिन पर जातकों के दृश्य चित्रों के रूप में खोदे गये थे।

जातक ग्रन्थ २२ निपातों में विभक्त है। निपातों का क्रम गाथाओं की संख्या के अनुसार है। पहले निपात में १५० कहानियां हैं पर प्रत्येक में एक ही एक गाथा है। दूसरे निपात में १०० कहानियां हैं पर प्रत्येक में दो दो गाथाएं हैं। तीसरे निपात में ५० कहानियां हैं और प्रत्येक में तीन २ गाथाएं हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर निपातों में कहानियों की संख्या घटती जाती है और गाथाओं की संख्या बढ़ती जाती है। यह क्रम वैज्ञानिक नहीं है। कहीं २ गाथाओं की संख्या निपात-क्रम की संख्या से बढ़ भी जाती है। इस से सिद्ध है कि वर्तमान क्रम ठीक नहीं रहा और पीछे से परिवर्तित हो गया है। मूल-क्रम में गाथाओं की संख्या निपात-क्रम के अनुसार ही रही होगी।

जातक की कुछ कहानियां विनयपिटक, सुत्तनिपात, अपदान इत्यादि ग्रन्थों से ली गई हैं। बहुत सी कहानियां तन्त्राख्यायिका, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश इत्यादि संस्कृत पुस्तकों की कहानियों से मिलती हैं। कुछ रामायण, महाभारत के आधार पर हैं। विधुरपण्डित जातक में महाभारत के पात्र विदुर का वर्णन है। दशरथ जातक में रामायण के पात्र दशरथ की कहानी है।

बौद्ध-धर्म संसार के महान् धर्मों में से एक है। बौद्ध-धर्म के साथ ही साथ बौद्ध-साहित्य, बौद्ध-दर्शन, बौद्ध-कला इत्यादि भी संसार में फैले। बौद्ध-साहित्य में से जातकों का संसार-साहित्य पर बहुत ही प्रभाव पड़ा। प्राचीन यूनान देश के इतिहास-पिता हेरोडोटस के इतिहास-ग्रन्थों में, ईसप की कहानियों में, प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक ला फांतेन की पुस्तक में ऐसी कहानियां मिलती हैं जिनका उद्गम-स्थान जातक प्रतीत होते हैं। योरुप के प्रकाण्ड पण्डित तथा भारतीय साहित्य के इतिहास लेखक आचार्य विन्टरनिट्ज का मत है कि जातक केवल भारतीय साहित्य, सभ्यता तथा संस्कृति के ही नहीं, वरन् संसार-साहित्य, सभ्यता तथा संस्कृति के अध्ययन के लिये अमूल्य साक्ष्य प्रदान करते हैं और संसार-साहित्य तथा संसार-संस्कृति के इतिहास में जातकों का दरजा बहुत ऊंचा है। ऐसे ग्रन्थ रत्न का स्वाध्याय न केवल मनोरञ्जक है बल्कि शिक्षाप्रद है।

योरुप की भाषाओं में जातकों के अनेक सुन्दर अनुवाद मिलते हैं। खेद है कि भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ऐसे अमूल्य ग्रन्थ रत्न का कोई भी अनुवाद

अभी तक न हो पाया। यह पहला हिन्दी अनुवाद है जो हिन्दी प्रेमिओं की भेंट किया जा रहा है। यह अनुवाद त्रिपिटकाचार्य भदन्त राहुल सांकृत्यायन की प्रेरणा से भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने बड़े परिश्रम से मूल पाली भाषा से किया है। इस अनुवाद को सरल तथा सुन्दर बना कर भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने हिन्दी साहित्य में विशेष वृद्धि की है। पढ़ते समय यह अनुवाद अनुवाद प्रतीत नहीं होता। मूल-ग्रन्थ ही मालूम होता है। मूल-ग्रन्थ के पढ़ने से जो प्रभाव मन पर पड़ता है वही या वैसा प्रभाव अनुवाद के पढ़ने से भी मन पर पड़े तो अनुवाद को उत्तम समझना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब अनुवाद में वे सारे गुण और विशेषताएं हों जो मूल में विद्यमान हैं। अनुवाद मूल-ग्रन्थ के अनुरूप हो इस से बढ़ कर किसी भी अनुवाद की प्रशंसा नहीं हो सकती। इस अनुवाद में मूल-ग्रन्थ की झलक का साक्षात् प्रतिबिम्ब है। इस अनुवाद को यदि मूल-ग्रन्थ का दर्पण कहें तो उस में कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी। मेरी राय में इस अनुवाद द्वारा भदन्त आनन्द जी ने हिन्दी अनुवाद-साहित्य में एक नये युग का सूत्रपात कर दिया है। आशा है कि हिन्दी-प्रेमी संसार-साहित्य-रत्न रूपी जातक के इस पहले अनुवाद को अपनायेंगे और भदन्त जी के परिश्रम से लाभ उठाकर अपने हित की साधना करेंगे।

—:o:—

जातक

भदन्त त्रिपिटकाचार्य आनन्द कौसल्यायण ।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स ।

उपोद्घात

लाखों जन्मों में जिन महर्षि लोकनाथ ने संसार का अनन्त हित किया, उन के चरणों में प्रणाम करता हूं; धर्म को हाथ जोड़ता हूं; तथा सब से आदरणीय (भिक्षु-) संघ की पूजा करता हूं। (इन तीनों रत्नों * के नमस्कारादि (से प्राप्त) इस पुण्य के प्रताप से सब उपद्रवों का नाश हो। प्रकाश-स्वरूप महर्षि (=बुद्ध) ने अपण्णक आदि जातकों को पहले कहा, जिन्हें कि लोक के उद्धार की इच्छा से, नायक, शास्ता (=बुद्ध) ने बुद्ध होने के लिए आवश्यक अनन्त सामग्री की प्राप्ति के लिए पूरा किया। उन सब पूर्व जन्म की कथाओं के संग्रह को धम (-ग्रन्थ) संग्रह करने वालों † ने जातक नाम से संगायन किया। बुद्ध-धर्म की चिर-स्थिति चाहने वाले अर्थदर्शी स्थविर, (अपने) सहवासी तथा सहपाठी, शान्त चित्त, पण्डित बुद्धिमित्त और महिशासक ‡ वंश में उत्पन्न, शास्त्रज्ञ, शुद्ध-बुद्धि भिक्षु बुद्धदेव के कहने से महाविहार** वालों के मत के अनुसार व्याख्या करूंगा। मेरी इस व्याख्या को सब सज्जन अच्छी तरह ग्रहण करें।

जातक की यह व्याख्या 'दूरे निदान', 'अविदूरे-निदान', 'सन्तिके-निदान'—इन तीनों निदानों में वर्णित है, और जो इसे इस तरह से सुनते हैं, वे आरम्भ से भली प्रकार समझने के कारण ठीक समझते हैं। इस लिए हम इसे इन तीनों निदानों में विभक्त कर के कहेंगे। पहले इन तीनों निदानों के वर्गीकरण को ही समझ लेना चाहिए। भगवान् दीपङ्कर †† के चरणों में जीवन अर्पण करने के समय से ले कर वेस्सन्तर ‡‡ का शरीर छोड़ तुषित-स्वर्ग लोक में उत्पन्न होने तक की

---

* बुद्ध, धर्म तथा संघ—यह तीन रत्न हैं।

† अपण्णक (जातक), प्रथम जातक।

‡ बुद्ध-निर्वाण के बाद उन के उद्देश्यों को संग्रह करने वाले।

** प्राचीन अठारह बौद्ध सम्प्रदायों में से एक।

†† पुराने बौद्ध-सम्प्रदायों में से, सब से प्राचीन स्थविर सम्प्रदाय का एक भेद।

‡‡ देखो वेस्सन्तर जातक (५३८)।

(जीवन-) कथा 'दूरे-निदान' कही जाती हैं। तुषित-लोक से च्युत हो कर बोध गया (बोधि-मण्ड) में बुद्ध होने तक की कथा 'अविदूरे-निदान' कही जाती है। (उपरान्त) 'सन्तिके-निदान' तो भिन्न २ स्थानों में विचरते हुये उन २ स्थानों पर जो जीवन कथा मिलती है वह।

१. सुमेध रचित दूरेनिदान (बाल्य वैराग्य)

'दूरेनिदान' इस प्रकार है :—

लाखों असंखेय्य कल्प चौकड़ी पहले अमरवती नाम की एक नगरी थी। उस नगरी में सुमेध नामक ब्राह्मण रहता था। वह माता-पिता दोनों के कुल से सुजात, शुद्ध-जन्मा, सात पीढ़ी तक कुल दोष से रहित, सुन्दर, दर्शनीय, मनोहर, उत्तम रंग के सौन्दर्य से युक्त था। उस ने और कोई काम न कर ब्राह्मणों ही की विद्या सीखी थी। बचपन में ही उस के माता-पिता मर गये। तब खज़ानची (=राशि-वर्धक अमात्य)* बही-खाता (=आय-पुस्तक) ले कर आया और सोना, चांदी, मोती आदि से भरी कोठरियों को खोल खोल कर कहने लगा—'इतना मातृ-धन है। इतना पितृ-धन है। इतना दादा-परदादा का धन है...... । इस प्रकार सात पीढ़ी तक के धन को कह कर बोला, "कुमार लो इसे सम्भालो।"

सुमेध पण्डित ने सोचाः—"इस धन को संग्रह कर मेरे पिता पितामह आदि परलोक जाते हुये एक पैसा (=कार्षापण) भी साथ नहीं ले गये, लेकिन मुझे इसे साथ ले कर ही जाना चाहिए।"

उस ने राजा को कह नगर में ढंढोरा पिटवाया; और जन-समूह को दान दे तापसों के संप्रदाय में साधु हो गया। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए यहां सुमेध की कथा का कहा जाना ज़रूरी है। सुमेध की कथा कुछ न कुछ बुद्ध-वंश † में आई है, लेकिन उस कथा को पद्यमय (=गाथा-सम्बन्ध में आई) होने से, (उस का) अर्थ ठीक स्पष्ट नहीं होता। इस लिए हम उस कथा को बीच २ में उन गाथाओं के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहेंगे।

लाखों असंखेय्य कल्प-चौकड़ी पूर्व इस प्रकार के शब्दों से युक्त अमरवती अथवा अमर नामक एक नगर था, जिस के बारे में बुद्ध-वंश में कहा है :—

---

* बही खाता रखने वाला राशि-वर्धक नामक मन्त्री।

† सुत्रपिटक के खुद्दक-निकाय का एक ग्रन्थ।

लाखों असंख्येय कल्प-चौकड़ी पूर्व एक मनोरम, दर्शनीय, दस शब्दों से युक्त, अन्नपान से संयुक्त 'अमर' नामक नगर था।

वह 'दस शब्दों से युक्त' का अर्थ है—हाथी-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरि-शब्द, मृदङ्ग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शङ्ख-शब्द, ताल-शब्द, खाने पीने का शब्द—इन दस शब्दों से युक्त। इन दसों शब्दों को एकत्र ग्रहण करने से:—

हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द और भेरि, शङ्ख, रथ आदि शब्द, खाने पीने का शब्द और अन्न पान का घोष।

'बुद्ध-वंश' में इस गाथा को कह कर :—

"सर्वाङ्ग सम्पूर्ण, सब भोगों से युक्त, सप्त रत्नों से सम्पन्न, नाना जन समाकुल, देव नगर की तरह वैभवशाली, पुण्यात्माओं के निवास, अमरवती नाम नगर में, करोड़ों का मालिक बहुत से धन धान्य वाला, वेद-पाठी (=अध्यापक) मन्त्रधर, तीनों वेदों में पारङ्गत, लक्षण इतिहास और सद्धर्म में पूर्णता-प्राप्त सुमेध नामक ब्राह्मण रहता था।"

एक दिन महल के ऊपर के सुन्दर कोठे पर आसन मार कर एकान्त में बैठा हुआ सुमेध पण्डित सोचने लगा—'पण्डित! जन्म ग्रहण करना दुःख है। प्रत्येक जन्म में मृत्यु दुःख है। उत्पन्न होना, बूढ़ा होना, रोगी होना (तथा) मरना; मेरे लिये अनिवार्य है। अतः मुझे चाहिए कि मैं उस अमृत महानिर्वाण को खोजूं जो उत्पत्ति, जरा, व्याधि, दुःख तथा सुख से रहित है और शीतल तथा अमृत स्वरूप है। आवागमन से मुक्त होने का एक निर्वाण-मार्ग अवश्य होगा। इसी लिए कहा है :—

"तब मैं ने एकान्त में बैठ कर सोचा कि आवागमन तथा शरीर-त्याग—दोनों दुःख हैं। अतः उत्पत्ति, जरा और व्याधि से युक्त मैं, अजर, अमर (और) क्षेम (-स्वरूप) निर्वाण को खोजूं। अवश्य ही मुझे इस नाना प्रकार के गन्दगी से भरे, अपवित्र शरीर को छोड़ कर माया ममता रहित हो (चला) जाना होगा।"

"जो मार्ग है, वह होगा(=रहेगा) ही। वह न हो (ऐसा) नहीं हो सकता। संसार से मुक्ति के पाने के लिए मैं उसी मार्ग को खोजूंगा।"

वह आगे भी ऐसा सोचने लगा—"जिस प्रकार लोक में दुःख का प्रतिपक्षी सुख है, उसी प्रकार आवागमन (=भव) का प्रतिपक्षी आवागमन का अभाव

(=विभव) भी अवश्य होना चाहिए। जिस प्रकार गर्मी के रहने पर, उस को शान्त करने वाली ठंडक भी रहती है, इसी प्रकार राग आदि अग्नियों का शमन करने वाला निर्वाण भी अवश्य होगा। जिस प्रकार पाप का प्रतिपक्षी पुण्य तथा निर्दोषता है, उसी प्रकार इस पापी (=दुःख मय) जन्म के रहते सारे जन्मों के क्षय होने से जन्म रहित निर्वाण भी अवश्य होगा। इसी लिए कहा है :—

"जैसे यदि दुःख है, तो सुख भी है; वैसे ही आवागमन है तो आवागमन का अभाव भी है। जैसे गर्मी के रहने पर, उस के विपरीत शीतलता भी है, इसी प्रकार विविध अग्नि के रहते निर्वाण भी होना चाहिए। जिस प्रकार पाप के रहने पर पुण्य भी है; उसी प्रकार जन्म के रहने पर आवागमन से मुक्ति भी होनी चाहिए।

और भी सोचने लगा :—

जिस प्रकार मल के ढेर में डूबे मनुष्य को दूर से भी पांच रंगों के कमलों से आच्छादित तालाब को देख कर 'मुझे किस मार्ग से तालाब तक पहुंचना चाहिए' सोच तालाब को खोजना चाहिए। यदि वह न खोजे, तो उस में तालाब का दोष नहीं। इसी प्रकार सब मलों को धोने में समर्थ अमृत रूपी निर्वाण के महान् तालाब के रहते (यदि मनुष्य) उसे न खोजे, तो उस में अमृत रूपी निर्वाण के महान् तालाब का दोष नहीं। जिस प्रकार डाकुओं से घिरा हुआ मनुष्य भागने का रास्ता रहने पर भी, यदि न भागे तो वह रास्ते का दोष नहीं, उस आदमी का ही दोष है। इसी प्रकार यदि मलों से लिप्त मनुष्य निर्वाण की ओर ले जाने वाले कल्याण-मार्ग के रहते भी, उस मार्ग को न खोजे, तो वह मार्ग का दोष नहीं, उस आदमी का ही दोष है। जैसे रोग-ग्रस्त मनुष्य रोग चिकित्सक वैद्य के रहते भी, यदि उस वैद्य को ढूंढ कर रोग की चिकित्सा न कराये, तो वह वैद्य का दोष नहीं। इसी प्रकार जो (चित्त-) मल के रोग पीड़ित मनुष्य, मल के दूर करने के उपाय के जानकार आचार्य्य के विद्यमान् रहते भी (उन्हें) नहीं खोजता, तो यह उसी का दोष है, मल-निवारक आचार्य्य का दोष नहीं। इसी लिये कहा है :—

"जैसे गन्दगी में फँसा हुआ मनुष्य, पानी से भरे तालाब को (दूर से) देख कर भी, यदि उसे नहीं खोजता; तो वह तालाब का दोष नहीं। इसी प्रकार मल धो देने वाले अमृत-सरोवर के रहते भी, यदि मनुष्य उस सरोवर को नहीं

खोजता, तो वह उस अमृत-सरोवर का दोष नहीं। जैसे शत्रुओं से घिरा हुआ (मनुष्य) यदि भागने का मार्ग रहते भी नहीं भागता है, तो उस में मार्ग का दोष नहीं इसी प्रकार मलों से घिरा हुआ (मनुष्य) यदि कल्याणकारी मार्ग के रहते भी उस मार्ग को नहीं ढूंढता है, तो वह उस मार्ग का दोष नहीं। जिस प्रकार रोग से पीड़ित पुरुष, यदि चिकित्सक के विद्यमान रहते भी, उस रोग की चिकित्सा नहीं करता, तो वह चिकित्सक का दोष नहीं; इसी प्रकार मल के रोग से दुखी, पीड़ित पुरुष भी, यदि मल-निवारक आचार्य को नहीं खोजता, तो वह आचार्य का दोष नहीं।"

और भी सोचने लगा :—

"जैसे शौक़ीन आदमी गले में लगे हुए मैल को उतार कर सुख-पूर्वक जाता है, इसी प्रकार मुझे भी इस मलिन काय को छोड़ ममता रहित हो निर्वाण-नगर में प्रवेश करना चाहिए। जिस प्रकार स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल-मूत्र कर के न तो उसे अपने अङ्क (=उच्छंग) में ले कर जाते हैं, न उसे अपने पल्ले में ही बांध कर ले जाते हैं बल्कि उस के प्रति घृणा कर अनिच्छुक हो, उस (मल-मूत्र) को वहीं छोड़ जाते हैं, इसी प्रकार मुझे भी इस मलिन-काय को अनिच्छुक हो छोड़ अविनाशी (=अमृत) निर्वाण-नगर में प्रविष्ट होना चाहिए। जैसे मल्लाह लोग पुरानी नाव को बे परवाह हो छोड़ जाते हैं, इसी प्रकार मैं भी इस नौ छिद्रों से चूने वाले शरीर को छोड़ बे-परवाह हो निर्वाण-नगर में प्रवेश करूंगा। जैसे अनेक रत्नों को ले कर चोरों के साथ जाने वाला मनुष्य, अपने रत्नों के नाश होने के डर से, उन चोरों को छोड़ कर कल्याणकारी मार्ग ग्रहण करता है; इसी प्रकार यह जो शरीर है, सो यह भी रत्न लूटने वाले डाकुओं की तरह है। यदि मैं इस शरीर के प्रति लोभ रखूंगा, तो मेरा आर्य-मार्ग रूपी पुण्य (=रत्न) नष्ट हो जायगा। इस लिए मुझे इस डाकु के समान शरीर को छोड़ कर निर्वाण-नगर में प्रवेश करना चाहिये। इसी लिए कहा है :—

'जिस प्रकार मनुष्य मुर्दे को गले में बांधने से घृणा कर उसे स्वेच्छापूर्वक अपने आप खुशी से छोड़ जाये, उसी प्रकार मैं इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरे अपवित्र काय को बे-परवाह तथा आकांक्षा(=अर्थ) रहित हो छोड़ जाऊं। जैसे स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल को बिना किसी चाह अथवा आ-कांक्षा के छोड़ कर चले जाते हैं, इसी प्रकार मैं इस नाना प्रकार की गन्दगी से

भरे काय को पाख़ाने (=वच्चकुटि) में मल के समान छोड़ कर चल दूंगा । जैसे मल्लाह पुरानी, टूटी फूटी, पानी भर जाने वाली नाव को बिना किसी चाह या आकांक्षा के छोड़ कर चले जाते हैं, वैसे ही मैं इस नौ छिद्रों से सदा गन्दगी छोड़ने वाले शरीर को, मल्लाह की नाव की तरह, छोड़ कर चल दूंगा।"

२. सन्न्यास

इस प्रकार सुमेध पण्डित नाना प्रकार के दृष्टान्तों से इस अनासक्ति के भाव का चिन्तन कर, पूर्वोक्त विधि से अपने घर पर पड़ी अनन्त भोग की वस्तुओं को याचकों और पथिकों को प्रदान कर, महादान दे, चीजों और संस्कार के लोभ को छोड़, अमर (नामक) नगर से निकल कर अकेले ही हिमालय में धम्मक नाम पर्वत के पास आश्रम पर्ण-कुटी और टहलने का चबूतरा (=चंक्रमण भूमि) * बना कर पांच नीवरणों † से रहित 'इस प्रकार एकाग्र चित्तता' आदि क्रम से कहे गये आठ ‡ कारण-गुणों से युक्त अभिज्ञा (=ज्ञान) नामक बल की प्राप्ति के लिए, उस आश्रम में नौ दोषों वाले वस्त्रों को छोड़ कर, बारह गुणों से युक्त छाल (=वल्कल) को धारण कर ऋषियों के नियमानुसार साधु बन गये। इस प्रकार साधु बन आठ दोषों से युक्त उस पर्ण-कुटि को छोड़, दस गुणों से युक्त 'वृक्ष की छाया' के नीचे जा कर, अनाज के बने सभी भोजनों को छोड़, वृक्ष से गिरे फलों को ही खाने लगे। बैठे, खड़े रहते तथा चलते हुए ही (=अर्थात् कभी न लेट कर) योगाभ्यास (=प्रयत्न) करते हुए सात दिनों के अन्दर ही अन्दर आठ समापत्तियों ‡‡ और पांच अभिज्ञाओं ** को पा लिया। इसी प्रकार उस ने इच्छित अभिज्ञा-बल प्राप्त किया।

इसी लिए कहा गया है :—

---

* टहलते हुए योगाभ्यास करने की जगह।

† चित्त की शुद्ध वृत्तियों को ढांकने वाले— १ काम-छन्द, २ व्यापाद (=क्रोध), ३ स्त्यानमृद्ध (=आलस्य) ४ औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धता) ५ विचिकित्सा (=सन्देह)।

‡ १ समाहित (=एकाग्र-चित्त), २ परिशुद्ध, ३ परियोदात, ४ अङ्गण-रहित, ५ उपक्लेश-रहित, ६ मृदु, ७ कम्मनीय, ८ स्थिरता-प्राप्त (=अभिज्ज-प्राप्त)।

‡‡ चार रूप तथा चार अरूप समापत्तियां।

** दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्म की स्मृति ऋद्धि-बल, पर चित्त का ज्ञान।

"इस प्रकार विचार कर मैं अरबों धन याचकों और अनाथों को दे हिमालय में चला आया। हिमालय के पास ही धम्मक नामक पर्वत है। वहां मैं ने आश्रम, पर्ण-कुटि तथा पांच दोषों से रहित टहलने का चबूतरा (=चंक्रमण-भूमि) बनाया, और आठ गुणों से युक्त अभिज्ञा-बल प्राप्त किया। नौ दोषों से युक्त वस्त्र को छोड़ कर बारह गुणों से युक्त छाल (=वल्कल) का चीवर धारण किया। आठ दोषों से युक्त पर्ण-कुटि को छोड़, दस गुणों वाली 'वृक्षों की छाया' का आश्रय लिया। बो, जोत कर तैय्यार किए अनाजों को बिल्कुल त्याग दिया; और अनेक गुणों से युक्त 'वृक्षों से गिरे फलों' को ग्रहण किया। वहां बैठे, खड़े और टहलते हुए ही योग का अभ्यास कर, सप्ताह के अन्दर अभिज्ञा-बल प्राप्त किया।"

इस पाली * में सुमेध पण्डित ने, आश्रम और टहलने के चबूतरे, अपने हाथ से बनाए—ऐसा कहा है। लेकिन इस का (वास्तविक) अर्थ यह है— महा-पुरुष ने सोचा कि आज मैं हिमालय में जा, धम्मक पर्वत में प्रवेश करूंगा? इस विचार से उन्हों ने गृह-त्याग किया।

३. आश्रम

देवताओं के राजा शक्र (=इन्द्र) ने सुमेध के गृह-त्याग को देख विश्वकर्मा देव-पुत्र को सम्बोधित किया—तात! इस सुमेध पण्डित ने साधु होने के विचार से घर छोड़ा है; जा इस के लिए निवास स्थान का निर्माण कर।"

विश्वकर्मा ने उस के बचन को स्वीकार कर, रमणीय आश्रम, सुरक्षित पर्ण-कुटि और मनोरम टहलने के चबूतरे का निर्माण किया। सो वहां "मेरे लिए किया" का अर्थ है "पत्तों से ढकी हुई शाला भी मेरे लिए बनी हुई थी। और "पांच दोषों से रहित"; चबूतरे के यह पांच दोष हैं—कड़ा होना समतल न होना; बीच में वृक्षों का होना, घनी छाया होना, बहुत संकीर्ण होना तथा लम्बा चौड़ा होना।

कड़ी तथा ऊबड़ खावड़ भूमि में टहलते हुये टहलने वाले के पैर दुखने लग जाते हैं, छाले पड़ जाते हैं, चित्त एकाग्र नहीं होता, योग-क्रिया (=कर्मस्थान)†

---

* पाली; तुलसीदास जी की पांति की तरह; बुद्ध-बचन का पर्य्यायवाची।

† योगाभ्यास का साधन, योग-युक्ति।

सिद्ध नहीं होती। लेकिन कोमल और समतल पर टहलने से योग क्रिया सिद्ध होती है। इस लिये भूमि की कठोरता और ऊबड़-खाबड़-पन को एक दोष समझना चाहिये। चबूतरे के किनारे पर बीच में अथवा सिरे पर वृक्ष रहने से बे परवाही के कारण (कभी २) उन में माथा या सिर टकरा जाता है, इस लिये 'बीच २ में वृक्षों का होना' दूसरा दोष है। तृण-लता आदि से आच्छादित घनी छाया वाले स्थान में टहलते हुये अन्धकार के समय या तो सांप आदि जीवों को (अपने पैर से) कुचल कर मार देता है, अथवा उन के डसने से (स्वयं) दुःख को प्राप्त होता है। इस लिये 'घनी छाया वाला होना' तीसरा दोष है। चौड़ाई में केवल हाथ (रत्न)* वा आधे हाथ भर चौड़े, बहुत ही तंग चबूतरे पर टहलने से टहलने वाले (पुरुष) की अगल-बगल में फिसल जाने के कारण नाखून और उंगलियां तक टूट जाती हैं। इस लिये 'बहुत तंग होना' चौथा दोष है। बहुत चौड़े स्थान में टहलने से (आदमी) का चित्त (इधर उधर) भागता है, एकाग्र नहीं होता इस लिये 'बहुत लम्बा चौड़ा होना' पाँचवां दोष है। चौड़ाई डेढ़ हाथ, दोनों तरफ एक २ हाथ चौड़ी बगली (=अनुचन्क्रमण), लम्बाई साठ हाथ और उस पर समतल बालु बिखरा हुआ—चबूतरा ऐसा होना चाहिये। (सिंहल-) द्वीप को श्रद्धावान् बनाने वाले महेन्द्र स्थविर का चबूतरा चेतिय गिरि † (विहार) में वैसा ही था। इसी लिये कहा है 'पांच दोषों से रहित चबूतरा बनाया'। 'आठ गुणों से युक्त' का मतलब है 'साधुओं के आठ सुखों से युक्त'। साधुओं के आठ सुख यह हैं:—धन धान्य के संग्रह (की चिन्ता) का न होना, निर्दोष भिक्षा की प्राप्ति का प्रयत्न करना, शान्ति पूर्ण भिक्षा का भोजन करना, राज्य अधिकारियों के देश को सता कर धन दौलत या सीस ‡ कार्षापण ‡ आदि ग्रहण करते हुये (स्वयं) देश को पीड़ित न करना, वस्तुओं में वैराग्य, चोरों द्वारा (धन आदि) लूटे जाने से निर्भयता, राजाओं और राज्यामात्यों से बहुत लगाव न होना, और चारों दिशाओं में बेरोक-टोक पहुंच। चूंकि इस आश्रम में रहते हुये, इन आठ सुखों का आनन्द लिया जा सकता था,

---

* रत्न=एक हाथ भर।

† लंका में जिस मिश्रक-पर्वत (=मिहिन्तले) पर महामहेन्द्र उतरे थे, उसी पर्वत पर निर्मित विहार

‡ तदकालीन सिक्के।

इस लिये कहा गया है कि "आठ गुणों से युक्त उस आश्रम को बनाया"। "अभिज्ञा-बल को प्राप्त किया" का मतलब है कि आगे चल कर उस आश्रम में रहते हुये कृत्स्न (=कसिण)* परिकर्म का आरम्भ करके अभिज्ञाओं तथा समापत्तियों की प्राप्ति के लिये, अनित्यता और दुःख के भाव द्वारा विदर्शना † का आरम्भ कर के प्रयत्न से प्राप्य विदर्शना-बल को प्राप्त किया। चूंकि 'इस आश्रम में रहते हुए इस बल को प्राप्त किया जा सकता है' यह विचार था, इस लिए उस आश्रम को, अभिज्ञा की प्राप्ति के लिये विदर्शना बल (की प्राप्ति) के अनुकूल बनाया'— यह अर्थ है।

"नौ दोषों से युक्त वस्त्र को छोड़ देने" के सम्बन्ध की यह पूर्व कथा है। उस समय कुटी-गुफा-टहलने के चबूतरे आदि से युक्त, फल फूलें वाले वृक्षों से आच्छादित, रमणीय, मधुर जलाशयों सहित, बाघ आदि हिंसक पशु तथा भयानक पक्षियों से शून्य, शान्त आश्रम बना कर, सुशोभित चबूतरे के दोनों ओर सहारे के लिये बाही लगा कर, और चबूतरे के बीच में बैठने के लिये मूंगे के रंग की समतल शिला बना कर, पर्ण-कुटि के अन्दर जटा-मण्डल बल्कल चीर, त्रिदण्ड, कुण्डी आदि तापसों के सामान, मण्डप में पानी का बरतन, पानी (-भरा) शङ्ख पानी (पीने के) कसोरे, अग्नी शाला में अंगीठी तथा जलावन इत्यादि—इस प्रकार साधुओं की जो २ आवश्यकतायें हैं, उन का प्रबन्ध करके, पर्ण कुटि की दीवार पर 'जो कोई साधु होना चाहे, इन चीज़ों को ले कर प्रव्राजित हो'—इन अक्षरों को खोद कर विश्वकर्मा देव पुत्र के देव लोक चले जाने पर सुमेध पण्डित ने हिमालय की तराई में गिरि-कन्दाराओं के साथ २, अपने लिये सुख से रहने योग्य स्थान को ढूंढते हुये नदी के मोड़ पर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित, इन्द्र का दिया हुआ, रमणीक आश्रम देखा। टहलने के चबूतरे के छोर पर जा और वहां पद-चिह्न को न देख, सोचा—अवश्य साधु लोग समीप के गांव में भिक्षा मांगने गये हैं। वे थके हुये लौट कर, पर्ण-कुटि में प्रवेश कर, अन्दर बैठेंगे। फिर कुछ देर प्रतीक्षा कर वह सोचने लगा–मालूम होता है देर करेंगे'। (फिर) पर्ण-कुटी के द्वार को खोल अन्दर

---

*योगाभ्यास के चालीसों साधनों में से किसी भी एक को साधारणतया 'कर्म स्थान' कहते हैं। उन में से प्रथम दस में से किसी को भी कसिन (=कृत्स्न) कहते हैं।

† विपश्यना (=प्रज्ञा)।

प्रवेश कर, इधर उधर देखते हुये बड़ी दीवार पर (लिखे) अक्षरों को बांच कर (सोचा)—यह वस्तुयें मेरे योग्य हैं, इन्हें ग्रहण कर साधु बनूगां। यह सोच अपने पहने धोती चादर को छोड़ दिया। इस लिये कहा है—"वहां वस्त्र को छोड़ दिया"। सारिपुत्र। इस प्रकार प्रविष्ट हो, मैं ने इस पर्ण-कुटि में धोती को छोड़ा"। "नौ दोषों से युक्त" कह कर दिखाया गया है कि नौ दोषों को देख कर छोड़ा।

तापस साधुओं के तापस साधु बनने पर (उन के) पहनने के वस्त्र में नौ दोष होते हैं—'अति मूल्यवान् होना' एक दोष है। 'दूसरे पर निर्भर रह कर मिलना' एक दोष। 'पहनने पर जल्दी से मलिन होना' एक दोष। 'मलिन होने पर वस्त्र को धोना तथा रंगना होता है। 'पहनने से फट जाना' एक। 'फटने से सीना' या पेवन्द लगाना होता है। 'फिर ढूंढने पर कठिनाई से मिलना' एक। साधु-जीवन से मेल न खाना' एक। 'चोरों के लिए चोरी करने योग्य होना' एक। जैसे उसे चोर न चुरावे, वैसे छिपाना होता है। 'उपयोग करने से सजावट का कारण होना' एक। 'ले कर चलते समय कन्धे के लिए भार और लोभ होना' एक। "वल्कल चीर को धारण किया" का अर्थ है, "सारिपुत्र! तब मैं ने इन नौ दोषों को देख, वस्त्र को छोड़ छाल (=वल्कल) का वस्त्र धारण किया—अर्थात् मूञ्ज-तृण को चीर, गांठ बांध २ कर बनाये वल्कल चीवर को धारण करने और पहनने के लिए ग्रहण किया।"

'बारह गुणों से युक्त' का अर्थ है कि बारह कल्याणकारी बातों से संयुक्त'। वल्कल चीवर में बारह गुण हैं—सस्ता, सुन्दर तथा विहित होना यह पहला गुण है। अपने हाथ से बनाया जा सकता है, यह दूसरा। जल्दी मैला नहीं होता और धोने में भी कठिनाई नहीं यह तीसरा। उपयोग करते २ फटने पर सीने की आवश्यकता न रहना, यह चौथा। नया ढूंढने पर आसानी से मिल सकना, यह पांचवां। तापस साधुओं के अनुकूल होना, यह छठा। चोरों के काम का न होना, यह सातवां। पहनने वाले के लिए शौक़ का कारण नहीं होना, यह आठवां। पहनने में हलका रहता है, यह नौवां। चीवर रूपी सामान (=प्रत्यय) के विषय में बे-परवाही, यह दसवां। छाल (=वल्कल) से उत्पन्न होने के कारण धर्म की दृष्टि से निर्दोष होना, ग्यारहवां। छाल के चीवर के नष्ट होने पर, उस के लिए परवाह न होना, यह बारहवां गुण है।

"आठ दोषों से युक्त पर्ण-शाला को छोड़ा," सो उसे कैसे छोड़ा ? (अपनी) उस सुन्दर धोती चादर को छोड़ कर, चीवर रखने के बांस पर टंगे हुए अनोज-फूल की माला जैसे लाल रंग के छाल के चीवर को ले पहना । उस के ऊपर दूसरा सुनहरी रंग का छाल का चीवर पहना । फिर पुन्नाग-फूल की शय्या के समान और खुर सहित मृग-चर्म को एक कन्धे पर बांधा । जटाओं को खोल, जूड़ा बांध, (उन के) स्थिर करने के लिए (बालों में से) सूई डाली । मोतियों के जाल के सदृश छीके में मूंगे के रंग की कुण्डी को रक्खा । तीन स्थानों (=दोनों सिरों और बीच में) से झुकी बैंहगी को ले कर, बैंहगी के एक सिरे पर कुण्डी और दूसरे सिरे पर अंकुश की पिटारी तथा त्रिदण्ड आदि लटका कर, खरिया के भार को कन्धे पर रख, दक्षिण हाथ में वैशाखी (=टेक कर चलने की लकड़ी) ले, पर्ण-कुटी से निकले; और साठ हाथ लम्बे टहलने के चबूतरे (=महा चन्क्रमण-भूमि) पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलते हुए अपने वेष को देख कर सोचने लगे—"मेरा विचार सफल हुआ । प्रव्रज्या मुझे शोभती है । बुद्ध आदि सभी वीर पुरुषों ने इस प्रव्रज्या की प्रशंसा की है । मेरा गृहस्थ-भाव छूट गया । मैं अनासक्ति (=नैष्कर्म्य) के लिए निकल पड़ा । मुझे उत्तम प्रव्रज्या मिल गई । मैं सन्न्यास (=श्रमण-धर्म) के अनुसार आचरण कर मार्ग-फल * के सुख को प्राप्त करूंगा ।"

(यह सोच) उत्साह से बैंहगी को उतार चौतरे के बीच में मूंगे के रंग के शिला-पट्ट पर सोने की मूर्ति की तरह बैठे । (फिर) दिन बीत जाने पर, सन्ध्या के समय पर्णशाला के भीतर जा, बेंत की चारपाई के पास के लकड़ी के फट्टों पर लेट विश्राम किया ।

(दूसरे दिन) बहुत प्रातः काल उठ, अपने आने (के उद्देश्य) पर विचार किया—"मैं गृहस्थ जीवन के दोषों को देख, अपार भोग-राशि तथा अनन्त यश को छोड़ जंगल में आ, अनासक्ति की चाह से साधु हुआ । इस लिए अब आगे से मुझे आलस्य नहीं करना चाहिए । एकान्त (-विचरण) को छोड़, बेकार घूमने वाले (पुरुष) को झूठे वितर्क रूपी मक्खियां खा जाती हैं । इस लिए अब मुझे एकान्त-चिन्तन की वृद्धि करनी चाहिए । मैं गृहस्थ जीवन को संताप समझ (घर छोड़ बाहर) निकला हूं । यह (मेरी) मनोहर कुटिया—(जिस की कि) पक्के बेल के रंग

* अर्हत्व-प्राप्ति का मार्ग तथा अर्हत्व-प्राप्ति ।

जैसी लिपि भूमि है; चांदी सी सफेद दीवारें हैं; कबूतर के पैर के रंग सी पत्तों की छत है; चित्र-विचित्र कालीन के रंग का सा बेंत का पलंग है—सुख दायक निवास स्थान है; मेरे घर की सम्पत्ति और इस में कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता। यह (सोच) पर्ण-कुटी के दोषों पर विचार करते हुए (उस में) आठ दोषों को देखा।

कुटिया के सेवन में आठ दोष हैं—(१) बड़े प्रयत्न से आवश्यक चीजों को जुटा, उन को खोजना-बनाना एक दोष; (२) (उस के) पत्ते, तृण और मिट्टी के गिर पड़ने पर, उन्हें फिर २ लगाने के कारण निरन्तर मरम्मत करना; (३) बूढ़ों के आसन-वासन (=शयनासन) से बे वक्त उठने पर चित्त एकाग्र नहीं होता। इस के लिए वैसा प्रबन्ध करना तीसरा; (४) सरदी गर्मी से शरीर का सुकुमार हो जाना; (५) छिप कर घर में सभी पाप-कर्म कर के पाप-छिपाने की गुञ्जाइश होना; (६) 'यह मेरी है' ऐसी ममता होना; (७) घर होने का मतलब ही है 'अकेला न होना', इस के लिए 'साथी चाहना'; (८) जूं, पिस्सू, छिपकली आदि का आम तौर से बहुत बढ़ जाना आठवां दोष है। इन आठ प्रकार के दोषों को देख कर महात्मा ने कुटिया त्याग दी। इस लिए कहा है—"आठ दोषों से युक्त पर्ण-शाला को छोड़ा।"

"दस गुणों से युक्त वृक्ष के नीचे आ गया" कहने का अभिप्राय यह है कि कुटिया के घर को छोड़, दस गुणों से युक्त वृक्ष की छाया के नीचे आ गया हूं। वे दस गुण यह हैं—(१) चीज़ों के जुटाने की चिन्ता न होना पहला गुण; क्योंकि वहां (वृक्ष) तक केवल जाने भर का ही (परिश्रम) होता है। (२) ठीक-ठाक करने का परिश्रम न होना दूसरा; (क्योंकि) चाहे झाड़ू लगायें या न लगायें—दोनों अवस्थाओं में उसे सेवन किया जा सकता है; (३) 'प्रबन्ध (की चिन्ता) न करना' तीसरा; (४) वह पाप-कर्म को छिपा नहीं सकता। वहां पाप-कर्म करते लज्जा आती है; इस के लिये पाप-कर्म को न छिपा सकना चौथा; (५) खुले आकाश के नीचे रहने से शरीर जैसा रूखा हो जाता है, वृक्ष की छाया में वैसा नहीं होता; इस लिये शरीर का रूखाई से बचना पांचवां; (६) जोड़ने बटोरने की गुंजाइश न होन छटा (७) घर के प्रति होने वाली आसक्ति का अभाव सातवां; (८) सार्वजनिक शालाओं में से जैसे सफाई या मरम्मत के लिये निकल जाना होता है; वैसे यहां से

न निकलना पड़ना आठवां; (९) सन्तोष के साथ रहना नौवां (१०) वृक्ष के नीचे सभी जगह आसन-वासन आसानी से मिल जाने के कारण उस के लिये 'चाह न होना' दसवां। इन दस गुणों को देख मैं वृक्ष के नीचे आया हूं—यह भावार्थ (=कथन) है।

इन (सब) बातों का ख्याल कर अगले दिन महात्मा ने भिक्षा के लिये (गांव में) प्रवेश किया। गांव में लोगों ने बड़े उत्साह-पूर्वक भिक्षा दी। भोजन समाप्त कर, आश्रम को लौटे और बैठ कर सोचने लगे:—"मैं समझता था कि आहार नहीं मिलेगा; यही सोच मैं प्रव्रजित हुआ। यह चिकना चुपड़ा आहार अभिमान और पौरुष के मदों को बढ़ाने वाला है। (इस प्रकार के) आहार से उत्पन्न दुःख का अन्त नहीं है। इस लिये मैं बोये जोते अनाज से बने भोजन को त्याग, सिर्फ (वृक्षों से) गिरे फल को खाऊंगा।" तब से उस ने उसी तरह का भोजन ग्रहण कर, योगाभ्यास में लगे रह, एक सप्ताह के अन्दर ही आठ समापत्तियों और पांच अभिज्ञाओं को प्राप्त किया। इसी लिये कहा है:—

"बोये जोते अनाजों को बिल्कुल त्याग दिया। और अनेक गुणों से युक्त 'वृक्षों' से गिरे फल' को ग्रहण किया। वहां बैठे, खड़े, और टहलते योगाभ्यास में लगे रह सप्ताह के अन्दर अभिज्ञा बल को प्राप्त किया।"

४. दीपंकर का दर्शन

इस प्रकार अभिज्ञा-बल को प्राप्त कर तपस्वी सुमेध के दिन समाधि सुख में बीत रहे थे। उसी समय दीपङ्कर नामक बुद्ध संसार में उत्पन्न हुये। उन के गर्भ-प्रवेश (=पटिसन्धि ग्रहण), जन्म, बुद्धत्व-प्राप्ति तथा धर्म चक्र प्रवर्तन के समय सारे दस हजार ब्रह्माण्ड (=दस सहस्र लोक-धातु) कम्पित=प्रकम्पित हुये; और महानाद हुआ। बत्तीस पूर्व-निमित * दिखाई पड़े। लेकिन समाधि के सुख में दिन बिताते तपस्वी सुमेध ने न तो उन शब्दों (=महानाद) को सुना न उन शकुनों (=निमित्तों) को देखा। इसी लिये कहा है:—

"इस प्रकार मेरे सिद्ध-प्राप्त तथा धर्म में रत रहते समय, संसार के नेता दीपङ्कर नामक बुद्ध (=जिन) उत्पन्न हुये। समाधी में होने से मैं ने उन के गर्भ-प्रवेश, उत्पत्ति, बुद्धत्व-प्राप्ति तथा धर्मोपदेश के समय हुये चारों शकुनों (=निमित्तों)

* देखो जातक (पृ०)

को नहीं देखा"।

उस समय चार लाख अर्हतों के साथ दशबलों वाले दीपङ्कर क्रमशः चारिका करते, रम्मक नामक नगर में पहुंचे (वहां के) सुदर्शन महाविहार में रहते थे। रम्मक नगर-वासियों ने सुना कि साधु-सम्राट् दीपङ्कर बुद्धत्व के उत्तम पद को प्राप्त कर क्रमशः चारिका करते (हमारे) रम्मक नगर में आ, सुदर्शन महाविहार में रहते हैं। यह सुन मक्खन, घी आदि भैषज और वस्त्र- बिछौने लिवा कर, गन्धमाला हाथ में ले बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति श्रद्धा से नम्र हो बुद्ध (=शास्ता) के पास गये। और गन्ध आदि से उन की पूजा कर हाथ जोड़ एक ओर बैठे। बुद्ध का धर्म-उपदेश सुन दूसरे दिन के (भोजन के) लिये निमन्त्रण दे, आसन से उठ कर चले गये। अगले दिन भोजन (=महादान) तैय्यार कराया। (दीपङ्कर बुद्ध के आगमन (के उपलक्ष) में (सारा) नगर सजाया गया। पानी के रास्ते के ऊंचे नीचे स्थानों में रेत डाली गई, भूमि को समतल बनाया गया। चांदी की पत्री जैसे सफेद बालू को फैलाया गया। खीलों और फूलों की वर्षा की गई। नाना रंग के वस्त्रों की ध्वजा पताकायें उड़ रही थीं। केलों और जल से भरे घटों की पंक्तियां लगी हुई थीं। उस समय तपस्वी सुमेध ने अपने आश्रम से ऊपर उठ (कर) लोगों के सिर पर से आकाश मार्ग से जाते हुये उन सन्तुष्ट मनुष्यों को देख सोचा "इस का क्या कारण है?" फिर आकाश से उतर एक ओर खड़े, हो, उन से पूछाः—"ओ! तुम इस मार्ग को किस के लिये अलङ्कृत कर रहे हो?" इसी लिये कहा गया हैः—

सीमान्त (=प्रयत्न) प्रदेश में बुद्ध को निमन्त्रित कर, सन्तुष्ट चित्त हो लोग, उन के आगमन-मार्ग को ठीक कर रहे थे। मैं उस समय अपने आश्रम से निकल (अपने) कंपित बलकल वस्त्र के साथ प्रकाश-मार्ग से जा रहा था। लोगों को प्रमुदित, प्रसन्न चित्त, सन्तुष्ट देख, उसी समय आकाश से उतर लोगों से पूछाः— "यह जन-समूह प्रमुदित, प्रसन्न, सन्तुष्ट हो किस के आने के लिये मार्ग ठीक कर रहा है?"

लोगों ने कहाः—"भन्ते! सुमेध! क्या तुम नहीं जानते? दीपंकर दस-(दिव्य) बलों-वाले बुद्ध हो, (अपने) श्रेष्ठ धर्म का प्रचार आरम्भ कर, विचरते हुये हमारे नगर में पहुंच सुदर्शन महाविहार में वास करते हैं। हमने उन भगवान् को

निमन्त्रित किया है। (इसलिये) उन भगवान् बुद्ध के आने के मार्ग को अलङ्कृत कर रहे हैं।"

तपस्वी सुमेध सोचने लगा:—"बुद्ध" शब्द का सुनना भी लोक में दुर्लभ है; बुद्ध के जन्म लेने की तो बात ही क्या? मुझे भी इन मनुष्यों के साथ (मिलकर) बुद्ध (=दशबल) का मार्ग अलङ्कृत करना चाहिए।" (यह सोच) उस ने उन मनुष्यों को कहा—"भो! यदि तुम इस मार्ग को बुद्ध के लिए अलङ्कृत कर रहे हो, तो मुझे भी (इस का) एक भाग दो। मैं भी तुम्हारे साथ (मिल कर) मार्ग को अलंकृत करूंगा। उन्हों ने 'अच्छा' कह कर स्वीकार कर, 'तपस्वी सुमेध दिव्य शक्ति-धारी है—यह जान 'आप इस स्थान को अलंकृत करें' कह एक पानी में डूबे स्थान को दिया। सुमेध ने बुद्ध के ध्यान से उत्पन्न आनन्द से संतुष्ट हो सोचा—"मैं इस स्थान को अपने योग-बल से अलंकृत कर सकता हूं। लेकिन इस प्रकार अलंकृत करने से मेरा मन संतुष्ट न होगा। इस लिए आज मुझे देह से परिश्रम करना चाहिए।" वह बालू रेत ला कर उस स्थान पर फैलाने लगा। अभी उस ने उस स्थान को पूरा अलंकृत न कर पाया था कि दीपङ्कर-बुद्ध छः अभिज्ञाओं से युक्त, चार लाख महा प्रतापी अर्हतों (=क्षीणाश्रवों) के साथ उसी अलंकृत मार्ग से आ निकले। उस समय देवता लोग दिव्य माला गन्ध आदि से उन की पूजा कर रहे थे। मनुष्य दिव्य संगीत गा रहे थे और मनुष्यलोक की गन्धों तथा मालाओं से पूजा कर रहे थे। (उस समय) वह अनन्त बुद्ध की लीलाओं के साथ मन: शिला के नीचे अंगड़ाई लेते सिंह की तरह उस अलंकृत मार्ग पर चल रहे थे। तपस्वी सुमेध ने आंखों से देखा—अलंकृत मार्ग से आते हुए बत्तीस महापुरुष लक्षणों * तथा अस्सी अनुव्यञ्जनों † से युक्त बुद्ध उसी अलंकृत मार्ग से आ रहे हैं। उन का मुख्य मण्डल (फैलाये हुए) दोनों हाथ (=व्याममात्र) के प्रभा-मण्डल से घिरा था, जिस से मणियों के रंग की प्रभायें निकल कर, आकाश तल में नाना प्रकार के विद्युत प्रकाशों की भान्ति इकट्ठी हो छः रंग ‡ की घनी बुद्ध किरणें प्रस्तारित कर रही थीं। उन के अत्युत्तम सुन्दर शरीर को देख कर (सुमेध ने)

---

* देखो, लक्षण-सुक्त (दीर्घ-निकाय)।

† महापुरिस-लक्खण (विनय १. ६५)।

‡ नीला, पीला, सफेद, मंजीठा, लाल तथा प्रभास्वर।

सोचा—"आज मुझे बुद्ध के लिए जीवन अर्पण करना चाहिए। भगवान् को कीचड़ में नहीं चलने देना चाहिये। यदि चार लाख अर्हतों (=क्षीणाश्रवों) के साथ (भगवान्) मणि फलकों से निर्मित पुल पर चलने के समान, मेरी पीठ को मर्दित करते चलें; (तो) वह दीर्घ काल तक मेरे हित और सुख के लिये होगा"। वह केशों को खोल मृग छाला (=अजिन चर्म), जटा और छाल (=वल्कल) के वस्त्रों को काले रंग की कीच पर फैला, नगों की पट्टी (=मणि पलक) के बने पुल की तरह (उस) कीचड़ में लेट गया। इसी लिये कहा है:—

"उन्हों ने मेरे पूछने पर बताया कि अनुपम लोकनायक दीपङ्कर नामक बुद्ध (=शास्ता) लोक में उत्पन्न हुये हैं। यह मार्ग उन के लिये साफ किया जा रहा है। 'बुद्ध'—यह सुनते ही उस समय मेरे मन में आनन्द (=प्रीति) उत्पन्न हुआ। 'बुद्ध' 'बुद्ध' कहते हुये मैं गद्गद (=सौमनस्य को प्राप्त) हो गया। जोश और सन्तोष से मेरा दिल भर गया; और वहां खड़े २ मैं ने सोचा—"मैं यहां (पुण्य का) बीज रोपूगां। यह क्षण (कहीं हाथ से) चला न जाय" और लोगों से कहा—"यदि यह मार्ग, बुद्ध के लिये साफ कर रहे हो, तो (इसका) एक हिस्सा मुझे भी दो, मैं भी (उसे) साफ करूंगा। उन्हों ने साफ करने के लिये मुझे मार्ग दे दिया। तब मैं 'बुद्ध' 'बुद्ध'—(यह) चिंतन करते उसे साफ करने लगा। मेरे हिस्से के तय्यार हो जाने के पहले ही छः अभिज्ञाओं * से युक्त स्थित-प्रज्ञ, निर्मल (-चित्त) चार लाख अर्हतों (=क्षीणाश्रवों) के साथ महामुनि दीपङ्कर उस मार्ग पर चले आये। अगवानी के लिये बहुत सी स्त्री भेरियां बजा रहीं थीं। आनन्दित हो देवता और मनुष्य 'साधु' 'साधु' † कह रहे थे। उस समय देवता मनुष्यों को देखते थे और मनुष्य देवताओं को। (वे) दोनों हाथ जोड़े बुद्ध (=तथागत) के पीछे चल रहे थे। देवता दिव्य वाद्य (=तुर्य) को और मनुष्य मानुषिक वाद्य को बजाते तथागत का अनुगमन करते थे। आकाश-मण्डल में अवस्थित देवता मन्दार, पद्म, पारिजात (आदि के) दिव्य पुष्पों को चारों ओर (=दिशा विदिशा में) बरसा रहे थे। भूमितल पर अवस्थित मनुष्य चम्पक, सलल, नीप, नाग, पुन्नाग, केतक (के पुष्पों) को चारों

---

* दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्मों का ज्ञान, ऋद्धि-बल, पर-चित्त का जानना, आश्रवों के क्षय होने का ज्ञान।

† 'हुर्रा' 'Hurrah' सदृश प्रसन्नता-सूचक नाद।

ओर बखेर रहे थे। मैं वहां अपने केशों को खोल, वल्कल वस्त्र और (आसन-वाले) चर्म खण्ड को कीचड़ पर फैला, मुंह के बल लेट गया, जिस में कि शिष्यों सहित बुद्ध विना कीचड़ लगे मेरे ऊपर से चले जायें। वह मेरे हित के लिये होगा।"

५. बुद्ध बनने का संकल्प

उस ने कीचड़ में ही पड़े पड़े फिर आंखें खोल दीपङ्कर बुद्ध (=दशबल) की बुद्ध-श्री को देखते हुये सोचा—यदि मेरी इच्छा हो, तो मैं सब चित्त-मलों (=क्लेशों) का नाश कर भिक्षु बन रम्य नगर (=निर्वाण) में प्रवेश कर सकता हूं। लेकिन प्रसिद्ध वेष-भूषा के साथ चित्त-मलों का नाश कर, निर्वाण-प्राप्ति करना मेरा ध्येय (=कृत्य) नहीं। मेरे लिए (तो) यही उचित (=योग्य) है कि मैं (भी) दशबल दीपङ्कर बुद्ध की तरह उत्तम बुद्ध पद को प्राप्त कर मानव-समूह (=महाजन) को, धर्म रूपी नाव पर चढ़ा संसार-सागर से पार उतर लेने के बाद निर्वाण को प्राप्त होऊं। (इस लिए) आठ धर्मों पर विचार करते हुए बुद्ध-पद के लिए कामना (=प्रार्थना) करता लेटा रहा।

इसी लिए कहा है :—

"पृथ्वी पर लेटे हुए मुझे ख्याल आया कि यदि मेरी इच्छा हो, तो मैं आज अपने क्लेशों का नाश कर सकता हूं; लेकिन (इस) प्रसिद्ध (भिक्षु-) वेष से धर्म के साक्षात् करने से क्या ?। मैं बुद्धपद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर देवताओं सहित (सारे) लोक का बुद्ध होउंगा। प्रयत्न-शील (=वीर्य-दर्शी) हो मेरे अकेले (संसार सागर से) पार होने से क्या ? बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर मैं देवताओं सहित (सारे) लोक को पार उतार सकूंगा। नर-श्रेष्ठ (=दीपङ्कर) के लिए की गई इस (पूजा के) प्रताप (=अधिकार) से, मैं बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर बहुत जनता को पार उतार सकूंगा। मैं (अब) आवागमन की धारा (=संसार-स्रोत) को छेद तीनों भवों * का नाश कर, देवताओं सहित (सारे) लोक को धर्म रूपी नाव पर चढ़ा कर पार उतारूंगा।"

लेकिन बुद्ध-पद की चाह रखने वाला यदि मनुष्य-योनि, लिङ्ग प्राप्ति, हेतु (=भाग्य), बुद्ध (=शास्ता) का दर्शन, सन्न्यास (=प्रव्रज्या) और उस के गुण की

* काम-भव, रूप-भव तथा अरूप-भव।

प्राप्ति, योग्यता (=अधिकार), कामना (=छन्द)—(इन) आठ धर्मों से युक्त हो, तभी (उस की) वह प्रबल इच्छा (=अभिनीहार) पूरी होती है।

मनुष्य योनि में हो बुद्ध-पद की कामना करने वाले की इच्छा पूरी होती है। नाग, गरुड़ या देवता की योनियों में वह पूरी नहीं हो सकती। मनुष्य योनि में भी पुरुष-लिङ्ग में स्थित होने ही पर इच्छा पूरी होती है। स्त्री, पण्ड (=नपुंसक) अथवा (स्त्री-पुरुष) दोनों लिङ्गों वाले होने पर पूरी नहीं हो सकती। पुरुष होने पर भी यदि उसी जन्म में अर्हत पद की प्राप्ति का हेतु * हो तो इच्छा पूरी होती है, नहीं तो नहीं। हेतु होने पर भी बुद्ध के जीते जी उन के पास प्रबल इच्छा (=प्रार्थना) रखने वाले की ही इच्छा पूरी होती है; बुद्ध के निर्वाण प्राप्त हो जाने पर, (उन के) चैत्य (=मृतस्तूप) अथवा बोधिवृक्ष के पास प्रार्थना कर के इच्छा पूरी नहीं होती। बुद्धों के पास से (अर्हत पद की प्राप्ति) के लिये इच्छा करते हुए भी भिक्षु-आश्रमी की ही इच्छा पूरी होती है, गृहस्थ-आश्रमी की नहीं। भिक्षु-आश्रमियों में भी जो पांच अभिज्ञाओं और आठ समापत्तियों को प्राप्त कर चुका हो, उसी की पूरी होती है। जिसे यह गुण (=गुण-सम्पत्ति) प्राप्त नहीं, उसे नहीं। गुण के होने पर भी, जिस ने अपना जीवन बुद्धों के लिए अर्पण कर दिया, इस (त्याग-) अधिकार से अधिकारी होने पर उसी की पूरी होती है, दूसरे की नहीं। अधिकारी होने पर बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्मों के प्रति जिस की महती इच्छा, महान् उत्साह और प्रयत्न तथा खोज का भाव (पर्येषण) होता है, उसी की पूरी होती है; दूसरे की नहीं।

इच्छा-बल (=छन्द) के विषय में एक उपमा है—जो कोई सारे ब्रह्मांडों (=चक्रवालों) के (गल कर) जलमय हुए (समुद्र के) गर्भ को, अपने बाहुबल से तैर कर, पार जा सके, वही (पुरुष) बुद्ध-पद प्राप्त कर सकता है; अथवा जो कोई सारे ब्रह्माण्डों (=चक्रवालों) के वंश वाड़ी से ढके हुए गर्भ को हटा कर, मर्दन कर, पांव से चल कर, पार कर सके, वह बुद्ध-पद को प्राप्त कर सकता है; अथवा जो कोई अंगारों से भरे हुए सारे ब्रह्माण्ड के गर्भ को पांव से मर्दन करता हुआ, उस पार जा सके, वह बुद्ध-पद को प्राप्त कर सकता है। जो इन में से किसी एक बात को भी अपने लिए दुष्कर न समझे; 'मैं इसे भी तैर कर, वा चल कर पार

---

* पूर्व कर्म का पुण्य-फल।

करूंगा,' जिस की कि इस प्रकार की महान् इच्छा, उत्साह, प्रयत्न तथा पर्येषण हो; उसी की प्रार्थना पूरी होती है; दूसरे की नहीं।

तपस्वी सुमेध इन आठ बातों (=धर्मों) का ख्याल कर बुद्ध-पद (की प्राप्ति) के लिए बलवती इच्छा (=अभिनीहार) कर लेट गया।

६. दीपङ्कर की भविष्यद्वाणी

भगवान् दीपङ्कर आ, तपस्वी सुमेध के सिर की ओर खड़े हुए। मणि (-निर्मित) खिड़की को खोलते हुए की तरह, पांच प्रकार के आनन्द से युक्त आंखों को खोल कर कीचड़ पर पड़े तपस्वी सुमेध को देखा। फिर—यह तपस्वी 'बुद्ध-पद' के लिए दृढ़ संकल्प (=अभिनीहार) कर के पड़ा है; इस की इच्छा पूरी होगी अथवा नहीं?—इस प्रकार भविष्य सोचते हुए जाना कि अब से एक लाख असंखेय्य कल्प-चौकड़ी बीतने पर गौतम नाम के बुद्ध होंगे। (तब) मण्डली के बीच में खड़े कहा—"देखते हो न तुम कीचड़ में पड़े उग्र तपस्या करने वाले इस तपस्वी को? "भन्ते! हां।"

"यह तपस्वी बुद्ध-पद के लिए दृढ़-संकल्प कर के पड़ा है। इस की कामना पूरी होगी। अब से एक लाख असंखेय्य कल्प-चौकड़ी के बीतने पर यह गौतम नामक 'बुद्ध' होगा। उस जन्म में इस का निवास कापिलवस्तु * नामक नगर होगा; माया नामक देवी इस की माता होगी, शुद्धोदन नामक राजा पिता होगा। उपतिष्य † नामक स्थविर प्रधान शिष्य (=अग्र-श्रावक) होगा। कोलित नामक (स्थविर) द्वितीय शिष्य (=श्रावक) होगा। आनन्द (स्थविर) परिचारक (=उप-स्थापक) होगा। खेमा नामक स्थविरा प्रधान शिष्या (=अग्र श्राविका) होगी; उत्पल वर्णा नामक स्थविरा द्वितीय शिष्या (=श्राविका) होगी। ज्ञान के परिपक्व हो जाने पर वह गृह त्याग (महाभिनिष्क्रमण) करेगा; और महान् तपस्या करने के बाद न्यग्रोध (-वृक्ष) के नीचे खीर ग्रहण कर, नेरञ्जरा ‡ नदी के किनारे उसे भोजन कर, बोधि मण्ड पर चढ़ अश्वत्थ ** वृक्ष के नीचे बुद्ध-पद प्राप्त करेगा।

---

* तिलौराकोट, तौलिहवा (नैपाल-तराई) से दो मील उत्तर।

† सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन।

‡ नीलाजन नदी (जि० गया)।

** बोध गया का प्रसिद्ध पीपल-वृक्ष।

इसी लिए कहा है :—

"सत्कार (=आहुति)-भाजन, लोक के ज्ञाता, दीपङ्कर मेरे शिर के पास खड़े हो कर यह बोले—"इस उग्र तपस्या करने वाले जटिल तपस्वी को देखते हो? अब से लाख असंख्य कल्प-चौकड़ी के बीतने पर यह बुद्ध होगा। तथागत कपिल (वस्तु) नामक रम्य नगर से निकल कर, महान् उद्योग और दुष्कर तपस्या करेगा। फिर अजपाल वृक्ष के नीचे बैठ खीर ग्रहण कर, नेरञ्जरा नदी के तट पर जायेंगे। वहां नेरञ्जरा नदी के किनारे वह खीर को खा सुसज्जित मार्ग से बोधि-वृक्ष के नीचे जायेंगे। वह अनुपम महा यशस्वी (पुरुष) बोधिमण्ड की प्रदक्षिणा कर, अश्वत्थ पीपल-वृक्ष के नीचे बुद्ध (पद को प्राप्त) होगा। इस की जननी, माता माया (देवी) होगी; पिता शुद्धोदन और गोत्र गौतम होगा। इस जिन (=शास्ता) के कोलित और उपतिष्य नाम के वीतरागी, शान्त-चित्त, समाधि-प्राप्त (दो) अर्हत अग्र-श्रावक होंगे; और आनन्द नामक परिचारक (=उपस्थापक) परिचर्या (=उपस्थान) करेंगे। क्षेमा तथा उत्पल वर्णा आश्रव-रहित, वीतराग, शान्त-चित्त, समाधि-प्राप्त (दो) अर्हत प्रधान शिष्यायें (=अग्र श्राविकायें) होंगी और उन भगवान् के बुद्ध (-पद) प्राप्ति करने का वृक्ष (=बोधि) पीपल (=अश्वत्थ-बोधि) कहलायेंगे।"

तपस्वी सुमेध 'मेरी कामना सम्पूर्ण होगी' सोच संतुष्ट हुआ। जनता ने (=महाजन) बुद्ध (=दशबल) दीपङ्कर के बचन को सुना; और 'यह तपस्वी सुमेध बुद्ध-बीज है, बुद्ध-अंकुर है'—सोच कामना की—"जैसे सामने के घाट (=तीर्थ) से नदी को पार न कर सकने पर मनुष्य नीचे के घाट से नदी पार करता है। इसी प्रकार हम बुद्ध दीपङ्कर के शासन-काल में यदि मार्ग-फल को न पा सके, तो जब तू बुद्ध होगा, तब तेरे सन्मुख मार्ग-फल प्राप्त करने में समर्थ हों।"

दीपङ्कर बुद्ध भी बोधिसत्त्व (सुमेध) की प्रशंसा कर, आठ मुट्ठी फूल से पूज, प्रदक्षिणा कर चल दिए और वे चार लाख अर्हत भी गन्ध तथा माला से बोधिसत्त्व की पूजा कर, प्रदक्षिणा कर आगे बढ़े। देवता और मनुष्य भी उसी प्रकार पूजा तथा बन्दना कर चल दिए। सब के चले जाने पर बोधिसत्त्व उठ कर पारमिताओं पर चिन्तन करने की इच्छा से, पुष्पों के ढेर पर पालथी मार बैठ गये। बोधिसत्त्व के इस प्रकार बैठने पर, सारे दस हज़ार ब्रह्माण्डों (=चक्र वालों) के देवताओं ने एकत्र हो, साधुकार दे—"(साधु!)

आर्य ! तपस्वी सुमेध ! (साधु) ! पुराने बोधिसत्त्वों की (भान्ति) आसन मार पारमिताओं पर चिन्तन करने की इच्छा से बैठने के समय जो २ शकुन (=पूर्व-निमित्त) पहले प्रकट होते रहे; वह सब आज भी प्रकट हो रहे हैं, इस लिये हम यह जानते हैं कि तू निस्सन्देह बुद्ध होगा। जिन के लिये यह चिन्ह प्रकट होते हैं, वह निश्चय बुद्ध होता है। इस लिये तू अपने उद्योग को दृढ़ करके प्रयत्न कर। (इस प्रकार देवताओं ने) नाना प्रकार की स्तुतियों से बोधिसत्त्व की प्रशंसा की। इस लिये कहा है:—

अनुपम महर्षि (दीपंकर) के इस वचन को सुन कर, कि यह (तपस्वी सुमेध) बुद्ध-अङ्कुर हैं देवता और मनुष्य प्रसन्न हुये। (उस समय) देवताओं सहित सारे दस हज़ार ब्राह्माण्ड घोषणा करते, ताली बजाते, हंसते तथा हाथ जोड़ कर प्रणाम करते थे और (लोग सोच रहे थे) कि यदि इस (दीपङ्कर) बुद्ध (=लोक नाथ) के काल में हम चूक गये, तो भविष्य में इस (तपस्वी सुमेध के बुद्ध होने) के समय (कृतकार्य) होंगे। जिस प्रकार नदी पार करने वाले पुरुष सामने के घाट के छोड़ देने पर, नीचे के घाट से महा नदी को पार करते हैं, इसी प्रकार यदि हम सब से यह बुद्ध छूट जायेंगे, तो हम भविष्य काल में इन बुद्ध के सम-कालीन (उत्पन्न) होंगे।

७. सुमेध का दृढ संकल्प

पूजा के भाजन, लोक के जानकार, दीपङ्कर ने मेरे कार्य को प्रकाशित कर दक्षिण पैर उठाया। वहां जितने बुद्ध के शिष्य (=जिन-पुत्र) थे, उन सब ने मेरी परिक्रमा की। नर, नाग, (तथा) गन्धर्व, सभी अभिवादन करके गये। जब सङ्घ-सहित बुद्ध (=लोक नायक) आंखों से ओझल हो गये, तब मैं प्रसन्न चित्त हो खड़ा हो गया। सुख से सुखित, प्रमोद से प्रमुदित, आनन्द (=प्रीति) से शान्त हो, मैं ने आसन लगाया। आसन लगा मैं सोचने लगा—मैं ध्यान-प्राप्त हूं। अभिज्ञायें मुझे मिल चुकी हैं। सहस्रों लोकों में भी मेरे समान (दूसरा) ऋषि नहीं। मैं अद्वितीय (=असदृश) हूं। मैं ने दिव्य-शक्ति (=ऋद्धि-धर्मों) में ऐसा सुख प्राप्त किया है।

मेरे पालथी मार बैठने पर, इन सहस्र ब्रह्माण्डों के निवासियों ने महानाद किया—"तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

पूर्व (काल) में बोधिसत्वों के आसन लगा कर बैठने पर, जो शकुन दिखाई देते रहते हैं, वे आज (भी) दिखाई देते हैं। शीत का चला जाना, उष्णता का शान्त हो जाना—ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। (इसलिए) तू निश्चय से बुद्ध होगा।

"दस सहस्र ब्रह्माण्डों का निश्शब्द और निर्द्वन्द्व होना—ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"न आंधी (=महा वायु), न नदियां (प्रचण्डता से) बहती हैं। ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय जल तथा स्थल (दोनों) पर फूलने वाले सभी फूल फूल जाते हैं। सो सभी आज भी फूले हुये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय सभी लतायें तथा वृक्ष फलों से लदे होते हैं। वे सभी आज फलों से लदे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय आकाश और पृथ्वी (दोनों) में विद्यमान रत्न चमकने लगते हैं। वे सभी रत्न आज चमक रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दिव्य और मानुष (सभी) बाजे (तूर्य) बजते हैं, वे भी आज दोनों बज रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय आकाश से चित्र विचित्र फूलों की वर्षा होती है। वह वर्षा आज भी हो रही है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) महासमुद्र संकुचित होता है, और दस सहस्र ब्रह्माण्ड कांपने लगते हैं। वे भी दोनों आज कंपन का शब्द कर रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दस सहस्र ब्रह्माण्डों के नरकों की भी अग्नियां बुझ जाती हैं, वे अग्नियां भी आज बुझ गई हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय सूर्य्य निर्मल होता है, सभी तारे दिखाई देने लगते हैं, वे भी आज दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

उस समय बिना वर्षा के ही पृथ्वी से पानी निकलता है, वह भी आज पृथ्वी से निकल रहा है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय आकाश मण्डल में तारे और नक्षत्र चमकने लगते हैं। चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र में होता। ...... तू निश्चय बुद्ध होगा।"

"(उस समय) गुफाओं में तथा पर्वत पर रहने वाले सब (प्राणी) अपने अपने बसेरों से निकल आते हैं। वे भी आज (अपने अपने) बसेरों से बाहर आ गये हैं, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय प्राणियों को असन्तोष नहीं होता, सभी जीव संतुष्ट होते हैं। वे भी सब आज सन्तुष्ट हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) रोग शान्त हो जाते हैं, भूख नष्ट हो जाती है। वे (लक्षण) भी आज दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय राग कम हो जाता है, द्वेष और मोह भी नष्ट हो जाते हैं। वे भी आज सब नष्ट हो गये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय (किसी को) भय नहीं होता। आज भी ऐसा ही दिखाई देता है। इस चिन्ह से हम जानते हैं, कि तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) धूलि ऊपर को उड़ती है, आज भी वह दिखाई देती है। इस चिन्ह से हम जानते हैं, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय हवा से) बुरी गन्ध हट जाती है, दिव्य गन्ध बहती है। वह गन्ध भी आज बह रही है, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"आकार रहित (=अरूपी) देवताओं के अतिरिक्त बाकी सब देवता दिखाई देने लगे हैं। वे भी आज सब दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय जितने नरक (होते) हैं, वे सब दिखाई देते हैं। वे भी सब आज दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दीवार, दरवाज़े तथा पर्वत ढांकने की शक्ति खोये हुए (=निरावरण) होते हैं। वे भी आज आकाश से हो गये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस क्षण में जन्म और मृत्यु का ज्ञान बंद हो जाता है। वह लक्षण भी आज दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उद्योग को दृढ कर। रुक मत, आगे बढ़। हम यह जानते हैं, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

दीपङ्कर बुद्ध तथा उन सहस्र ब्रह्माण्डों के देवताओं के बचन को सुन कर, (और भी) अधिक आनन्द (=सौमनस्य) से उत्साहित हो बोधिसत्त्व ने सोचा— बुद्धों का बचन झूठा नहीं होता। बुद्धों का कथन उलट नहीं सकता। जैसे आकाश

में फेंके ढेले का गिरना, जन्मने वाले का मरना, उषा (=अरुण के उद्गमन) के बाद सूर्योदय, गुफा से निकलते समय सिंह का गर्जन, भारी गर्भवती स्त्री का जनन—(यह सब) अनिवार्य (=ध्रुव) और अवश्यम्भावी है, इसी प्रकार बुद्धों का बचन निष्फल नहीं जाता। मैं निश्चय से बुद्ध होऊंगा।" इसी लिए कहा है :—

"तब बुद्ध तथा दस हज़ार ब्रह्माण्डों के देवताओं के बचन को सुन कर सन्तुष्ट, प्रसन्न हो मैं ने सोचा—"बुद्ध एक बात करने वाले होते हैं। उन का बचन निष्फल नहीं जाता। बुद्धों का कथन असत्य नहीं होता। मैं ज़रूर बुद्ध होऊंगा। जिस प्रकार आकाश में फेंका हुआ ढेला, पृथ्वी पर अवश्य गिरता है, इसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का बचन अनिवार्य (=ध्रुव=शास्वत) है। जिस प्रकार सब प्राणियों का मरना अनिवार्य है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों का बचन अनिवार्य है। जिस प्रकार रात्रि के बीतने पर सूर्योदय निश्चित है, इसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के बचन (की पूर्ति) निश्चित है। जिस प्रकार बसेरे से निकलते सिंह का गर्जन करना निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के बचन (की पूर्ति) निश्चित है। जिस प्रकार गर्भ में आये प्राणियों का प्रसव निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों के बचन (की पूर्ति) निश्चित है।"

८. दस पारमितायें और दृढ संकल्प की पूजा

(१) दान पारमिता

"मैं बुद्ध अवश्य होऊंगा", (इस प्रकार का) निश्चय कर, बुद्ध बनाने वाले धर्मों का निश्चय करने के लिए सोचा—बुद्ध बनाने वाले धर्म कहां हैं? ऊपर हैं, नीचे हैं, (वा) दिशा दिशाओं में हैं? इस प्रकार क्रम से सभी धर्मों (=धर्म धातुओं) पर विचार करने लगा। फिर प्राचीन काल के बोधिसत्वों द्वारा सेवित किये प्रथम-पारमिता दान-पारमिता * को देख, उस ने अपने को समझाया—'पण्डित सुमेध! अब से तुझे पहले दान-पारमिता पूरी करनी होगी। जिस प्रकार पानी का घड़ा उलटने पर अपने को बिलकुल खाली कर, पानी गिरा देता है, और फिर वापिस ग्रहण नहीं करता, इसी प्रकार धन, यश, पुत्र, दारा अथवा (शरीर का) अङ्ग प्रत्यङ्ग (किसी) का (भी कुछ) ख्याल न कर, जो कोई भी याचक आवे, उस की सभी इच्छित (वस्तुओं) को ठीक से प्रदान करते हुए, बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ

* दान की पराकाष्ठा।

कर तू बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। इस लिए पहिले तू दान पारमिता (की पूर्ति) के लिए दृढ संकल्प (=अधिष्ठान) कर। इसी लिए कहा है—

'अहो! बुद्ध बनाने वाले धर्मों को यहां, वहां, ऊपर, नीचे दसों दिशाओं में, जितनी भी धर्म-धातुयें हैं, (उन सब में) ढूंढते हुए, मैं ने पूर्व-महर्षियों द्वारा सेवित महान् मार्ग (=महापथ, महायान) दान-पारमिता को देखा। (और समझाया) पहले तू दृढता पूर्वक इस दान-पारमिता को ग्रहण कर। यदि बुद्ध पद के पाने की इच्छा है, तो दान की परम सीमा तक चला जा। जिस प्रकार पानी का भरा घड़ा उलटा करने पर अपने सारे पानी को गिरा देता है, कुछ भी बचा नहीं रखता, उसी प्रकार तू उत्तम, मध्यम, अधम (सभी तरह के) याचकों को पा, औंधे घड़े की तरह अपने सर्वस्व का दान कर।'

(२) शील पारमिता

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते' (विचार) और भी सोचते हुये उसने द्वितीय (पारमिता) शील-पारमिता को देख कर सोचा—'पण्डित सुमेध' अब से तुझे शील-पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार चमरी (=चमरी-मृग) अपने जीवन की भी परवाह न कर, अपनी पूंछ की रक्षा करता है, इसी प्रकार तू भी अब से जीवन की भी परवाह न कर शील रक्षा करते हुये बुद्ध-पद को प्राप्त होगा।" (इस लिये) तू द्वितीय शील-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प कर।" इसी से कहा है:—

"यह बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो २ धर्म बुद्ध पद की प्राप्ति में सहायक हैं; उन्हें भी ढूंढना चाहिये, यह सोचते हुये उसने पूर्व महर्षियों से सेवित द्वितीय पारमिता शील-पारमिता को देखा। (और अपने मन को समझाया— तू इस दूसरी शील-पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध पद की इच्छा है, तो शील की (चरम) सीमा तक पहुंच जा। जिस प्रकार चमरी चाहे मर जावे; लेकिन किसी चीज़ में फंसी अपनी पूंछ को हानि पहुंचने नहीं देती उसी प्रकार चारों भूमियों * में शील की पूर्ति करते हुये, चमरी की पूंछ की भान्ति (अपने) शील की रक्षा कर।

* प्रातिमोक्ष संवर-शील (=यम नियमों की पूर्ति), इन्द्रिय संवर-शील (=इन्द्रिय संयम), आजीव परिशुद्धि (=जीविका की शुद्धि), प्रत्यय परिवेषण (=शारीरिक आवश्यकताओं की खोज)।

(३) नैष्काम्य पारमिता

फिर विचार हुआ—'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते' और भी सोचते हुये तृतीय नैष्काम्य पारमिता को देख विचारा—"पण्डित सुमेध! अब से तुझे नैष्काम्य पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार जेल (=बन्धनागार) में चिरकाल तक रहने वाला मनुष्य भी जेल के प्रति स्नेह नहीं रखता, वहां न रहने के लिए ही उत्कण्ठित है, इसी प्रकार तू सब योनियों (=भवों) को जेल (सदृश) ही समझ, सब योनियों से ऊब कर उन्हें छोड़ने की इच्छा कर, नैष्काम्य की ओर झुक। इस प्रकार तू बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू तृतीय नैष्काम्य-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ संकल्प (=अधिष्ठान) कर। इसीलिए कहा है—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। जो २ भी बुद्ध-पद की प्राप्ति के सहायक धर्म हैं, उन्हें भी ढूंढना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व ऋषियों से सेवित तृतीय नैष्काम्य पारमिता को देखा। तू इस तीसरी नैष्काम्य पारमिता को दृढता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद को प्राप्ति की इच्छा है, तो नैष्काम्यता की भी सीमा को पार कर जा। जिस प्रकार चिरकाल तक जेल में रह (उस के) दुःखों को झेले मनुष्य को उस जेल के प्रति राग उत्पन्न नहीं होता (बल्कि उस से) छूटना ही चाहता है इसी प्रकार तू सब योनियों को जेल की तरह समझ, और उन (योनियों) से छूटने के लिए नैष्काम्य की ओर चल।

(४) प्रज्ञा पारमिता

तब 'इतने ही बुद्ध बनाने वाले धर्म नहीं हो सकते, और भी (होंगे)' सोचते हुए चौथी प्रज्ञा-पारमिता को देखा और मन में सोचा—"पण्डित सुमेध! अब से तुझे प्रज्ञा-पारमिता भी पूरी करनी होगी। उत्तम, मध्यम, अधम, किसी को भी बिना छोड़े सभी पण्डितों के पास जा कर प्रश्न पूछने होंगे। जिस प्रकार भिक्षा मांगने वाला भिक्षु (उत्तम, मध्यम) हीन (सभी) कुलों में किसी को भी न छोड़ कर एक ओर से भिक्षाटन करते हुए शीघ्र ही (आवश्यक) भोजन (=यापन) प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार तू भी सभी पण्डितों के पास जा कर प्रश्न पूछते पूछते बुद्ध-पद को प्राप्त कर लेगा।" इस लिए तू चतुर्थ प्रज्ञा पारमिता (की पूर्ति) का दृढ संकल्प कर। इसी से कहा है—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहयक धर्म हैं उन्हें भी खोजना चाहिये' यह ढूंढने की इच्छा से पूर्व ऋषियों से सेवित चौथी प्रज्ञा पारमिता को देखा।" चौथे तू इस प्रज्ञा-पारमिता को दृढता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्धत्व-प्राप्ति की इच्छा है, तो प्रज्ञा की सीमा के पार जा। जिस प्रकार भिक्षु उत्तम, मध्यम (तथा) अधम कुलों में से (किसी एक कुल को भी) बिना छोड़े, भिक्षा मांगते हुए अपना निर्वाह (=यापन) करता है, उसी प्रकार तू पण्डित जनों से सर्वदा (प्रश्न) पूछता हुआ, प्रज्ञा की सीमा के पार जा कर बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।"

(५) वीर्य पारमिता

'बुद्ध बनने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते,' और भी सोचते हुए पांचवीं वीर्य-पारमिता को देख यह (विचार) हुआ। "पण्डित सुमेध! अब से तुझे वीर्य-पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार (मृग-) राज सिंह सब अवस्थाओं (=ईर्यापथों) में दृढ उद्योगी होता है, उसी प्रकार तू भी सब योनियों में, सब अवस्थाओं में दृढ उद्योगी, निरालस्य, और यत्नवान् हो बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू पांचवीं वीर्य-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ संकल्प कर। इसी से कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो जो बुद्ध-पद की प्राप्ति म सहायक धर्म हैं, उन्हें भी खोजना चाहिए, यह सोचते हुए पूर्व-ऋषियों से सेवित पांचवीं वीर्य-पारमिता को देखा। पांचवें तू इस वीर्य-पारमिता को दृढता-पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्धत्व प्राप्ति की इच्छा है तो वीर्य की सीमा के पार जा। जिस प्रकार मृग-राज सिंह बैठते, खड़े होते, चलते (सदैव) निरालस, उद्योगी तथा दृढ-मनस्क होता है, उसी प्रकार तू भी सब योनियों में दृढ उद्योग को ग्रहण कर। वीर्य की सीमा के पार जा कर बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

(६) क्षान्ति पारमिता

तब बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते, और भी सोचते हुए, छठी क्षान्ति पारमिता को देखा। (उस के मन में) यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुझे क्षान्ति पारमिता भी पूरी करनी होगी। सम्मान और अपमान, दोनों को सहना होगा। जिस प्रकार पृथ्वी पर (लोग) शुद्ध चीज भी फेंकते हैं, अशुद्ध

चीज भी फेंकते हैं। पृथ्वी सहन करती है । न तो (अच्छी चीज फेंकने से) खुश होती है, न (बुरी चीज फेंकने से) नाराज। इसी प्रकार तू भी सम्मान तथा अपमान, दोनों को सहने वाला हो कर ही बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू छठी क्षान्ति-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ संकल्प कर। इसी से कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे और भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं 'उन्हें भी ढूंढना चाहिए, यह सोचते हुए, पूर्व-ऋषियों से सेवित छठी क्षान्ति-पारमिता को देखा और (मन में) विचार हुआ—छठे तू इस क्षान्ति-पारमिता को दृढता-पूर्वक ग्रहण कर। इस में स्थिर चित्त हो लगने पर तू बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार पृथ्वी (अपने पर) शुद्ध, अशुद्ध सब ही (चीजों) के फेंकने को सहन करती है, न क्रोध ही करती है, न खुश ही होती है। उसी प्रकार तू भी सब (प्रकार) के मान, अपमान सहता क्षान्ति की सीमा के पार जा बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

(७) सत्य पारमिता

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होसकते, और भी सोचते हुये, सातवीं सत्य पारमिता को देखा और मन में यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुम्हें सत्य पारमिता भी पूरी करनी होगी। चाहे सिर पर बिजली गिरे, धन आदि का अत्यधिक लोभ हो तो भी जान बुझ कर झूठ न बोलना चाहिए। जिस प्रकार शुक्र का तारा चाहे कोई ऋतु हो अपने गमन-मार्ग को छोड़ कर, दूसरे मार्ग से नहीं जाता, अपने ही मार्ग से जाता है। इसी प्रकार तू भी सिवाय सत्य को छोड़, मृषावाद न करके ही बुद्धत्व को प्राप्त होगा। (इसलिये) तू सातवीं सत्य-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ अधिष्ठान कर। इसी से कहा है:—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे और भी जो जो बुद्ध-पदवी-प्राप्ति में सहायक धर्म हैं उन्हें भी ढूंढ़ना चाहिये। यह सोचते हुये, पूर्व ऋषियों से सेवित सातवीं सत्य-पारमिता को देखा। (और मन में कहा:—सातवें तू इस सत्य-पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। एक बात बोलने वाला होने पर तू बुद्धपद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार शुक्र (तारा) सदैव (लोक) में एक समान हो, वर्षा-ऋतु अथवा (दूसरे) समय में अपने मार्ग का अतिक्रमण नहीं करता। उसी प्रकार तू भी सत्य (के विषय) में अपने मार्ग का अतिक्रमण न करने वाला बन। सत्य की सीमा के पार जा, तू बुद्धपद को प्राप्त करेगा।

(८) अधिष्ठान-पारमिता

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते, और भी सोचते हुये आठवीं अधिष्ठान (=दृढ़ संकल्प) (-पारमिता) को देखा, और (उसके मन में) विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुझे अधिष्ठान पारमिता भी पूरी करनी होगी। जो अधिष्ठान (=दृढ़ निश्चय) करना होगा, उस अधिष्ठान पर निश्चल रहना होगा। जिस प्रकार पर्वत सब दिशाओं में (प्रचण्ड) हवा के झोंके के लगने पर भी, न कांपता है, न हिलता है, और अपने स्थान पर स्थिर रहता है, इसी प्रकार तू भी अपने अधिष्ठान में निश्चल रहते हुये ही बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू आठवीं अधिष्ठान-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प कर। इसी से कहा:—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो २ बुद्धपद की प्राप्ति-में सहायक धर्म हैं, उन्हें भी ढूंढ़ना चाहिये', यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियों से सेवित आठवीं अधिष्ठान-पारमिता को देखा। (और मन में कहा-) आठवें तू अधिष्ठान पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर इस में अचल होने से तू बुद्ध-पद को प्राप्त कर। जिस प्रकार अचल, सुप्रतिष्ठित, शैल पर्वत तेज़ वायु से (भी) नहीं कांपता, अपने स्थान पर ही स्थिर रहता है, इसी प्रकार तू भी अपने अधिष्ठान में सदैव निश्चल हो। अधिष्ठान की सीमा के पार जाने से तू बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

(९) मैत्री-पारमिता

'तब बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते', और भी सोचते हुये नवमी मैत्री पारमिता को देखा। और (उसके) मन में यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुझे मैत्री-पारमिता भी पूरी करनी होगी। हित, अनहित सब के प्रति समानभाव रखना होगा। जिस प्रकार पानी, पापी और पुण्यात्मा दोनों के लिये एक जैसी शीतलता रखता है, उसी प्रकार तू भी सब प्राणियों के प्रति एक जैसी मैत्री रखते हुये बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू मैत्री-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ निश्चय कर। इसी से कहा:—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे,' और भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हों उन्हें भी ढूंढना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियों से सेवित नौवीं मैत्री-पारमिता को देखा। (मन से कहा-) तू इस मैत्री-पारमिता को दृढता-पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद की प्राप्ति की इच्छा है तो मैत्री-भावना में

बे जोड़ बन। जिस प्रकार पानी, पापी और पुण्यात्मा दोनों को ही समान रूप से शीतलता पहुंचाता है और (दोनों के) मैल को धो देता है। उसी प्रकार तू भी हित, अनहित दोनों के प्रति समानभाव से मैत्री-भावना कर। मैत्री-भावना की सीमा को पार करने से बुद्ध-पद को प्राप्त होगा।

(१०) उपेक्षा पारमिता

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते', और भी सोचते हुए दसवीं उपेक्षा-पारमिता को देखा। (मन में) यह विचार हुआ—"पण्डित सुमेध! अब से तुझे उपेक्षा-पारमिता भी पूरी करनी होगी। सुख और दुःखों में मध्यस्थ ही रहना होगा। जिस प्रकार पृथ्वी, शुचि और अशुचि, दोनों को (उस पर) फेंकने पर भी मध्यस्थ ही रहती है, इस प्रकार तू भी सुख, दुःख दोनों में मध्यस्थ रहते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू दसवीं उपेक्षा-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ निश्चय कर। इसी से कहा है—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे', और भी जो जो बोधी-सहायक धर्म हैं, उन्हें भी ढूंढना चाहिये। यह सोचते हुए पूर्व ऋषियों से सेवित दसवीं उपेक्षा-पारमिता को देखा। (मन से कहा-) दसवें तू इस उपेक्षा-पारमिता को दृढ कर के ग्रहण कर। दृढता-पूर्वक तुला (सदृश) बन, बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार पृथ्वी खुशी और नाराजी छोड़ (अपने ऊपर) शुचि और अशुचि, दोनों के फेंकने की उपेक्षा करती है, इसी प्रकार तू भी सदैव सुख, दुःख के प्रति तुल्य हो। उपेक्षा की (चरम-) सीमा को पार करने से बुद्ध-पद को प्राप्त होगा।

इसके बाद सोचा—इस लोक में बोधीसत्त्वों द्वारा पूरे किये जाने वाले, परम ज्ञान (=बोधी) परिपक्क-करने वाले, तथा बुद्ध बनाने वाले धर्म क्या इतने ही हैं; (इन) दस पारमिताओं को छोड़ कर अन्य नहीं? यह दस पारमितायें भी न तो ऊपर आकाश में हैं, न पूर्व आदि दिशाओं में हैं; किन्तु मेरे हृदय के भीतर ही प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार उनके हृदय ही में प्रतिष्ठित होने (की बात) जान, सब के लिये दृढ़ निश्चय कर, फिर २ उन पर सीधे-उलटे (=अनुलोम प्रतिलोम) क्रम से विचार करने लगा। अन्त से शुरू करके आदि तक पहुंचाता, आदि से शुरू करके अन्त तक पहुंचाता, बीच से ग्रहण करके दोनों ओर खतम करता, (तथा) दोनों सिरों से आरम्भ करके बीच में खतम करता। (अपने) अंग का परित्याग

पारमितायें, बाहरी वस्तुओं का त्याग उपपारमितायें और प्राणों का परित्याग परमार्थ-पारमितायें, (कहलाती) हैं। दस पारमितायें, दस उपपारमितायें और दस परमार्थ-पारमितायें—(इन तीसों पर) दो तेलों को मिलाने की तरह, तथा सुमेरु पर्वत की मथानी बना चक्रवाल महा समुद्र को मथने की तरह विचारने लगा।

उन दस पारमिताओं पर विचार करते समय धर्म-तेज से चार नियुत एक लाख दो योजन घनी यह पृथ्वी भारी शब्द कर वैसे ही कांप उठी जैसे हाथी द्वारा हिलाया जाता नर्कट, अथवा पेरा जाता, महानाद करता ऊख-यंत्र, या कुम्हार का चक्र (और) या तेली का कोल्हू। इसी से कहा है:—

'लोक में परमज्ञान (की प्राप्ति में) सहायक धर्म इतने ही हैं। इन से अधिक अन्य नहीं हैं। उन में दृढ़ता पूर्वक स्थित हो, स्वभाव, रस तथा लक्षणों सहित इन धर्मों पर विचार करने लगा। उस समय धर्म तेज के प्रवाह से दस सहस्र ब्रह्माण्डों वाली पृथ्वी कांप उठी। पेरते ऊख के कोल्हू की तरह और तेल के कोल्हू की तरह पृथ्वी हिली और नाद किया।'

रम्य-नगर-वासी, कांपती हुई महा पृथ्वी पर नहीं खड़े रह सके; और प्रलय-वायु से प्रतिताड़ित महान् शाल वृक्षों की तरह, मूर्छित हो गिर पड़े। कुम्हार के बनते हुए घड़े आदि वर्तन एक दूसरे से भिड़ कर चूर्ण विचूर्ण हो गए। भयभीत त्रासित जनता ने बुद्ध के पास जाकर पूछा:—"भगवान्! क्या यह नागों का विप्लव (=आवर्त्त) है, अथवा भूत, यक्ष, देवताओं के विप्लवों में से (कोई) एक है? हम इसे नहीं जानते। सारी जनता भयभीत है। क्या इससे लोक का कुछ अनिष्ट होगा अथवा भला? हमें यह बात बतलाइये।"

शास्ता ने उनका कथन सुनकर कहा:—मत डरो, चिन्ता मत करो, यह भय का कारण नहीं। आज जो मैंने पण्डित-सुमेध के भविष्य में गौतम नामक बुद्ध होने की भविष्यत् वाणी (=व्याकरण) की, सो वह (पण्डित सुमेध) अब पारमिताओं पर विचार कर रहा है। उसके पारमिताओं पर विचार करते, तथा उन्हें मंथन करते समय, धर्म-तेज से सारे दस सहस्र ब्रह्माण्ड एक झटके से कांप उठे और नाद करने लगे। इसी से कहा है:—

"बुद्ध के आस पास की जितनी भी मण्डली थी, वह वहां कम्पित और मूर्छित हो पृथ्वी पर लेट गई। हज़ारों घड़े, सैकड़ों मटके एक दूसरे से भिड़ कर

चूर्ण होगए। विह्वल, त्रसित, भयभीत, शंकित, और उत्पीड़ित मनवाला जन समूह इकट्ठा हो, दीपङ्कर के पास आया (और बोला):—हे आंखों वाले! इस दुनिया का क्या (कुछ) भला होने वाला है या बुरा? सारी दुनिया भय से मरी जाती है। इस (के कष्ट) को दूर करो।"

तब महामुनि दीपङ्कर ने उन (लोगों) को कहा—धैर्य्य रक्खो। इस भूमि-कम्पन से मत डरो। जिस के लिये आज मैंने लोक में बुद्ध होने की भविष्यत्-वाणी की, वह पुराने बुद्धों के सेवन के धर्म का विचार कर रहा है। उसके बुद्ध विषयक (बुद्ध भूमि) धर्मों का पूर्णरूप से विचार करने से, यह देवताओं सहित दस हज़ार (लोकों वाली) पृथ्वी कांपी है"।

(११) दृढ़ संकल्प की पूजा

तथागत के वचन को सुन कर लोगों को संतोष हुआ; और वह माला-गंध-लेप ले, रम्य नगर से निकल बोधीसत्त्व के पास गये। माला आदि से पूजन बन्दना तथा प्रदक्षिणा कर, रम्यनगर में लौट आये। बोधीसत्त्व भी दस पारमिताओं पर विचार कर उत्साह पूर्वक दृढ़ संकल्प कर आसन से उठे। इसी से कहा है:—

बुद्ध बचन को सुनने के समय ही (लोगों का) मन शान्त होगया। सब ने मेरे समीप आकर प्रणाम किया। तब मैं बुद्ध के गुणों का ध्यान कर (तथा) चित्त को दृढ़ बना, दीपङ्कर को नमस्कार कर, आसन से उठा।"

तब सारे दस हज़ार ब्रह्माण्डों के देवताओं ने इकट्ठे हो, आसन से उठते हुए बोधीसत्त्व की दिव्यमाला-गंधों से पूजा कर इस प्रकार स्तुति-मंगल (पाठ) किया—"आर्य! तपस्वो सुमेध! तू ने आज बुद्ध दीपङ्कर के चरणों में बड़ी प्रार्थना की। वह तेरी (प्रार्थना) निर्विघ्न पूरी हो। तुझे भय-रोमाञ्च न हो। (तेरे) शरीर को कुछ भी रोग न हो। (तू) शीघ्र ही पारमिताओं को पूरा कर उत्तम बुद्धपद को प्राप्त करे। जिस प्रकार फल फूल वाले वृक्ष समय आने पर फलते फूलते हैं; इसी प्रकार तुम भी समय का अति क्रमण किये बिना शीघ्र ही बुद्ध-पद पर पहुंचो।" (स्तुति) पाठ के बाद (देवता) अपने अपने लोक को गये। देवताओं से प्रशंसित बोधीसत्त्व भी, "मैं दस पारमिताओं को पूरा कर, लाख असंख्येय कल्प-चौकड़ियों के बीतने पर बुद्धपद को प्राप्त होऊंगा"। बड़े उत्साह के साथ दृढ़ संकल्प कर, आकाश-मार्ग से हिमालय को चला गया। इसी से कहा है—

"आसन से उठते वक्त (तपस्वी सुमेध) पर देवता और मनुष्य दिव्य तथा मानुषिक—दोनों प्रकार के फूलों की वर्षा कर रहे थे । देवता तथा मनुष्य दोनों (तपस्वी सुमेध के लिए) मंगल कामना प्रकट कर रहे थे—"तेरी कामना महान् है। तेरी इच्छा पूरी हो। सब भय दूर हों; रोग शोक का विनाश हो । तुझे कोई विघ्न न हो। तू शीघ्र ही श्रेष्ठ बुद्ध-पद पर पहुंच जा।"

"जिस प्रकार फल वाला वृक्ष समय आने पर फलता है । उसी प्रकार महावीर ! तेरे में बुद्ध-ज्ञान फूले। जिस प्रकार दूसरे सभी बुद्धों ने दस पारमिताओं को पूरा किया; उसी प्रकार महावीर! तू दस पारमिताओं को पूरा कर जिस प्रकार दूसरे बुद्ध बोधि-मण्डप में बुद्ध पद को प्राप्त हुये, उसी प्रकार महावीर ! तू बुद्ध के परम ज्ञान का जानने वाला हो जिस प्रकार दूसरे बुद्धों ने धर्म-चक्र चलाया, उसी प्रकार महावीर ! तू धर्म का चक्र चला। जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन निर्मल चन्द्र चमकता है, उसी प्रकार तू भी पूर्ण-मन हो दस हज़ार ब्रह्माण्डों में प्रकाशित हो। जिस प्रकार राहु से मुक्त हुआ सूर्य्य (अपने) तेज से अत्यन्त प्रकाशित होता है, उसी प्रकार तू भी लोक से मुक्त हो (अपनी) श्री से प्रकाशित हो। जिस प्रकार सभी नदियां समुद्र की ओर जाती हैं; उसी प्रकार देवताओं सहित (सारा) लोक तेरे पास आवे।" इस तरह उन (देवताओं) ने सुमेध की स्तुति-प्रशंसा की । तब वह उस धर्मों को ग्रहण कर, उन का पालन करते हुये बन में प्रविष्ट हुआ।

सुमेध कथा समाप्त

पहिले के बुद्ध

(१) दीपंकर बुद्ध

रम्म नगर निवासियों ने भी नगर में प्रविष्ट हो बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को भोजन (=महादान) दिया। भगवान् (=शास्ता) उन को धर्मोपदेश दे, जन समूह को (त्रि०) शरण आदि से स्थापित कर, रम्म नगर से निकले । तब से आगे भी, आयु भर सभी बुद्धों के कर्तव्य करते हुये क्रमानुसार उपाधि-रहित परिनिर्वाण * को प्राप्त हुए। इस विषय में और सब बात, बुद्ध वंश में कहे अनुसार ही समझना चाहिये। वहां कहा है:—

* परिनिर्वाण दो प्रकार का है:—(i) उपाधि शेष-परिनिर्वाण (=पांच स्कन्धों के शेष रहित निर्वाण; जैसे जीवन्मुक्त) (ii) अनुपाधि शेष परिनिर्वाण।

"तब वे सङ्घ सहित बुद्ध (=लोक नामक) को भोजन करा दीपङ्कर बुद्ध (=शास्ता) की शरण गये । तथागत ने कुछ को शरणागमन * में, कुछ को पंच शीलों † में, तथा दूसरों को दस शीलों ‡ की दीक्षा दी। किसी को चार उत्तम-फलों** को प्राप्त साधु बनाया। किसी को असमान-धर्मों †† का परिसम्भिदा (-ज्ञान) दिया। उस नर-श्रेष्ठ ने किसी को आठ समापत्तियां दीं। किसी को तीन विद्यायें ‡‡ किसी को छः अभिज्ञायें दीं। वह महामुनि इस प्रकार से जन-समूह को उपदेश करते थे, इसी से उन (=लोकनाथ) का धर्म (=शासन) फैला। बड़ी ठुड्डी (=महाहनु), ऊंचे कन्धे वाले दीपङ्कर नामक (बुद्ध) ने बहुत से जनों को (संसार सागर से) पार उतार दुर्गति से मुक्त किया। महामुनि यदि एक लाख योजन पर भी ज्ञान के पात्र (=समझदार मनुष्य) को देखते, तो एक क्षण में वहां पहुंच, उसे बोध कराते थे।

प्रथम सम्मेलन (=अभिसमय) में बुद्ध ने एक अरब को बोध कराया। दूसरे सम्मेलन में नाथ ने एक लाख को बोध कराया। तृतीय-सम्मेलन के वक्त जब बुद्ध ने देव-लोक में धर्मोपदेश दिया, उस समय नौ खरब को बोध हुआ। दीपङ्कर बुद्ध (=शास्ता) के तीन सम्मेलन (=सन्निपात) हुए थे। पहला सम्मेलन दस खरब का हुआ था। फिर शास्ता के नारद-कूट (पर्वत) में एकान्त-वास करते वक्त एक अरब पुरुष मल-हीन शान्त अर्हत्-पद को प्राप्त हुये। जिस समय महावीर (=बुद्ध) सुदर्शन (नामक) ऊंचे पर्वत पर रहते थे, उस समय मुनि की नौ खरब की सभा थी। उस समय मैं जटाधारी घोर तपस्वी था। आकाश में विचरण करता था,

---

* बुद्ध, धर्म तथा सङ्घ की शरण में।

† अहिंसा, चोरी न करना, काम भोग में मिथ्याचार न करना (=पर स्त्री-गमन से दूर रहना), झूठ न बोलना तथा मद्य-पान न करना।

‡ ऊपर के पांच शील (तीसरे शील में सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य्य) ६. असमय (=विकाल) भोजन न करना, ७. नृत्य-गीत आदि का त्यागना, ८. माला गन्ध आदि का न धारण करना, ९. ऊंचे तथा महार्घ पलंगों का सेवन न करना। १०. चान्दी-सोने का ग्रहण न करना।

** स्रोत आपत्ति, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत्।

†† अर्थ, धर्म, निरुक्ति तथा प्रतिभान।

‡‡ दिव्य-चक्षु, पूर्व-जन्म स्मृति तथा आश्रय-क्षय ज्ञान।

और पांच अभिज्ञायें मुझे प्राप्त थीं। (एक एक बार) दस-बीस हजारों को धर्म का सक्षात्कार हुआ। एक दो (कर के) धर्म साक्षात्कार करने वालों की तो गणना असंख्य है।

तब भगवान् दीपङ्कर का अत्यन्त शुद्ध धर्म (=शासन), बहुत प्रसिद्ध, विस्तार, उन्नति और वैभव को प्राप्त हुआ। चार लाख छः अभिज्ञाओं वाले बड़े बड़े योग बलों से युक्त चार लाख अनुयायी, लोक-वेत्ता दीपङ्कर को सदैव घेरे रहते थे। उस समय यदि कोई (पुरुष) मानुषिक भव को छोड़, अमुक=अप्राप्त मन =शैक्ष रहते मनुष्य शरीर को छोड़ता, तो वह निन्दा का भाजन होता।

दीपङ्कर बुद्ध (की जन्म-भूमि) थी रम्मवती नाम का नगर। पिता था सुदेव नाम का क्षत्रिय। माता का नाम सुमेधा था। दीपङ्कर बुद्ध के सुमङ्गल और तिष्य नाम के दो प्रधान शिष्य (=अग्रश्रावक) तथा सागत नाम का हजूरी (=उपस्थापक) था। उन भगवान् की नन्दा तथा सुनन्दा नाम की दो प्रधान शिष्यायें (=अग्र श्राविकायें) थीं, और उन का बोधि-वृक्ष पीपल का वृक्ष था। महामुनि दीपङ्कर का शरीर, दीप-वृक्ष की तरह अस्सी हाथ ऊंचा था (और) प्रथित महान् शाल-वृक्षकी तरह शोभा देता था। उस महर्षि की आयु एक लाख वर्ष की (थी) उतने समय जीवित रह (=ठहर) कर उन्हों ने बहुत से जनों को (संसार सागर से पार) उतारा। सद्धर्म को प्रकाशित कर, तथा जन-समूह को पार उतार वह अपने शिष्यों सहित, अग्नि-राशि की तरह प्रज्वलित हो निर्वाण को प्राप्त हुए। वह ऋद्धि, वह यश, और चरणों में वह चक्ररत्न—वे सब अन्तर्धान हो गए। सच है सभी बनी चीज़े (=संस्कार) खाली (=शून्य) हैं।

(२) कौण्डिन्य बुद्ध।

भगवान् दीपङ्कर के बाद, एक असंखेय्य (कल्प) बीतने पर, कौण्डिन्य नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुये। उनके भी तीन सम्मेलन (=सन्निपात) हुये। पहले सम्मेलन में दस-खरब, दूसरे में दस अरब, तीसरे में नब्बे करोड़। उस समय बोधिसत्त्व, विजितावी नामक चक्रवर्ती (के रूप में) पैदा हुये थे। उन्हों ने बुद्ध प्रमुख एक लाख के भिक्षु संघ को भोजन दान (=महादान) दिया। भगवान् (शास्ता) ने 'बुद्ध होगा, यह प्रकाशित कर बोधिसत्त्व को धर्मोपदेश दिया। (विजितावी राजा) बुद्ध की धर्म-कथा सुन राज्य त्याग कर साधु हो गया। उसने

तीनों पिटक पढ़े, आठों समापत्तियां तथा पांचों अभिज्ञायें प्राप्त कीं; और मर-कर) बिना ध्यान नष्ट हुये ही ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुआ।

कौण्डिन्य बुद्ध की (जन्म भूमि) रम्मवती नाम नगर था। सुनन्द क्षत्रिय नामक पिता, सुजाता देवी नामक माता, भद्र तथा सुभद्र दो प्रधान शिष्य, अनुरुद्ध नामक उपस्थाक, तिष्या तथा उपतिष्या दो प्रधान शिष्यायें, शाल का मङ्गलमय बोधि (वृक्ष), अठासी हाथ ऊंचा शरीर, तथा लाख वर्ष की आयु थी।

(३) मंगल बुद्ध

उस के बाद एक असंखेय्य (कल्प) बीत जाने पर, एक ही कल्प में चार बुद्ध उत्पन्न हुए। मङ्गल, सुमन, रेवत, सोभित। भगवान् मङ्गल के तीन शिष्य सम्मेलन (=श्रावक सन्निपात) हुये। उन में से पहले सम्मेलन में दस खरब भिक्षु हुये, दूसरे में दस अरब, तीसरे में नब्बे करोड़। इन का आनन्द-कुमार नामक सौतेला भाई, नब्बे करोड़ की मण्डली के साथ धर्म सुनने के लिये बुद्ध (=शास्ता) के पास गया। बुद्ध ने उसको क्रमशः (धर्म) कथा कही। वह मंडली के साथ परिसम्भिदाज्ञान (सहित) अर्हत पद को प्राप्त हो गया। शास्ता उन कुल पुत्रों का पूर्व-चरित्र तथा योग-बल से मिलने वाले पात्र-चीवरों को जानते थे। उन्हों ने दाहिना हाथ पसार कर, "आओ भिक्षुओ" कहा। वे सभी उसी क्षण योग-बल से प्राप्त पात्र-चीवर धारण किये साठ वर्ष के वृद्ध साधुओं (=स्थविरों) की तरह के हो गये और बुद्ध को प्रणाम कर उन्हें चारों ओर से घेर लिया। यह इन का तीसरा शिष्य-सम्मेलन हुआ।

जिस प्रकार दूसरे बुद्धों का शरीर-प्रकाश चारों ओर अस्सी २ हाथ भर का था, इस प्रकार उन (मङ्गल) का नहीं था। उन भगवान् का शरीर-प्रकाश सदैव दस हज़ार ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहता था। (उन के शरीर प्रकाश से) वृक्ष, पृथ्वी, समुद्र आदि ही नहीं ऊखल इत्यादि तक भी सुवर्ण-वस्त्र से आच्छादित से जान पड़ते थे। इन की आयु नब्बे हज़ार वर्ष की हुई। इतने काल तक चांद सूर्य्य आदि (संसार को) अपने प्रकाश से प्रकाशित न करते थे। रात दिन का भेद (=परिच्छेद) मालूम नहीं होता था। (आज कल) जैसे सूर्य प्रकाश से पूर्ण दिन में विचरते हैं, वैसे ही (उस समय) वह सदा बुद्ध प्रकाश विचरते थे। (उस समय) लोग प्रातःकाल के फूलने वाले कुसमों तथा प्रातःकाल के बोलने वाले पक्षी आदि से दिन रात का

भेद समझते थे। (सवाल होगा—) क्या दूसरे बुद्धों में ऐसा प्रताप नहीं था ? नहीं था (ऐसा) नहीं; वे भी यदि चाहते तो दस हज़ार ब्रह्माण्ड अथवा उस से भी अधिक को, (अपने) प्रकाश से व्याप्त कर सकते। लेकिन पूर्व-प्रार्थना अनुसार, भगवान् मङ्गल की शरीर-प्रभा दूसरे (बुद्धों) की व्याप्त-प्रभा की तरह सदैव दस सहस्र लोक धातु को स्पर्श करती थी।

वह (भगवान् मङ्गल) बोधिसत्त्व (अवस्था) के समय, वेस्सन्तर * जैसे जन्म में उत्पन्न हो, पुत्र तथा स्त्री सहित वङ्क पर्वत में रहते थे। तब खरदाठिक नाम का एक यक्ष, महापुरुष का दान (देने) का विचार सुन, ब्राह्मण वेष में निकट आया, और उस ने महात्मा से दोनों बच्चे मांगे। महासत्त्व ने 'ब्राह्मण को दोनों बच्चे देने का संकल्प किया, और सन्तुष्ट चित्त हो जल-स्थल सहित सारी पृथ्वी को कम्पित कर दोनो बच्चे प्रदान किए। यक्ष ने टहलने की भूमि के छोर पर (लगी) बांही के तख्ते के सहारे खड़े हो, महात्मा की आंखों ही के सामने, दोनों बच्चों को मूली के ढेर की तरह खा लिया। महापुरुष को यक्ष के मूंह खोलने पर अग्नि-ज्वाला की तरह (उस के) मूंह से रक्तधारा निकलते देख कर भी, राई भर (=केशाग्रमात्र) कष्ट नहीं हुआ। बल्कि 'मेरा दान सुदान' सोच, उस के शरीर में महान् आनन्द पैदा हुआ। उस ने 'भविष्य काल में इस के फलस्वरूप इसी प्रभाव (=नीहार) से किरणें निकलें' ऐसी कामना की। उस की इस कामना के कारण ही बुद्ध होने पर उस के शरीर से किरणें निकल कर इतनी दूर तक पहुंची।

इन के और भी पूर्व चरित्र हैं। बोधिसत्त्व रहने की अवस्था में, एक बुद्ध के चैत्य को देख कर, 'इस बुद्ध के लिए मुझे जीवन दान करना चाहिए' सोचा, और मशाल (दण्डदीपक) लपेटने की तरह सारे शरीर को लिपटवाया, और लाख मूल्य की, रत्न-जड़ित सोने की थाली में घी भरवा, उस में हजारों बत्तियां जलवा, उसे सिर पर ले, सारे शरीर में आग लगवा, चैत्य की प्रदक्षिणा करते सारी रात बिता दी। इस प्रकार सूर्योदय तक प्रयत्न करते हुए, उन का लोम-छिद्र मात्र भी गर्म न हो, पद्म-गर्भ में प्रविष्ट जैसा रहा। धर्म अपनी रक्षा करने वालों की रक्षा करता है। इसी से भगवान् ने कहा है—

धर्मानुकूल आचरण करने वाले की, धर्म निश्चय से रक्षा करता है। ठीक से आचरण किया हुआ धर्म सुख की ओर ले जाता है। धर्म के ठीक आचरण

* भगवान् गौतम बुद्ध का मनुष्य-लोक में सिद्धार्थ से पहले का जन्म (देखो वेस्सन्तर जातक)।

करने का यह फल है कि धर्माचारी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

इस कर्म के फल स्वरूप भी, उन भगवान् (मङ्गल) के शरीर की किरण दस हज़ार ब्रह्माण्डों तक पहुंचा करती थीं।

उस समय हमारे बोधिसत्त्व सुरुचि नामक ब्राह्मण थे। बुद्ध को निमन्त्रित करने की इच्छा से उन्हों ने समीप जा, मधुर-धर्म कथा सुन, प्रार्थना की—

"भन्ते! कल मेरी भिक्षा ग्रहण करें।"

"ब्राह्मण! तुझे कितने भिक्षु चाहियें।"

"भन्ते! (आप के) अनुयायी भिक्षु कितने हैं?"

उस समय शास्ता का केवल प्रथम-सम्मेलन ही हुआ था, इस लिए "दस अरब" कहा।

"भन्ते! सभी को साथ ले, मेरे घर पर भिक्षा ग्रहण कर।"

बुद्ध (=शास्ता) ने स्वीकार किया। दूसरे दिन के लिए निमन्त्रित कर, घर लौटते हुए ब्राह्मण सोचने लगा—"मैं इतने भिक्षुओं को खिचड़ी, भात, वस्त्र आदि तो दे सकता हूं, लेकिन (इतनों के लिए) बैठने का स्थान कैसे होगा?"

उस की इस चिन्ता से, चौरासी हज़ार योजन की दूरी पर (स्वर्ग की) पण्डुकम्बल शिला पर बैठे देव-राज (इन्द्र) का आसन गर्म हो गया। शक्र (-देव) ने सोचा—कौन है जो मुझे इस स्थान से गिराना चाहता है? (तब) दिव्य चक्षु से देखते हुए, महापुरुष को देखा, और 'सुरुचि-ब्राह्मण बुद्ध-सहित भिक्षु संघ को निमन्त्रित कर, (उसे) बिठाने के स्थान की फिक्र में है, मुझे भी वहां पहुंच कर पुण्य में सहभागी होना चाहिए' (सोचा) बढ़ई का भेष बना, बसूली-कुल्हाड़ा हाथ ले, महात्मा के सम्मुख प्रकट हुआ। और पूछा "कि क्या किसी को मज़दूरी से काम है?"

महापुरुष ने देख कर पूछा, "क्या काम कर सकोगे?"

"ऐसा कोई हुनर नहीं जो मुझे मालूम न हो। घर हो, अथवा मण्डप, जो कुछ कोई बनवाना चाहे, उस के लिए मैं वही बना देना जानता हूं।"

"तो, मेरे पास काम है।"

"आर्य! क्या काम है?"

"मैं ने कल के लिए दस खरब भिक्षुओं को निमन्त्रित किया है। उन के बैठने के लिए मण्डप बनाओगे?"

"मैं बना दूंगा, यदि मुझे मेरी मज़दूरी दे सकोगे।" "तात! दे सकूंगा।"

"अच्छा ! तो बनाऊंगा ।"

(यह कह उस ने) जा कर एक स्थान को देखा । कसिण-मण्डल * की तरह समतल, बारह तेरह योजन का एक प्रदेश था । उस ने 'इतने स्थान में सप्त रत्न-मय मण्डप बने' ऐसा दृढ संकल्प कर देखा, तो उसी समय (एक) मण्डप पृथ्वी भेद कर उठ आया । उस के सोने के खम्भों पर चांदी के, रूपे के खम्भों पर सोने के, मणिस्तम्भों पर मणिमय सप्त-रत्न-मय स्तम्भों पर सप्त-रत्न-मय घड़े थे । तब (सोचा—)मण्डप में बीच बीच में घण्टियों की झालर लटक जावे । उस के देखते ही देखते एक ऐसी झालर लटक गई, जिस से मन्द वायु से हिलने पर पांचों प्रकार के बाजों(=तूरिय-नाद) का मधुर शब्द निकलता था, और दिव्य सङ्गीत बजने का सा समा होता था । सोचा—'बीच बीच में सुगन्धित माला दाम आदि लटकें ।' मालायें लटक गईं । 'पृथ्वी भेद कर दस खरब भिक्षुओं के लिए आसन और (सामने पात्र रखने के लिए) आधार बन जावें ।' उसी समय बन गए । 'एक एक कोने में एक २ पानी की चाटी निकल आए ।' पानी की चाटियां निकल आईं । इतना हो जाने पर ब्राह्मण के पास जा कर कहा—'आर्य ! आवें ! अपना मण्डप देख कर मुझे मज़दूरी दें ।' महापुरुष ने जा कर मण्डप देखा । देखने के साथ ही उस का सारा शरीर पांच प्रकार के आनन्द (=प्रीति) † से भर गया ।

तब मण्डप को देख कर उसे यह (विचार) हुआ । 'यह मण्डप मनुष्य का बनाया हुआ नहीं है । मेरे विचार और मेरे गुण के कारण निस्सन्देह इन्द्र लोक गर्म हुआ होगा । उस के बाद देव-राज शक्र ने यह मण्डप बनवाया होगा । मेरे लिए यह उचित नहीं है कि ऐसे मण्डप में, केवल एक ही दिन दान दूं । मैं एक सप्ताह तक (दान) दूंगा ।'

कितना भी बाहरी दान हो, उस से बोधिसत्वों का सन्तोष नहीं होता । अलंकृत शिर को काट कर, अञ्जित आंखों को निकाल कर, अथवा हृदय-मांस को नोच कर (=उब्बत्तेत्वा) देने से ही बोधिसत्वों को त्याग के सम्बन्ध में सन्तोष होता है । शिवि जातक ‡ में हमारे बोधिसत्त्व को भी प्रतिदिन पांच

---

* योगाभ्यास के लिए मिट्टी का बना हुआ समतल पहिये सदृश चक्र ।

† क्षुद्र, क्षणिक, उद्वेग-मय, तरंग-सदृश तथा स्फुरति-मय । (दे० विशुद्धि-मार्ग)

‡ देखो शिवि जातक।

अम्मण * कार्षापण दे, नगर में चारों द्वारों के बीच में दान करते हुए, उस दान से त्याग विषयक सन्तोष नहीं हो सकता। लेकिन जब देव-राज इन्द्र ने ब्राह्मण वेष धर, आ, आंखें मांगीं; तब, उन्हें उखाड़ कर देते हुए उन्हें प्रसन्नता हुई। (ऐसा करते हुए) चित्त में बाल की नोक के बराबर भी विकार नहीं हुआ। इस प्रकार (बाहरी) दान से बोधिसत्त्वों की तृप्ति नहीं होती।

इसलिए उस महापुरुष ने भी, 'मुझे दस खरब भिक्षुओं को सप्ताह भर (भोजन) दान देना चाहिए,' सोच, उसे मण्डप में बिठा सप्ताह भर 'गोपान' (=गवपाण) का दान दिया। बड़े २ कड़ाहों को दूध से भर, चूल्हे पर चढ़ा, दूध के गाढे हो जाने पर, उस में थोड़े से चावल डाल कर, पकने पर, मधुर शक्कर और घी से पकाये हुए भोजन को गोपान (=गवपाण) कहते हैं। अकेले मनुष्य उसे नहीं परोस सकते थे। देवताओं ने भी इकट्ठे हो कर परोसा। बारह तेरह योजन का लम्बा-चौड़ा स्थान भी भिक्षुओं को (बैठ कर) खाने के लिए काफी न था, लेकिन वह अपने २ योगबल के प्रभाव से बैठ गये। अन्तिम दिन सब भिक्षुओं के पात्र धुलवा कर, (उन्हें), घी, मक्खन, मधु, खांड (=फाणित) आदि भैषज्य से भर कर, तीन २ चीवरों के साथ दिया। नये साधु बने। भिक्षुओं को मिले चीवर के कपड़े (=शाटक) ही लाख के मूल्य के थे। बुद्ध ने (पुण्य का) अनुमोदन करते हुये 'इस पुरुष ने इस प्रकार का महादान दिया है, भविष्य में यह क्या होगा?' सोच, 'लक्षाधिक दो असंखेय्य कल्पों के बीत जाने पर, यह गौतम नामक बुद्ध होगा,' देख, महा पुरुष को सम्बोधन कर, कहा—"तू इतना समय बीत जाने पर गौतम नामक बुद्ध होगा।" महापुरुष इस कथन (=व्याकरण) को सुन, "मैं बुद्ध होऊंगा, मुझे घर-वास से क्या मतलब? मैं साधु होता हूं" सोच, उत्तनी सम्पत्ति को थूक के समान त्याग, बुद्ध (=शास्ता) के पास प्रव्रजित हो, बुद्ध-वचन सीख, अभिज्ञा तथा समापत्तियां प्राप्त कर, आयु के बीत जाने पर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

भगवान् मंगल के नगर का नाम उत्तर था। उन का पिता भी उत्तर नामक क्षत्रिय था। माता का नाम भी उत्तरा था। सुदेव तथा धर्मसेन दो उन के प्रधान शिष्य थे। पालित नामक परिचारक (=उपस्थापक) था। शीवली और अशोका—दो प्रधान शिष्यायें थीं। नाग-वृक्ष बोधि था। अठासी हाथ ऊंचा उन का शरीर

---

* बोर।

था। नव्वे हज़ार वर्ष जीवित रह कर, जब वह निर्वाण को प्राप्त हुये तो दस हज़ार ब्रह्माण्डों में एक दम अन्धकार छा गया। सभी ब्रह्माण्डों में लोग रोने पीटने लगे।

'कौडिन्य (=कोण्डञ्ज) के बाद मंगल नामक नायक ने लोक के अन्धकार का नाश कर धर्म रूपी मशाल (=उल्का) को धारण किया।'

(४) सुमन बुद्ध

इस प्रकार दस हज़ार ब्रह्माण्डों को अन्धकार-मय बना जब भगवान् (मङ्गल) निर्वाण को प्राप्त हुए तो सुमन नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उन के भी तीन शिष्य सम्मेलन (=श्रावक-सन्निपात) हुए। प्रथम सम्मेलन में दस खरब भिक्षु (जमा) हुये। दूसरे (सम्मेलन में) कञ्चन पर्वत पर नौ खरब, तीसरे में आठ खरब।

उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व अतुल नाम के बड़े ऋद्धि वाले महानुभाव सम्पन्न नाग-राज थे। बुद्ध की उत्पत्ति को सुन, उस ने अपने जाति-भाइयों के साथ, नाग लोक से निकल कर, दस खरब भिक्षुओं से घिरे उन भगवान् का दिव्य वाद्य (=तुरीय-नाद) से सत्कार किया, और भोजन करा प्रत्येक (भिक्षु) को दुशाले का जोड़ा दे तीनों (रत्नों) की शरण ग्रहण की। सुमन बुद्ध ने भी भविष्य-द्वाणी की—'तू भविष्य में बुद्ध होगा।' भगवान् सुमन के नगर का नाम खेम था। सुदत्त नामक राजा उन का पिता था। सिरिमा नामक माता थी। शरण और भावितात्मा, दो प्रधान शिष्य थे। उदेन नामक परिचारक था। सोणा और उप-सोणा दो प्रधान शिष्यायें थीं। नाग-वृक्ष बोधि था। नव्वे हाथ ऊंचा शरीर, और नव्वे हज़ार वर्ष ही आयु का प्रमाण था।

"(भगवान्) मङ्गल के बाद सब बातों (=धर्मों में अनूप तथा सब प्राणियों में श्रेष्ठ सुमन नामक बुद्ध (=नायक) हुए।"

(५) रेवत बुद्ध

उन के बाद रेवत नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुये। उन के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुये। प्रथम सम्मेलन की तो गणना नहीं। दूसरे में दस खरब भिक्षु (जमा) हुए। तसरे में भी उतने ही। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व अति, देव, नामक ब्राह्मण थे। उन्हों ने वह बुद्ध (=शास्ता) का धर्मोपदेश सुन, तीनों रत्नों

की शरण ले सिर पर हाथ की अञ्जली जोड़ी, और चित्त-मल के नाश के बारे में उन बुद्ध की स्तुति कर, वस्त्र को एक कन्धे पर रख पूजा की। उन ने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

(खेत बुद्ध) के नगर का नाम धान्यवती था। पिता विपुल नामक क्षत्रिय थे। माता का नाम विपुला था। वरुण और ब्रह्मदेव (दो) प्रधान शिष्य थे। सम्भव नामक परिचारक था। भद्रा और सुभद्रा प्रधान शिष्यायें थीं। नाग-वृक्ष ही बोधि था। शरीर अस्सी हाथ ऊंचा और आयु साठ हज़ार वर्ष की थी।

"(भगवान्) सुमन के बाद खेत नामक बुद्ध (=नायक) हुए। (वह) अनुपम=अदृश्य=अतुल, उत्तम बुद्ध (=जिन) थे।"

(६) शोभित बुद्ध

उन के बाद शोभित नामक (=शास्ता) उत्पन्न हुये। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुये। पहले सम्मेलन में एक अरब भिक्षु थे। दूसरे में नव्वे करोड़। तीसरे में अस्सी करोड़। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व अजित नामक ब्राह्मण थे। उन्होंने बुद्ध का धर्मोपदेश सुन, (तीन रत्नों की) शरण ग्रहण की, और बुद्ध सहित भिक्षु संघ को भोजन दिया। उन ने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।" उन भगवान् का नगर सुधर्म्म नामक था। पिता सुधर्म नामक राज था। माता का भी नाम सुधर्मा था। असम और सुनेत्र (दो) प्रधान शिष्य थे। अनोम नामक परिचारक था। नकुला और सुजाता प्रधान शिष्यायें थीं। नाग-वृक्ष (की) ही बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊंचा शरीर और नव्वे हज़ार वर्ष की आयु थी। "(भगवान्) खेत के बाद शोभित नामक बुद्ध (=नायक) (हुए)। (वह) एकाग्र-चित्त, शान्त-चित्त, असम=अद्वितीय पुरुष थे।"

(७) अनोम दर्शी बुद्ध

उस के बाद, एक असंखेय्य (कल्प) बीत जाने पर एक कल्प में अनोमदर्शी पद्म तथा नारद, तीन बुद्ध हुए। भगवान् अनोमदर्शी के तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहिले में आठ लाख भिक्षु, दूसरे में सात लाख, तीसरे में छः लाख (एकत्रित हुए)। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व, बड़े ऋद्धि वाले, महा प्रतापी, अनेक लाख-करोड़ यक्षों के स्वामी, एक यक्ष-सेनापति थे। उन्हों ने बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुन, आ कर बुद्ध सहित भिक्षु संघ को भोजन (=महादान) दिया। बुद्ध ने

भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" भगवान् अनोमदर्शी के नगर का नाम चन्द्रावती था। पिता यशवान् नामक राजा था। माता का नाम यशोधरा था। निशम और अनोम दो प्रधान शिष्य थे। करुण नामक परिचारक था। सुन्दरी तथा सुमना दो प्रधान शिष्यायें थीं। अर्जुन-वृक्ष (की) बोधि थी। अठावन हाथ ऊंचा शरीर और लाख वर्ष की उन की आयु थी।

"(भगवान्) शोभित के बाद नर-श्रेष्ठ अमितयश, तेजस्वी, दुरतिक्रम अनोमदर्शी बुद्ध हुए।"

(८) पद्म बुद्ध

उन के बाद पद्म नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उन के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में दस खरब भिक्षु थे। दूसरे में तीन लाख। ग्राम से दूर जंगल में होने वाले तीसरे सम्मेलन में महावन-खण्ड-निवासी दो लाख भिक्षु थे। तब तथागत के उस बन-खण्ड में रहते समय (हमारे) बोधिसत्त्व सिंह के रूप में जन्मे थे। सिंह ने बुद्ध को निरोध समाधि लगाए देख, प्रसन्न चित्त हो बन्दना तथा प्रदक्षिणा की, और (अन्यत्र) प्रीति तथा हर्ष से युक्त हो, तीन बार सिंह-नाद किया। सप्ताह भर तक उन्हों ने बुद्ध की ओर ध्यान करने से उत्पन्न उस प्रीति को न छोड़ा, और उस प्रीति-सुख में निमग्न हो, शिकार के लिए न जा उपासन में लग्न हो अपना जीवन-परित्याग किया। बुद्ध (शास्ता) ने सप्ताह के बीतने पर निरोध समाधि से उठ, सिंह को देख, सोचा—'यह सिंह भिक्षु-संघ के प्रति चित्त में भक्ति कर, संघ को भी प्रणाम करेगा, और संकल्प किया कि भिक्षु संघ आवे।' उस समय भिक्षु आ गए। सिंह के चित्त में सङ्घ के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। बुद्ध ने उस का मन देख कर कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" भगवान् पद्म का चम्पक नामक नगर था। असम नामक राजा पिता था। माता भी असमा नामक थी। साल और उपसाल (दो) प्रधान शिष्य थे। वरुण नामक परिचारक था। रामा तथा सुरामा प्रधान शिष्यायें थीं। सोण-वृक्ष की बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊंचा शरीर और लाख वर्ष की आयु थी।

"अनोम दर्शी के बाद नर-श्रेष्ठ, असम=अद्वितीय-पुरुष पद्म नामक बुद्ध हुये।"

(९) नारद बुद्ध

उनके बाद नारद नामक बुद्ध उत्पन्न हुये। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन

हुए। पहले में दस खरब। दूसरे में नौ खरब। तीसरे में आठ खरब भिक्षु (जमा) हुये। उस समय बोधिसत्त्व ने ऋषियों के नियमानुसार साधु बन पांच अभिज्ञायें (=दिव्य-शक्तियां) और आठ समापत्तियां प्राप्त कर, बुद्ध सहित भिक्षु संघ को भोजन दान दे, चन्दन से पूजा की। उन्होंने भी कहाः—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" उन भगवान् का धन्यवती नामक नगर था। सुदेव नामक क्षत्रिय पिता था। अनोमा नामक माता थी। भद्रशाल तथा जितामंत्र (दो) प्रधान शिष्य थे। वशिष्ठ नामक परिचारक (=उपस्थापक) था। उत्तरा तथा फाल्गुणी, (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। महासोण-वृक्ष नाम (की) बोधि थी। अठासी हाथ ऊंचा शरीर; और नव्वे हज़ार वर्ष की आयु थी।

"(भगवान्) पद्म के बाद नर-श्रेष्ठ, असम=अद्वीतीय नारद नामक बुद्ध हुए।"

(१०) पद्मोत्तर बुद्ध

नारद बुद्ध के बाद, एक लाख कल्प बीत जाने पर, एक कल्प में एक पद्मोत्तर नामक बुद्ध ही उत्पन्न हुये। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुये। प्रथम सम्मेलन में दस खरब भिक्षु (जमा) हुए। वेभार पर्वत * के दूसरे सम्मेलन में नौ खरब। तीसरे में आठ खरब। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व जटिल नामक महा-नागरिक (=महाराष्ट्रीय) थे। उन्हों ने बुद्ध सहित भिक्षु संघ को तीनों भिक्षु-वस्त्र (=चीवर) दान दिए। उन (बुद्ध ने भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" भगवान् पद्मोत्तर के समय (दूसरे) पन्थाई (=तीर्थिक) नहीं थे। सब देवता और मनुष्य उन (बुद्ध) की शरण गए। उन का (जन्म) हंसवती नाम के नगर (में हुआ)। आनन्द नाम का क्षत्रिय पिता था। सुजाता नामक देवी माता थी। देवल तथा सुजात दो प्रधान शिष्य थे। सुमन नामक परिचारक था। अमिता तथा असमा दो प्रधान शिष्यायें थीं। शाल-वृक्ष की बोधि थी। शरीर अठासी हाथ ऊंचा था, और शरीर की प्रभा चारों ओर बारह योजन तक फैलती थी। (उन की) आयु लाख वर्ष (की) थी।

"(भगवान्) नारद के बाद नर-श्रेष्ठ, सागर की तरह से निश्चल पद्मोत्तर नामक जिन बुद्ध हुए।"

(११) सुमेध बुद्ध

उस के बाद तीस लाख कल्प बीत जाने पर, एक कल्प में सुमेध और

---

* वैभार-गिरि (राजगृह में, जिस के पास काल शिला)।

सुजात दो बुद्ध पैदा हुए। सुमेध के भी तीन शिष्य सम्मेलन सुदर्शन नगर में हुए। प्रथम सम्मेलन में एक अरब अर्हत् जमा थे। दूसरे में नव्वे करोड़, तीसरे में अस्सी करोड़। (उस समय) बोधिसत्त्व उत्तर नामक ब्राह्मणयुवक (माणवक) थे। (उन्हों ने) पृथ्वी में गाड कर रखे हुए अस्सी करोड़ धन को त्याग, बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को महादान दे, धर्म को सुन, तीनों (रत्नों) की शरण ग्रहण की, और (घर से) निकल कर साधु होगए। उन (बुद्ध) ने भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।"

भगवान् सुमेध का सुदर्शन नाम का नगर था। सुदत्त नाम का राजा पिता था। माता भी सुदन्ता नाम की थी। सरण और सर्वकाम दो प्रधान शिष्य थे। सागर नामक परिचारक था। रामा और सुरामा दो प्रधान शिष्यायें थीं। महा-कदम्ब-वृक्ष (की) बोधि थी। अठासी हाथ ऊंचा शरीर था। नव्वे हज़ार वर्ष की आयु थी।

'(भगवान्) पद्मोत्तर के बाद सुमेध नामक नायक हुए। वह दुलभ, उग्रतेज, लोक-श्रेष्ठ मुनि थे।'

(१२) सुजात बुद्ध

उन के बाद सुजात नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उन के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में साठ हज़ार भिक्षु थे। दूसरे में पचास हज़ार। तीसरे में चालीस हज़ार। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व चक्रवर्ती राजा थे। वे 'बुद्ध उत्पन्न होने की बात' सुन, पास जा, धर्म सुन, बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को सप्त रत्नों के साथ चारों महाद्वीपों का राज्य दान दे, बुद्ध के पास साधु हुए। सभी देश-वासी (उस समय) देश की उपज ले, विहार (=आराम) के काम को पूरा करते हुए, बुद्ध सहित संघ को महादान देते थे। उन ने भी उसे 'बुद्ध' (होगा) कहा। उन भगवान् का नगर सुमङ्गल था। उग्गत नाम राजा पिता था। प्रभावती नाम की माता थी। सुदर्शन और देव (दो) प्रधान शिष्य थे। नारद नामक परि-चारक (=उपस्थापक) था। नागा और नागसमाला (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। महावेणु-वृक्ष (की) बोधि थी। कम छिद्र घनी शाखा वाले (बोधि) की ऊपर वाली शाखायें मोर-पुच्छ-समूह की तरह चमकती थीं। उन भगवान् का शरीर पचास हाथ ऊंचा था। आयु नव्वे हज़ार वर्ष की (हुई)।

"वहां उस मण्ड-कल्प में, सिंह की सी ठोढी (=हनु) वाले, वृषभ-स्कन्ध अप्रमेय, दुर्लभ सुजात नामक बुद्ध (=नायक) हुए।"

(३) प्रियदर्शी बुद्ध

उस के बाद अठारह सौ कल्प बीत जाने पर, एक ही कल्प में प्रिय-दर्शी, अर्थ-दर्शी, धर्म-दर्शी—तीन बुद्ध उत्पन्न हुए। प्रिय-दर्शी के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए थे। पहले सम्मेलन में दस खरब भिक्षु, दूसरे में नौ खरब, तीसरे में आठ खरब थे। उस समय बोधिसत्त्व काश्यप नामक ब्राह्मण युवक (के रूप में पैदा हुए) थे। उन्हों ने तीनों वेदों में पारङ्गत हो, बुद्ध के उपदेश को सुन दस खरब धन के व्यय से विहार(=सङ्घाराम) बनवा कर, (त्रि-) शरण तथा (पंच-) शील को ग्रहण किया। तब बुद्ध ने कहा—"अठारह सौ कल्पों के बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का अनोम नाम का नगर था। सुदिन्न नामक राजा पिता था। चन्दा नामक माता थी। पालित तथा सर्वदर्शी (दो) प्रधान शिष्य थे। शोभित नामक उपस्थापक था। सुजाता तथा धम्मदिन्ना (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। पियंगु (-वृक्ष) की बोधि थी। अस्सी हाथ ऊंचा शरीर और नव्वे हज़ार वर्ष की आयु थी।

"(भगवान्) सुजात क बाद, दुर्लभ, असदृश, महा यशस्वी, स्वयम्भु (नायक) लोक-नायक हुए।"

(१४) अर्थ-दर्शी बुद्ध

उनके बाद अर्थ-दर्शी नामक बुद्ध उत्पन्न हुये। उन के भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुये। पहले में अट्ठानवे लाख भिक्षु (एकत्रित) हुये। दूसरे में अट्ठासी लाख, (और) तीसरे में भी उतने ही। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व सुसीम नामक महा ऋद्धिवान् तापस के रूप में पैदा हुए थे, उन्होंने देव-लोक से मन्दार पुष्प का छत्र ला बुद्ध की पूजा की। उन्होंने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का शोभित नाम का नगर था। सागर नामक राजा पिता था। सुदर्शना नाम की माता थी। शान्त तथा उपशान्त (दो) प्रधान शिष्य थे। अभय नामक परिचारक (=उपस्थापक) था। धम्मा और सुधम्मा प्रधान शिष्यायें थीं। चम्पा-वृक्ष (की) बोधि थी। उनका शरीर अस्सी हाथ ऊंचा था। शरीर की प्रभा

सदैव, चारों ओर एक योजन तक फैली रहती थी। उनकी आयु लाख वर्ष की (हुई)

"वहीं उस मण्ड-कल्प में नर श्रेष्ठ (=नरऋषभ) अर्थदर्शी ने महान् अन्धकार को नाश कर उत्तम बुद्ध पद को प्राप्त किया।"

(१५) धर्म दर्शी बुद्ध

उनके बाद धर्म दर्शी नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उन के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुये। पहले सम्मेलन में एक लाख भिक्षु थे। दूसरे में सत्तर करोड़, तीसरे में अस्सी करोड़। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व देवराज शक्र के रूप में पैदा हुये थे। उन्होंने दिव्य गन्ध-पुष्प तथा दिव्य-वाद्य से (बुद्ध की) पूजा की। बुद्ध ने भी कहा—"(तू बुद्ध होगा)"।

उन भगवान् का सरण नाम का नगर था। सरण नाम का राजा पिता था। सुनन्दा नाम की माता थी। पदुम तथा पुस्सदेव (दो) प्रधान शिष्य थे। सुनेत्र नामक परिचारक (=उपस्थापक) था। क्षेमा तथा सर्वनामा दो प्रधान शिष्यायें थीं। रक्त-कुरबक (नामक) वृक्ष की बोधि थी। यह (वृक्ष) बिम्बिजाल भी कहा जाता है। अस्सी हाथ ऊंचा (उस का) शरीर था और आयु भी लाख वर्ष की।

"उसी मण्ड-कल्प में महा यशस्वी धम्मदर्शी (बुद्ध) उस अन्धकार का नाश कर देवताओं सहित (सारे) लोक में प्रकाशित हुए।"

(१६) सिद्धार्थ बुद्ध

उस के चौरानवे कल्प बीतने के बाद, एक कल्प में सिद्धार्थ नाम के एक ही बुद्ध उत्पन्न हुए। उन के भी तीन शिष्य-सम्मेलन (हुए) थे। पहले सम्मेलन में दस खरब, दूसरे में नौ खरब, तीसरे में आठ खरब भिक्षु थे। उस (हमारे) बोधिसत्त्व उग्र-तेजा, सिद्धि (=अभिज्ञा)-प्राप्त, मंगल नामक तापस के रूप में पैदा हुए थे। उन्हों ने महा जम्बु (=जामुन) वृक्ष के फल को ला कर तथागत को प्रदान किया। बुद्ध (=शास्ता) ने उस फल को सेवन कर बोधिसत्त्व से कहा—"चौरानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् (सिद्धार्थ) के नगर का नाम वेभार था। जयसेन नामक राजा पिता था। सुफस्सा नाम की माता थी। सम्बहुल तथा सुमित्र दो प्रधान शिष्य थे। रेवत नामक उपस्थापक था। सीवली और सुरामा प्रधान शिष्यायें थीं। कर्णिकार-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊंचा (उन का) शरीर था और आयु लाख वर्ष की।

"(भगवान्) धर्म-दर्शी के बाद सिद्धार्थ नामक नायक का, सारे अन्धकार को नाश कर, सूर्य्य की भान्ति उदय हुआ।"

(१७) तिष्य बुद्ध

उस के ब्यानवे कल्प बीत जाने पर, एक कल्प में तिस्स तथा फुस्स—दो बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान् तिष्य के तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक अरब दूसरे में नव्वे करोड़, तीसरे में अस्सी करोड़ भिक्षु थे। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व महाऐश्वर्य-शाली, महायशस्वी सुजात क्षत्रिय के रूप में पैदा हुए थे। उन्हों ने ऋषियों के नियम के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण की, और ऋद्धि को प्राप्त हो, बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुन, दिव्य मन्दार-पदुम तथा पारिजात पुष्प ले, चारों प्रकार की परिषद् के बीच आसीन तथागत की पूजा की, (और) आकाश में फूलों का चंदवा लगवा दिया। उन शास्ता ने भी कहा—"ब्यानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का क्षेम नामक नगर था। जन-सन्ध नामक क्षत्रिय पिता था। पद्मा (=पदुमा) नामक माता थी। ब्रह्मदेव और उदय दो प्रधान शिष्य थे। सम्भव नाम का परिचारक (=उपस्थापक) था। फुस्सा तथा सुदत्ता दो प्रधान शिष्यायें थीं। असन-वृक्ष (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊंचा उन का शरीर था। लाख वर्ष की आयु थी।

"(भगवान्) सिद्धार्थ के बाद, अनुपम, अद्वितीय, अनन्त शीलों से युक्त तथा अनन्त यशों के भागी तिष्य (नामक) लोक के श्रेष्ठ नायक (=बुद्ध) हुए।"

(१८) पुष्य बुद्ध

उन के बाद फुस्स नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उन के भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में साठ लाख भिक्षु (जमा) हुए। दूसरे में पचास (लाख), तीसरे में बत्तीस (लाख)। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व विजिता-वी नामक क्षत्रिय थे। वह (अपने) महान् राज्य को छोड़, बुद्ध (=शास्ता) के पास सन्यासी हो, तीनों पिटक पढ़, जन-समूह को धर्म-उपदेश करते तथा सदाचार (=शील-पारमिता) को पूरा करते थे। (फुस्स) बुद्ध ने भी उस के बारे में वैसी ही भविष्यद्वाणी की। उन भगवान् का काशी नामक नगर था। जयसेन नामक राजा पिता था। सिरिमा नामक माता थी। सुरक्खित और धम्मसेन (दो) प्रधान

शिष्य थे। सभियो नामक उपस्थापक था। चाला और उपचाला (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। आमलक वृक्ष (की) बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊंचा शरीर था, और नव्वे हज़ार वर्ष की आयु थी।

"उस मण्डल-कल्प में अनुत्तर=अनुपम=असदृश, लोक में सर्व-श्रेष्ठ फुस्स नामक बुद्ध हुए।"

(१९) विपश्यी

उस के बाद, इकानवे कल्प बीत जाने पर भगवान् विपस्सी उत्पन्न हुए। उन के भी तीन शिष्य-सम्मेलन थे। पहिले सम्मेलन में अड़सठ लाख, दूसरे में एक लाख, तीसरे में अस्सी हज़ार। उस समय बोधिसत्त्व बड़े ऋद्धिमान्, महा प्रतापी, अतुल नामक नाग राजा थे। (अतुल ने) सप्त रत्न जड़ित, सोने का सिंहासन भगवान् (विपश्यी) को प्रदान किया। उन (भगवान्) ने भी भविष्य-द्वाणी की—"अब से इकानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन (भगवान्) का बन्धुमती नाम का नगर था। बन्धुमान् नाम का राजा पिता था। बन्धुमती नाम की माता थी। खण्ड और तिष्य प्रधान शिष्य थे। अशोक नामक परिचारक था। चन्द्रा और चन्द्रमित्रा प्रधान शिष्यायें थीं। पाटलि वृक्ष (की) बोधि थी। शरीर अस्सी हाथ ऊंचा था और शरीर की प्रभा सदैव सात योजन तक फैली रहती थी। उन की आयु अस्सी हज़ार वर्ष की थी।

"(भगवान्) फुस्सा के बाद विपस्सी नामक नर-श्रेष्ठ, नेत्रधारी, बुद्ध लोक में उत्पन्न हुए।"

(२०) शिखी बुद्ध

उन के बाद इकत्तीस कल्प बीत जाने पर, सिखी (शिखी) और वेस्सभू (विश्वभू) दो बुद्ध उत्पन्न हुए। सिखी के भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक लाख भिक्षु थे। दूसरे में अस्सी हज़ार, तीसरे में सत्तर (हज़ार)। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व अरिन्दम नामक राजा थे। उन्हों ने बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को चीवर और भोजन (महादान) दे, सप्त रत्नों से सजा गज-रत्न दे, फिर (गज-रत्न के बदले में), उस के समान मूल्य की विहित (=कप्पिय) * वस्तुयें दीं। उन ने भी कहा—'अब से इकत्तीस कल्प बीत जाने पर, तू बुद्ध होगा।"

---

* ऐसी चीजें, जिन का ग्रहण, भिक्षु के लिये अनुचित न हो।

उन भगवान् का अरुणवती नाम का नगर था । अरुण नाम का क्षत्रिय पिता था । प्रभावती नाम की माता थी । अभिभू और सम्भव प्रधान शिष्य थे । क्षेमङ्कर नामक परिचारक था । मखिला और पदुमा प्रधान शिष्यायें थीं । पुण्डरीक वृक्ष (की) बोधि थी । सैंतीस हाथ ऊंचा शरीर था और शरीर की प्रभा तीन योजन तक फैली होती थी । सैंतीस हज़ार वर्ष की उन की आयु थी ।

(भगवान्) विपस्सी के बाद, अतुलनीय, अद्वितीय, नर-श्रेष्ठ सिखि नामक जिन बुद्ध हुये ।

(२१) विश्वभू बुद्ध

उन के बाद वेस्सभू नामक शास्ता उत्पन्न हुए । उन के भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुये । पहले सम्मेलन में अस्सी लाख भिक्षु थे, दूसरे में सत्तर (-लाख) तीसरे में साठ लाख । उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व सुदर्शन नामक राजा थे । उन्होंने बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को चीवर और भोजन दे, उन के पास प्रव्रजित हुये । वर सद् (आचार) तथा (सद्) गुणों से युक्त थे । बुद्ध रत्न में उनकी अपार श्रद्धा थी । उन भगवान् ने भी कहा—"अब से इकतीस कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा ।"

उन भगवान् का अनूपम नाम का नगर था । सुप्पतीत (सुप्रतीत) नाम का राजा पिता था । यशोवती नामक माता थी । सोम उत्तर प्रधान शिष्य थे । उप-शान्त नामक परिचारक था । दामा और सुमाला प्रधान शिष्यायें थीं । शाल-वृक्ष (की) बोधि थी । साठ हाथ ऊंचा शरीर था । साठ हज़ार वर्ष की उनकी आयु थी ।

"उसी मण्ड-कल्प में अतुलनीय, अद्वितीय, वेस्सभू नाम के बुद्ध लोक में उत्पन्न हुये ।"

(२२) ककुच्छ बुद्ध

उस के बाद इस कल्प में ककुसन्ध, कोणागमन, काश्यप और हमारे भगवान्—यह चार बुद्ध उत्पन्न हुए । भगवान् ककुसन्ध का एक ही सम्मेलन हुआ । उस में चालीस हज़ार भिक्षु एकत्र हुए । उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व खेम नामक राजा थे । उन्हों ने बुद्ध सहित भिक्षु संघ को पात्र-चीवरों सहित भोजन तथा अंजन आदि दवाइयां प्रदान कीं और बुद्ध का धर्मोपदेश सुन प्रव्रज्या ग्रहण की । उन ने भी कहा—"तू बुद्ध होगा ।"

भगवान् ककुसन्ध का खेम नाम का नगर था । अग्निदत्त नामक ब्राह्मण

पिता था। विशाखा नामक ब्राह्मणी माता थी। विधुर तथा सञ्जीव प्रधान शिष्य थे। बुद्धिज नामक परिचारक था। सामा तथा चम्पका प्रधान शिष्यायें थीं। महान् शिरीष-वृक्ष (की) बोधि थी। चवालीस हाथ ऊंचा शरीर था। आयु उन की चालीस हज़ार वर्ष की थी।

भगवान् (वेस्सभू) के बाद नर-श्रेष्ठ, अप्रमेय, दुर्लभ (आसानी से समीप न जा सकने योग्य) ककुसन्ध नाम के बुद्ध हुए।"

(२३) कोणागमन बुद्ध

उन के बाद कोणागमन बुद्ध उत्पन्न हुए उन का भी एक ही शिष्य-सम्मेलन हुआ। उस में तीस हज़ार भिक्षु (एकत्र) हुए। उस समय हमारे बोधिसत्त्व पर्वत नामक राजा थे। उन्हों ने अमात्यों के साथ, बुद्ध के पास जा, धर्मोपदेश सुना; और बुद्ध सहित भिक्षु-सङ्घ को निमन्त्रित कर, प्रतूर्ण, चीनवस्त्र, रेशम (कोसेय्य) कम्बल, दुकूल और स्वर्ण-वस्त्र के साथ भोजन प्रदान कर शास्ता के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। उन ने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का सोमवती नाम का नगर था। यज्ञदत्त नामक ब्राह्मण पिता था। उत्तरा नामक ब्राह्मणी माता थी। भीयंसु और उत्तर (दो) प्रधान शिष्य थे। स्वस्तिज नाम का परिचारक था। सुमुद्रा और उत्तरा प्रधान शिष्यायें थीं। उदुम्बर (गूलर) वृक्ष (की) बोधि थी। तीस हाथ ऊंचा शरीर था। तीस सहस्र वर्ष की उन की आयु थी।

"(भगवान्) ककुसन्ध के बाद नर-श्रेष्ठ, नर-पुङ्गव, लोक-ज्येष्ठ, कोणागमन नामक जिन सम्बुद्ध हुए।"

(२४) काश्यप बुद्ध

उन के बाद लोक में काश्यप नाम के बुद्ध शास्ता उत्पन्न हुए। उन का भी एक ही शिष्य-सम्मेलन हुआ। उस में बीस हज़ार भिक्षु (एकत्र) हुए। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व तीनों वेदों में पारंगत ज्योति-पाल नामक ब्राह्मण-युवक थे, भूमि-आकाश (सर्वत्र) प्रसिद्ध, घटिकार नाम का कुम्हार उन का मित्र था। वह अपने (मित्र) के साथ शास्ता के पास गए और उपदेश सुन, भिक्षु बन गए। प्रयत्नशील बन तीनों पिटकों * को सीखा और अपने शारीरिक कर्त्तव्यों † की

* सूत्र पिटक, विनय पिटक तथा अभिधर्म-पिटक।

† विहार में झाड़ू देना आदि।

पूर्ति से बुद्ध धर्म के लिए भूषण बने। काश्यप बुद्ध ने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का जन्म-नगर बनारस (=बाणारसी) था। ब्राह्मणदत्त नामक ब्राह्मण पिता था। धनवती नामक ब्राह्मणी माता थी। तिस्स और भारद्वाज—दो प्रधान शिष्य थे। सर्व-मित्र नाम का परिचारक था। अनुला तथा उरुवेला प्रधान शिष्यायें थीं। न्यग्रोध-वृक्ष (की) बोधि थी। बीस हाथ ऊंचा शरीर था। बीस हज़ार वर्ष की उन की आयु थी।

"(भगवान्) कोणागमण के बाद नर श्रेष्ठ, धर्म्म-राज,प्रभङ्कर काश्यप नामक जिन बुद्ध हुये।"

जिस कल्प में दीपङ्कर बुद्ध उत्पन्न हुये, उस कल्प में अन्य भी तीन बुद्ध हुये। लेकिन उन के पास (हमारे) बोधिसत्त्व के बुद्ध होने की भविष्यद्वाणी (=व्याकरण) नहीं हुई, इस लिये वे (तीन बुद्ध) यहां नहीं दिखाये गये। लेकिन अर्थ-कथा * में उस कल्प से आरम्भ करके सभी बुद्धों को दिखाने (=वर्णितऽकरने) के लिये यह कहा गया है:—

'तण्हङ्कर, मेधङ्कर, फिर शरणङ्कर, दीपङ्कर बुद्ध, नर श्रेष्ठ कोण्डञ्ञ, मंगल, सुमन, रेवत, सोभित मुनि, अनोम दर्शी, पदुम, नारद, पदुमुत्तर, सुमेध, सुजात, महायशस्वी प्रियदर्शी, अर्थ दर्शी, धर्मदर्शी, सिद्धार्थ; लोकनायक, तिस्स, फुस्स बुद्ध, विपस्सी, सिखि, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमण, नायक, काश्यप—यह सब वीतराग, संयमी, बुद्ध महा अन्धकार को नाश करते हुये, सौररश्मियों की तरह उत्पन्न हुये, और अग्नि-पुंज की तरह जल कर, शिष्यों-सहित निर्वाण को प्राप्त हुये।

(४) धर्मों का आचरण

इस प्रकार हमारे बोधिसत्त्व, दीपङ्कर आदि चौबीस बुद्धों के पास से अधिकार प्राप्त करते हुये, लक्षाधिक चार असंख्येय-कल्पों (तक) आये। इस (भद्र कल्प-युग में) भगवान् काश्यप-बुद्ध के बाद, दूसरे कोई बुद्ध नहीं (हुये)। इस प्रकार दीपङ्करआदि चौबीस बुद्धों ने जिन के लिये भविष्यद्वाणी की, उन बोधिसत्त्व के बारे में (कहा है)।

"मनुष्यत्त्व जाति (पुरुष-) लिङ्ग (उत्तम-), हेतु (=भाग्य), बुद्ध से भेंट प्रव्रज्या, गुणों की प्राप्ति, अधिकार, इच्छा इन आठ बातों से युक्त होने पर, बलवती इच्छा

* बुद्धवंश की अट्ठकथा

(=अभिनीहार) पूरी होती है।"

इन आठ बातों पर भली भांति विचार कर, (हमारे बोधिसत्त्व ने) दीपङ्कर (बुद्ध) के चरणों में अभिनीहार किया—"हन्त ! मैं जहां तहां से बुद्धत्व प्राप्ति के सहायक गुणां की खोज करूंगा।" फिर उत्साह पूर्वक खोजते हुए पहले पहल दान पारमिता को देखा। (इस प्रकार) दान पारमिता आदि बुद्ध बनाने वाली बातों की ओर ख्याल गया। उन (बुद्ध-कारक) बातों को पूरा करते हुए, वह वेसन्तर के जन्म तक आए। ऐसे (साधनों में लग्न हो) चले आते (बोधिसत्त्व की) तथा दूसरे बोधिसत्त्वों की सुफलता को (इस प्रकार) वर्णित किया गया है—

"इस प्रकार जो सर्वाङ्ग-पूर्ण पुरुष है, जिस का बुद्ध होना निश्चित है, वह एक अरब कल्प तक के लम्बे कालों में आवागमन करते हुए भी, अवीचि,* तथा लोकान्तरों † में उत्पन्न नहीं होते, और न ही वह निज्झामतृष्ण, ‡ क्षुधापिपासा, कालकञ्जक § जैसी योनियों में जाते हैं। दुर्गति ** में जाने पर भी वह छोटे २ जीव के रूप में पैदा नहीं होते। मनुष्य-योनि में पैदा होने पर, वह जन्मान्ध पैदा नहीं होते। वह बहरे नहीं होते, और न ही गूंगे होते हैं। वह स्त्री योनि में नहीं जाते, न ही दोनों लिङ्गों वाले तथा नपुंसक (होते हैं)। ऐसे पुरुष, जिन का बुद्ध होना निश्चित है, वह (उक्त योनियों की ओर) नहीं लौटते। वह सर्वत्र शुद्ध और आनन्तर्य†† कर्मों से मुक्त होते हैं। वह कर्म क्रियादर्शी ‡‡ पुरुष झूठी धारणा नहीं ग्रहण करते। यदि वह स्वर्ग में पैदा होते हैं भी, तो असंज्ञी §‡ (योनि) में उत्पन्न

---

* आठ महान् नरकों में से, सब से नीचे का नरक।

† तीन चक्रवाल के बीच के अत्यन्त शीत नरक।

‡ प्रेत की योनि।

§ असुर-योनि।

** तिरश्चीन-योनि।

†† मातृ-हत्या, पितृ-हत्या, अर्हत की हत्या, बुद्ध के शरीर में जख्म कर के उन का रक्त बहाना, सङ्घ-भेद (=सङ्घ में नाइत्तफाकी पैदा करना)। यह पांच अन्तर-कर्म हैं। इन कर्मों का फल मरने के अनन्तर उत्पन्न होने पर, अवश्य ही भोगना पड़ता है।

‡‡ कर्म और उन का फल मानने वाले।

§‡ अरूप-लोक की योनियों में से एक।

नहीं होते। शुद्धावास * देव-लोक में (उन के लिए उत्पन्न होने का) कारण नहीं होता। नैष्क्रम्य की निष्कामतापरायण, भवाभव वियुक्त सत्पुरुष सब पारमिताओं को पूरा करते, लोकोपकार के लिए विचरण करते हैं।

(५) जातकों में पारमिताओं का अभ्यास

(१) दान पारमिता के जातक

इन महात्म्यों को प्राप्त करते हुये ही (बोधिसत्त्व अन्तिम जन्म तक) पहुंचे। उन्होंने पारमिताओं को पूर्ण करते हुये, अकीर्ति ब्राह्मण, सङ्ख ब्राह्मण धनंजय राजा महासुदर्शन, महागोविन्द, निमि महाराज, चन्द्रकुमार, विसय्ह श्रेष्ठी, शिवि राजा तथा वेस्सन्तर के जन्मों में, दान पारमिता पूरा करने में पराकाष्ठा करदी। लेकिन शश-पण्डित जातक में तो निश्चयरूप से (समझो)—

"याचक को देख कर, मैंने अपने शरीर तक को दे दिया। दान देने में मेरे समान (कोई) नहीं; यह मेरी दान पारमिता है।"

इस प्रकार शरीर प्रदान करते हुये उनकी वर दान पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(२) शील पारमिता

इसी प्रकार शीलव नाग-राज, चम्पेय्य नाग-राज, भूरिदत्त नाग-राज, छद्दन्त नाग-राज, जय-दिश राजा के पुत्र अलीन शुत्रु कुमार के जन्मों में शील-पारमिता की पूर्ति में की चरम-सीमा को नहीं पहुंचे, लेकिन शङ्खपाल के जन्म में तो निश्चय-रूप से (सोचा)—

"शूल से छेदने और शक्ति (-आयुध) से प्रहार करने पर भी सपेरा के प्रति मुझे क्रोध नहीं होता। यह मेरी शील पारमिता है।"

इस प्रकार आत्म-त्याग करते हुए (उन) की शील-पारमिता परमार्थ-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(३) नैष्काम्य पारमिता

उसी प्रकार सौमनस्य कुमार, हस्तिपाल कुमार तथा अयोधर पण्डित के

* अनागामी-फल प्राप्त (व्यक्ति) फिर इस लोक में उत्पन्न नहीं होते। वे शुद्धावास-लोक में उत्पन्न हो, वहीं आवागमन से मुक्त हो जाते हैं।

जन्मों में महान् राज्य को छोड़ निष्कामता पारमिता की पूर्ति परम सीमा को नहीं पहुंची। चूल-सुतसोम जातक में तो निश्चय रूप से—

मैंने अपने हाथ के महान् राज्य को थूक की तरह त्याग दिया। और उस को छोड़ते हुये आसक्ति (का अनुभव) नहीं हुआ। यह मेरी नैष्काम्य पारमिता है।" इस प्रकार निर्लिप्त हो राज्य छोड़ कर कामना रहित होने से (उन) की नैष्काम्य पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(४) प्रज्ञा पारमिता

इसी प्रकार विधुर पण्डित, महा गोविन्द पण्डित, कुदाल पण्डित, अरक पण्डित, बोधि परिव्राजक, महौषध पण्डित के जन्मों में, प्रज्ञा पारमिता की पूर्ति चरम सीमा को नहीं पहुंची। लेकिन सेनक पण्डित के समय सत्तुभस्ता जातक में तो निश्चय रूप से—

"प्रज्ञा की खोज में, मैं ने ब्राह्मण को दुख से मुक्त किया। प्रज्ञा में (कोई) मेरे समान नहीं है। यह मेरी प्रज्ञा पारमिता है।"

थैली के भीतर वाले सांप के दिखाने में (उन) की प्रज्ञा पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

इसी प्रकार वीर्य्य पारमिता आदि (दूसरी) पारमिताओं की पूर्ति भी (दूसरे जन्मों में चरम) सीमा को नहीं पहुंची।

(५) वीर्य पारमिता

हां, महाजनक जातक में तो निश्चय रूप से—

"जल में सभी किनारा न देख सकने वाले मनुष्यों को मार दिया, (किन्तु मेरे) चित्त में विकार नहीं उत्पन्न हुआ। यह मेरी वीर्य पारमिता है।"

(६) क्षान्ति पारमिता

इस प्रकार महा समुद्र को पार करते हुए (उन) की वीर्य्य पारमिता परमार्थ पारमिता हुई। क्षान्तिवाद जातक में—

"तेज फरसे से जड़ वस्तु की तरह मुझे काट रहे थे, इस पर भी, काशी-राज के प्रति मुझे क्रोध नहीं आया। यह मेरी क्षान्ति (क्षमा) पारमिता है।"

इस प्रकार जड़ वस्तु की भांति भयंकर पीड़ा को सहते हुए वह क्षान्ति पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(७) सत्य पारमिता

महा सुतसोम जातक में—

"सत्यवादिता की रक्षा करते हुए, अपने जीवन का परित्याग कर, मैं ने एक सौ क्षत्रियों को मुक्त किया। (यह मेरी) परमार्थ सत्य परमिता है।"

इस प्रकार जीवन परित्याग कर सत्य की रक्षा कर वह सत्य पारमिता परमार्थ परमार्थ पारमिता हुई।

(८) अधिष्ठान पारमिता

मूग पक्ख (=मूक पक्ष) जातक में—

"न तो मेरा माता-पिता से द्वेष है, न महाशय से ही द्वेष है। मुझे बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्रिय है। इस लिए मैं ने इस व्रत का अधिष्ठान किया है।"

इस प्रकार जीवन परित्याग कर के भी (अपने) व्रत का अधिष्ठान (=दृढ़ता से पालन) करना (यह उन) की अधिष्ठान पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(९) मैत्री पारमिता

एकराज जातक में—

"न मुझे कोई डराता है, न मैं किसी से डरता हूं। मैं मैत्री-बल पर निर्भर हो सदैव बन में विचरता हूं।"

इस प्रकार जीवन तक की परवाह न कर के मैत्री करना (यह उन) की मैत्री-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(१०) उपेक्षा पारमिता

लोमहंस जातक में—

मुर्दों तथा हड्डियों का तकिया बनाकर श्मशान में सोता हूं। ग्वाले मेरे पास आकर अनेक प्रकार के रूप दिखाते है।"

इस प्रकार ग्रामीण बालकों के थूक फेंकने आदि से पीडा देने तथा; माला गन्ध उपहार आदि द्वारा सुख देने से भी समभाव (=उपेक्षा) का उल्लंघन नहीं किया। इस प्रकार की (उनकी) उपेक्षा पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

यहां यह संक्षेप से कहा गया है, विस्तार के लिये चारियापिटक * को देखना चाहिये।

---

* खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ।

इस प्रकार पारमिताओं को पूरा कर वह वेस्सन्तर के जन्म (=आत्म भाव) में आये।

"यह पृथिवी अचेतन है। सुख दुख से प्रभावित नहीं होती है; किन्तु वह भी मेरे दान के बल से सात बार कांपी।"

इस प्रकार महापृथ्वी को कंपाने वाले महा पुण्य कर्मा, (हमारे बोधिसत्त्व) आयु को बिता कर, तुषित-देवलोक में उत्पन्न हुये।

भगवान् 'दीपङ्कर के चरणों' से आरम्भ करके तुषित-लोक में जन्म लेने तक के इस भाग को 'दूरेनिदान' जानना चाहिये॥

ख. अवि दूरेनिदान

१. गौतम बुद्ध का (बाल्य) चरित

(१) देव-लोक से मनुष्य-लोक की ओर

बोधिसत्त्व के तुषित लोक में रहते समय ही बुद्ध-कोलाहल (=घोष) पैदा हुआ। लोक में कल्प-कोलाहल, बुद्ध-कोलाहल तथा चक्रवर्ती-कोलाहल—तीन प्रकार के कोलाहल उत्पन्न होते हैं। (आज से) लाख वर्ष के बीत जाने पर कल्प-उत्थान होगा (सोच) काम-धातु के लोक-व्यूह नामक देवता, खुले सिर, बिखरे-केश, रोनी-शकल बना, हाथों से आंसू पोंछते हुए, लाल वस्त्र पहने अत्यन्त कुरूप वेश धारण किए मनुष्य-लोक में घूमते हुए इस प्रकार चिल्लाते हैं—"मित्रो! लाख वर्ष व्यतीत होने पर कल्प-उत्थान होगा—यह लोक नष्ट हो जायगा। महा-समुद्र सूख जायगा। यह महा पृथ्वी और पर्वत-राज सुमेरु उड़ जायेंगे, नष्ट हो जायेंगे। ब्रह्म-लोक तक (समस्त) ब्रह्माण्ड का नाश हो जायगा। मित्रो! मैत्री भावना की भावना करो। करुणा, मुदिता, उपेक्षा (भावना) की भावना करो। माता-पिता की सेवा करो। कुल में जो ज्येष्ठ हों उन की सेवा करो।" यह कल्प-कोलाहल हुआ।

सहस्र वर्ष बीतने पर, लोक में सर्वज्ञ बुद्ध उत्पन्न होंगे (सोच) लोक-पाल देवता "मित्रो! अब से सहस्र वर्ष बीतने पर लोक में बुद्ध उत्पन्न होंगे" उद्घोषित करते हुए घूमते हैं। यह बुद्ध-कोलाहल हुआ।

सौ वर्ष के बीतने पर चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होगा, (सोच) देवता "मित्रो! अब से सौ वर्ष बीतने पर, लोक में चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होगा" उद्घोषित करते

हुए घूमते हैं। यह चक्रवर्ती-कोलाहल हुआ।

यह तीनों कोलाहल महान्-कोलाहल होते हैं।

बुद्ध-कोलाहल के शब्द को सुन कर, सारे दस सहस्र चक्रवालों के देवताओं ने एक स्थान पर एकत्रित हो, 'अमुक व्यक्ति बुद्ध होगा' जान, उस के पास जा प्रार्थना (=याचना) की।

जब वह पूर्व-लक्षण उदय हो गये, तो (इस) चक्रवाल के सभी देवताओं—चतुर्महाराजिक, शक्र, सुयाम, संतुसित, परनिर्मित-वशवर्ती—ने महा ब्रह्माओं के साथ एक चक्रवाल में इकट्ठे हो (सलाह) की, (और फिर) तुषित-लोक में बोधिसत्त्व के पास जा कर, उन्हों ने प्रार्थना की—"मित्रो! तुम ने जो दस पारमिताओं की पूर्ति की, वह न तो इन्द्रासन पाने के लिए, न मार, ब्रह्मा अथवा चक्रवर्ती के पद की प्राप्ति के लिए तुम ने पूरा किया। लोक-निस्तार के लिए, बुद्धत्व की इच्छा से ही उन्हें तुमने पूरा किया। सो मित्र! अब यह बुद्ध होने का काल है। मित्रो! यह बुद्ध होने का समय है।"

(२) बुद्धों के जन्म कुल देश आदि

उस समय बोधिसत्त्व ने देवताओं को बचन दिए बिना ही (अपने जन्म सम्बन्धी) समय, द्वीप, देश, कुल, माता तथा आयु-परिमाण—इन पांच 'महा-विलोकनों' पर विचार किया। (सर्व) प्रथम, 'समय उचित है या नहीं' (पर) समय का विचार किया। लाख वर्ष से ऊपर की आयु का समय (बुद्धों के जन्म के लिए) उचित समय नहीं होता। सो क्यों? उस समय प्राणियों को जन्म, जरा, मरण का मान नहीं होता। बुद्धों का धर्मोपदेश तीन लक्षणों से रहित नहीं होता। उस समय 'अनित्य-दुःख तथा अनात्म' सम्बन्धी उपदेश करने पर लोग "यह क्या कहते हैं?" (कह कर) उसे ध्यान से नहीं सुनते, न उस पर श्रद्धा करते हैं। इसी लिए उन्हें (धर्म का) बोध नहीं हो सकता। उस के न होने पर बुद्ध-धर्म (उन के लिए) सहायक (=नैर्याणिक) नहीं होता। इसी लिए वह समय अनुकूल नहीं है? सौ वर्ष से कम की आयु वाला भी प्राणी अधिक दुःखी होता है। अधिक दुःखित प्राणियों को दिया गया उपदेश भी प्रभावोत्पादक नहीं होता। पानी पर, लकड़ी से खींची हुई लकीर की तरह वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इसी लिए यह भी समय अनुकूल समय है।

महासत्त्व ने देखा कि वह सौ वर्ष की आयु वाला समय है, और बुद्धों के उत्पन्न होने का समय है।

तब द्वीप का विचार करते हुए, उपद्वीपों सहित चारों द्वीपों को (देख) विचार किया—दूसरे तीनों द्वीपों * में बुद्ध उत्पन्न नहीं हुआ करते, जम्बु द्वीप में ही वह जन्म लेते हैं; और (जम्बु द्वीप में जन्मने का) निश्चय किया। फिर 'जम्बु द्वीप तो दस हज़ार योजन बड़ा है' कौन से प्रदेश में बुद्ध जन्म लेते हैं? इस तरह प्रदेश पर विचार करते हुए मध्य-प्रदेश को देखा। "मध्य देश की पूर्व दिशा में कजंगल † नामक कस्बा है, उस के बाद बड़े शाल (के बन) हैं, और फिर आगे सीमान्त (=प्रत्यन्त) देश। पूर्व-दक्षिण में सललवती ‡ नामक नदी है, उस के आगे सीमान्त देश। दक्षिण दिशा में सेतकण्णिक § नामक कस्बा है, उस के बाद सीमान्त देश। पश्चिम दिशा में थून** नामक ब्राह्मण-ग्राम है, उस के बाद सीमान्त देश। उत्तर दिशा में उशीरध्वज‡‡ नामक पर्वत है, उस के बाद सीमान्त देश।'—इस प्रकार विनय (-पिटक) में (मध्य-) देश का वर्णन है।

यह (मध्य-देश) लम्बाई में तीन सौ योजन, चौड़ाई में ढाई सौ योजन, और घेरे में नौ सौ योजन है। इसी प्रदेश में बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, प्रधान अग्र-श्रावक (=प्रधान शिष्य), महा श्रावक, अस्सी महा-श्रावक चक्रवर्ती राजा, तथा दूसरे महा प्रतापी, ऐश्वर्य शाली, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य पैदा होते हैं। और वहीं यह कपिल वस्तु †† नामक नगर है, वहीं मुझे जन्म लेना है'—यह निश्चय किया।

तब कुल का विचार करते हुये—"बुद्ध वैश्य या शूद्र कुल में उत्पन्न नहीं होते। लोकमान्य क्षत्रिय या ब्राह्मण, इन्हीं दो कुलों में जन्म लेते हैं। आज कल

---

* अपर-गोयान, पूर्व विदेह तथा उत्तर कुरू में।

† वर्तमान कंकजोल, जिला संथाल पर्गना (बिहार)।

‡ वर्तमान सिलई नदी (हजारी बाग और मेदनीपुर जिला)।

§ हजारी बाग जिले में कोई स्थान।

** थानेश्वर, जिला कर्नाल।

‡‡ हिमालय का कोई पर्वत-भाग।

†† देखो तिलौराकोट (नेपाल तराई)।

क्षत्रिय कुल लोकमान्य है। (इस लिये) उसी (कुल) में जन्म लूंगा। शुद्धोदन नामक राजा मेरा पिता होगा (सोच) कुल का निश्चय किया।

फिर माता का विचार करते हुए—"बुद्धों की माता चञ्चल और शराबी तो होती नहीं। लाख कल्प से (दान आदि) पारमितायें पूरी करने वाली, और जन्म से ही अखण्ड पञ्च शील (=सदाचार) रखने वाली होती है। यह महामाया नामक देवी ऐसी (ही) है, यह मेरी माता होगी। लेकिन इस की (बाकी) आयु कितनी होगी' (विचारते हुये) इस महीने सात दिन की आयु देखी।

मायादेवी के गर्भ में

इस प्रकार इन पांच-'विलोकनों' को विलोकन कर, 'हां मित्रो! मेरे बुद्ध होने का समय है'—इस प्रकार वचन दे देवताओं को सन्तुष्ट किया; और "आप लोग जाइये" (कह देवताओं को विदा कर, तुषित देवताओं के साथ, तुषित लोक के नन्दन वन में प्रवेश किया। सभी देव लोक नन्दन वन होते हैं। वहां (साथी) देवता (लोग),—'यहां से च्युत ही कर, (अमुक) सुगति को प्राप्त होते हैं, यहां से च्युत हो कर (अमुक) सुगति को प्राप्त होते हैं'—इस प्रकार बोधिसत्त्व को पूर्व के किये पुण्य कर्मों (के बल) से मिलने वाले स्थानों का स्मरण दिलाते हुये घूम रहे थे। इस प्रकार पुण्य कर्मों की स्मृति कराते देवताओं के साथ वे वहां रहे। फिर वहां से च्युत हो कर, महामाया देवी की कुक्षि में प्रवेश किया।

उस (गर्भ प्रवेश को स्पष्ट करने के लिये क्रमानुसार कथा इस प्रकार है:—उस समय कपिल वस्तु नगर में आषाढ़ का उत्सव उद्घोषित हुआ था। जनता उत्सव मना रही थी। पूर्णिमा के सात दिन पहले ही महामाया देवी मद्य-पान त्याग, मालागन्ध से सुशोभित हो, उत्सव मना रही थीं। सातवें दिन प्रातः ही उठ, उस ने सुगन्धित जल से स्नान कर, चार लाख का महा दान दिया; और सब अलङ्कारों से विभूषित हो, सुन्दर भोजन ग्रहण कर, चार लाख उपोसथ (=व्रत) के नियमों (=अङ्गों) को धारण किया। फिर सु-अलङ्कृत शयनागार में प्रविष्ट हो, सुन्दर शय्या पर लेटे, निद्रित अवस्था में यह स्वप्न देखा—

'उसे चार महाराज (-देवता) शय्या सहित उठा कर, हिमवन्त (-प्रदेश) में लेजाकर, साठ योजन के मन-शिला (नामक शिला) के ऊपर, सात योजन (छाया) वाले महान् शाल-वृक्ष के नीचे रख कर खड़े हो गये।

तब उन (देवताओं) की देवियों ने आकर, (महामाया) देवी को अनोतप्त-दह में ले जाकर, मनुष्य-मल दूर करने के लिये स्नान कराया; दिव्य-वस्त्र पहनाया, गन्धों से लेप किया, दिव्य फूलों से सजाया। वहां से समीप ही रजत-पर्वत है; जिस के अन्दर सुवर्ण-विमान है। वहीं पूर्व की ओर सिर करके दिव्य-शयन बिछवा कर उन्हों ने उसे लिटाया। बोधिसत्त्व श्वेत सुन्दर हाथी बन समीपवर्ती सुवर्ण-पर्वत विचर कर, वहां से उतर रजत-पर्वत पर चढ़े। फिर उत्तर दिशा से आ कर (उक्त स्थान पर पहुंचे)। उन की रुपहली माला के जैसी सूण्ड में श्वेत पद्म था। उन्होंने मधुर नाद कर, स्वर्ण-विमान में प्रवेश कर फिर तीन बार माता की शय्या की प्रदक्षिणा की। फिर दाहिनी बगल को चीर, कुक्षि में प्रविष्ट हुये से जान पड़े। इस प्रकार (बोधिसत्त्व ने) उत्तराषाढ़ नक्षत्र में गर्भ में प्रवेश किया।

दूसरे दिन जाग कर देवी ने इस स्वप्न को राजा से कहा। राजा ने चौंसठ प्रधान ब्राह्मणों को बुलवाया। गोबर-लीपी, खीलों (=लाजा) आदि से मङ्गलाचरण की गई भूमि पर महार्घ आसन बिछवाए। उन पर ब्राह्मणों को बैठा घी, मधु, शक्कर से प्रस्तुत की गई खीर से सोने-चांदी की थालियां भर कर, उन्हें सोने-चांदी की ही थालियों से ढक कर परोसा। और नवीन वस्त्र तथा कपिला गौ आदि के दान से भी उन्हें संतर्पित किया। उन की सब इच्छायें पूरी कर उन्हों ने ब्राह्मणों को स्वप्न की बात कह "स्वप्न का (फल) क्या होगा ?" पूछा।

ब्राह्मणों ने कहा—"महाराज ! चिन्ता न करें। आप की देवी की कुक्षि में गर्भ प्रतिष्ठित हुआ है। वह स्त्री-गर्भ नहीं, पुरुष-गर्भ है। आप के पुत्र होगा। वह यदि घर (=गृहस्थ) में रहेगा, तो चक्रवर्ती राजा होगा, यदि घर से निकल कर, प्रव्रजित होगा, तो लोक में कपाट खुला (=ज्ञानी) बुद्ध होगा।"

बोधिसत्त्व के गर्भ में आने के समय, समस्त दस-सहस्री ब्रह्माण्ड एक प्रहार से कांपने की तरह कांपी। बत्तीस पूर्व-शकुन (=लक्षण) प्रकट हुए। दस सहस्र चक्रवालों में अनन्त प्रकाश हो उठा। मानो (प्रकाश) की उस कान्ति (=श्री) को देखने के लिए ही, अन्धों को आंखें मिल गईं। बहरे शब्द सुनने लगे। गूंगे बोलने लगे। कुबड़े सीधे हो गए। लंगड़े पांव से चलने लगे। बन्धनों में पड़े हुए सभी प्राणी बेड़ी-हथकड़ी से मुक्त हो गए। सारे नरकों की आग बुझ गई। प्रेतों की क्षुधा-पिपासा शान्त हो गई। पशुओं (= तिरश्चीनों) का भय जाता रहा। तमाम

प्राणियों के रोग शान्त हो गए। सभी प्राणी प्रिय-भाषी हो गए। घोड़े मधुर-स्वर से हिनहिनाने लगे। हाथी चिंघाड़ने लगे। सारे वाद्य (=तुरिय) स्वयं बजने लगे मनुष्यों के हाथों के आभरण, बिना आपस में टकराए ही, शब्द करने लगे। सब दिशायें शान्त हो गईं। प्राणियों को सुखी करती, मृदुल शीतल हवा चलने लगी। बे-मौसम के वर्षा बरसने लगी। पृथ्वी से भी पानी निकल कर बहने लगा। पक्षियों ने आकाश में उड़ना छोड़ दिया। नदियों ने बहना छोड़ दिया। महा समुद्र का पानी मीठा होगया। सभी जगहें पांच रंग के कमलों से ढक गईं। जल-थल में उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के पुष्प खिल उठे। वृक्षों के स्कन्धों में, स्कन्ध-कमल, शाखाओं में शाखा-कमल, लताओं में लता-पुष्प पुष्पित हुये। स्थल पर शिला-तलों को फाड़ कर, ऊपर २ से, सात २ हो, दण्ड-कमल निकले। आकाश में लटकने-वाले-कमल उत्पन्न हुये। चारों ओर से पुष्पों की वर्षा हुई। आकाश में दिव्य वाद्य (=तुर्य) बजे। चारों ओर सारी दस-साहस्री लोक धातु (=ब्रह्माण्ड) माला-गुच्छ की तरह, दाबकर बंधे माला-समूह की तरह, सजे सजाये माला-आसन की तरह, एक माला-पंक्ति की तार, अथवा पुष्प धूप गन्ध से सुवासित खिली हुई चवंर की तरह परम शोभा को प्राप्त हुई।

बोधिसत्त्व के गर्भ में आने के समय से ही बोधिसत्त्व और उन की माता के संकट के निवारण करने के लिये चारों देव-पुत्र (महाराज) हाथ में खड्ग लिये हुये पहरा देते थे। (उस के बाद) बोधिसत्त्व की माता को पुरुष में राग नहीं हुआ। वह बड़े लाभ और यश को प्राप्त हो सुखी तथा अक्लान्त-शरीर रहीं। वह कुक्षि-स्थ बोधिसत्त्व को सुन्दर मणि-रत्न में पिरोये हुये पीले-धागे की तरह देख सकती थी। क्योंकि जिस कोख में बोधिसत्त्व वास करते हैं, वह चैत्य के गर्भ के समान (फिर) दूसरे प्राणी के रहने या उपभोग करने योग्य नहीं रहती; इसी लिये (बोधिसत्त्व की माता) बोधिसत्त्व के जन्म के (एक) सप्ताह बाद ही मर कर, तुषित देव-लोक में जन्म ग्रहण करती है। जिस प्रकार दूसरी स्त्रियां दस मास से कम (या) अधिक में भी, बैठी या लेटी भी, प्रसव करती हैं; ऐसा बोधिसत्त्व-माता नहीं करती। वह (बोधिसत्त्व को) दस मास कुक्षि में रख, खड़ी ही प्रसव करती हैं। यह बोधिसत्त्व-माता की धर्मता (=विशेषता) है।

(४) सिद्धार्थ का जन्म

महामाया देवी भी पात्र में तेल की भांति, बोधिसत्त्व को दस मास कोख

में धारण कर, गर्भ के परिपूर्ण होने पर, नैहर (पीहर) जाने की इच्छा से शुद्धोदन महाराज से बोलीं—'देव, (अपने पिता के) कुल के देव-दह नगर को जाना चाहती हूं'। राजा ने 'अच्छा' कह, कपिलवस्तु से देवदह नगर तक के मार्ग को सम-तल करा और केला, पूर्ण-घट, ध्वजा, पताका आदि से अलंकृत करवा, देवी को सोने की पालकी में बिठा, एक हज़ार अफ़सर तथा बहुत भारी सेवक-मण्डली के साथ भेज दिया।

दोनों नगरों के बीच में, दोनों ही नगर वालों का लुम्बिनी * बन नामक एक मंगल शाल बन था। उस समय (वह बन) मूल से ले कर शिखर की शाखाओं तक पांतो से फूला हुआ था। शाखाओं तथा पुष्पों के बीच में पांच रङ्गों के भ्रमर गण, और नाना प्रकार के पक्षि-सङ्घ मधुर-स्वर से कूजन करते विचर रहे थे। सारा लुम्बिनी-बन विचित्र लता-बन—जैसा, प्रतापी राजा के सुसज्जित बाज़ार जैसा (जान पड़ता) था। उसे देख देवी के मन में सैर करने की इच्छा उत्पन्न हुई। अमात्य, देवी को ले शाल-बन में गए। देवी ने सुन्दर शाल के नीचे जा, शाल की डाली पकड़नी चाही। शाल-शाखा अच्छी तरह सिद्ध किए बेंत की छड़ी के नोक की भांति लटक कर देवी के हाथ के पास आ गई। उस ने हाथ पसार कर शाखा पकड़ ली। उसी समय से प्रसव-वेदना (=कर्मज-वायु) हुई। लोग (इर्द गिर्द) कनात घेर, स्वयं अलग हो गए। शाल-शाखा पकड़े, खड़े ही खड़े, उसे गर्भ-उत्थान हो गया। उस समय चारों शुद्ध-चित्त महा ब्रह्मा सोने का जाल ले, पहुंच कर उस जाल में बोधिसत्त्व को ग्रहण किया, और माता के सम्मुख रख कर बोले—'देवी सन्तुष्ट होओ। तुम्हें महा प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है।'

जिस प्रकार अन्य प्राणी माता की कोख से निकलते समय, गन्दे, मल-विलिप्त निकलते हैं, वैसे बोधिसत्त्व नहीं निकलते। बोधिसत्त्व धर्मासन (=व्यास-गद्दी) से उतरे धर्म-कथिक (=धर्मोपदेशक) के समान, सीढ़ी से उतरे पुरुष की तरह, दोनों हाथ और दोनों पैर पसारे खड़े हुए (मनुष्य) के समान, माता की कोख के मल से बिलकुल अलिप्त, शुद्ध, विशुद्ध, काशी-देश के वस्त्र में रक्खे मणि-रत्न के समान, चमकते हुए, माता की कोख से निकले। ऐसा होने पर भी बोधिसत्त्व और बोधिसत्त्व की माता के सत्कारार्थ, आकाश से दो जल की धाराओं ने निकल, बोधिसत्त्व और उन की माता के शरीर को ठंडा किया।

---

* रुम्मिन्-देइ, नतनवौ स्टेशन (B.N.W.R.) से प्रायः ८ मील पश्चिम, नैपाल की तराई में,

तब चारों महाराजाओं ने सोने के जाल में लेकर खड़े ब्रह्माओं के हाथ से, (बोधिसत्व) को माङ्गलिक समझे जाने वाले, कोमल मृग चर्म में ग्रहण किया। उनके हाथ से मनुष्यों ने दुकूल के करण्ड (चुम्बट) में ग्रहण किया। मनुष्यों के हाथ से निकल कर (बोधिसत्व ने) पृथ्वी पर खड़े हो, पूर्व दिशा की ओर देखा। अनेक सहस्र चक्रवाल एक-आंगन से हो गये। मनुष्य गन्ध माला आदि से पूजा करते हुये बोले—"महापुरुष ! यहां आप जैसा भी कोई नहीं है, बढ़ कर तो कहां होगा।" बोधिसत्व ने चारां दिशायें चारों अनु-दिशायें, नीचे-ऊपर—दसों ही दिशाओं का अवलोकन कर, अपने जैसा किसी को न देख, उत्तर दिशा की ओर (करके) क्रम से सात पग गमन किया। (उस समय) महा ब्रह्मा के श्वेत-छत्र सुयाम (देवता) ताल-व्यञ्जन (=पंखा), और अन्य देवताओं ने शेष राजकीय ककुध-भाण्ड* हाथ में लिये अनुगमन कर रहे थे। सातवें पग पर ठहर "मैं संसार में सर्व-श्रेष्ठ हूं" नर-पुङ्गवों की इस प्रथम निर्भीत बाणी का उच्चारण करते हुये सिंह नाद किया।

बोधिसत्व ने इस प्रकार माता की कोख से निकलते ही तीन जन्मों में, बाणी का उच्चारण किया—महोसध-जन्म में, वेस्सन्तर- जन्म में और इस जन्म में। महोसध-जन्म में तो बोधिसत्व के कोख से निकलते ही, देवेन्द्र शक्र आया और चन्दन-सार हाथ में रख कर चला गया और बोधिसत्व उसे हाथ में लिये ही निकला। तब उस की माता ने पूछाः—"तात ! क्या लेकर आया है"। "अम्मा ! औषध ?" औषध लेकर आया होने के कारण उसका नाम औषध दारक ही कर दिया गया। उस औषध को लेकर बरतन (=चाटी) में डाल दिया। वह औषध अन्धे, बहरे, इत्यदि सभी प्रकार के आने वाले रोगियां के रोग-उपशमन की दवाई हुई। तब "यह महौषध है, यह महौषध है" इस प्रकार की ख्याति उत्पन्न होने के कारण, (=बोधिसत्व) का नाम भी महोषध ही पड़ गया। वेस्सन्तर के जन्म में तो बोधिसत्व माता की कोख से निकलते हो "मां! घर में कुछ है ? दान दूंगा पूछते हुये निकला। उस की माता ने "तात तू धनवान् कुल में पैदा हुआ है" (कह) पुत्र की हथेली को अपनी हथेली पर रख, हज़ार की थैली रखवाई। इस जन्म में तो केवल यह सिंह-नाद ही किया। इस प्रकार बोधि-

---

* खड्ग, छत्र, पगड़ी, पादुका तथा व्यजन (=पंखा)।

सत्व ने तीनजन्मों में माता की कोख से निकलते ही, शब्द उच्चारण किया।

गर्भ धारण के समय की भांति ही जन्म के समय भी बत्तीस शकुन, प्रकट हुये। जिस समय लुम्बनी बन में हमारे बोधिसत्व उत्पन्न हुये, उसी समय राहुल-माता देवी, आमात्य छत्र (=छन्दक) आमात्य कालउदायी, हस्तिराज आजानीय,† अश्वराज कन्थक, महाबोधि वृक्ष, और खजानों से भरे चार घड़े भी उत्पन्न हुये। उन में (क्रम से) एक गव्यूति (=¼ योजन =२ मील) पर, एक आधे योजन पर एक तीन गव्यूति पर और एक योजन पर पैदा हुआ। यह सात एक ही समय पैदा हुये। दोनों नगरों के निवासी बोधिसत्व को लेकर कपिलवस्तु नगर को ही लौटे।

'कपिल वस्तु नगर में शुद्धोदन महाराज को पुत्र हुआ है; यह कुमार बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ कर बुद्ध होगा' (सोच) उसी दिन त्रयस्त्रिंश (तैंतीस) भवन के सन्तुष्ठ-चित्त देव-सङ्घ क्रीडा करने लगे।

(५) काल देवल की भविष्यद्वाणी

उस समय शुद्धोदन महाराज के कुलमान्य, आठ समाधि (=समापत्ति) वाले काल-देवल नामक तपस्वी, भोजन करके, दिन में मनो विनोद के लिये त्रयस्त्रिंश देवलोक में गये। वहां दिन के विहार के लिये बैठे हुये उन्हों ने, उन देवताओं को देख कर पूछाः—"किस कारण से तुम इस प्रकार सन्तुष्ट-चित्त हो क्रीडा कर रहे हो? मुझे भी वह बात बताओ।" देवताओं ने उत्तर दियाः—'मित्र! शुद्धोदन राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ है। वह बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ, बुद्ध हो, धर्मचक्र प्रवर्तित करेगा। हमें उस की अनन्त बुद्ध-लीला देखनी, तथा (उसका) धर्म सुनने को मिलेगा—इस कारण से हम प्रसन्न-चित्त हैं।"

उन की बात सुन, तपस्वी ने शीघ्र ही देवलोक से उतर, राज-महल में प्रवेश कर, बिछे आसन पर बैठ, पूछाः— "महाराज! आप को पुत्र हुआ है, मैं उसे देखना चाहता हूं।" राजा सु-अलंकृत कुमार को मंगा, तापस की वन्दना कराने को ले गया। बोधिसत्व के चरण उठ कर तापस की जटा में जा लगे। बोधिसत्व के जन्म में, बोधिसत्व के लिये दूसरा कोई वन्दनीय नहीं। यदि

† उत्तम जाति का।

अजान में बोधिसत्व का शिर तापस के चरण पर रखा जाता, तो तापस का शिर सात टुकड़े हो जाता। तापस ने—'मुझे अपने आप को नाश करना योग्य नहीं है' (सोच) आसन से उठ हाथ जोड़ कर (प्रणाम किया)। राजा ने, इस आश्चर्य्य को देख, अपने पुत्र की वन्दना की। तपस्वी को अतीत के चालीस और भविष्य के चालीस—अस्सी कल्पों की (बात) याद आ सकती थी। उस ने बोधिसत्व के (शरीर के) लक्षणों को देख, 'यह बुद्ध होगा या नहीं' इस बात का विचार कर मालूम किया, कि 'यह अवश्य बुद्ध होगा यह अद्‌भुत पुरुष है' जान मुस्कराया। फिर सोचने लगा "इसके बुद्ध होने पर, मैं इसे देख सकूंगा वा नहीं?" सोचने से (मालूम हुआ) 'नहीं देख पाऊंग; (इसके बुद्ध होने से) पहले ही मर कर अरूप-लोक में—जहां सौ अथवा हज़ार बुद्धों के जाने पर भी ज्ञान-प्राप्ति(=अवबोध) नहीं हो सकती—उत्पन्न होऊंगा। तब 'ऐसे अद्‌भुत-पुरुष को बुद्ध होने पर नहीं देख पाऊंगा, मेरा दुर्भाग्य है' सोच रो उठा, लोगोंने जब देखा—कि 'हमारे आर्य (=अय्य=बाबा) अभी हंसे और फिर रोने लग गये' तो उन्हों ने पूछा—''क्यों भन्ते। क्या हमारे आर्य-पुत्र को कोई संकट होगा?"

"इन को संकट नहीं है, यह निस्संशय बुद्ध होंगे"

"तो (आप) किस लिये रोते हैं?"

"इस प्रकार के पुरुष को बुद्ध हुये नहीं देख सकूंगा, मेरा बड़ा दुर्भाग्य (=हानि) है—यही सोच अपने लिये रो रहा हूं।"

फिर 'मेरे सम्बन्धियों में से कोई इसे बुद्ध-हुआ देखेगा, या नहीं'—विचार, अपने भांजे नाड़क को इस योग्य जान, अपनी बहिन के घर जाकर (पूछा)।

'तेरा पुत्र नाळक कहां है'?

'घर में है, आर्य।"

"उसे बुला।'

(भांजे के) पास आने पर बोला—" तात! महाराज शुद्धोधन के घर में पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह बुद्ध-अंकुर है। पैंतीस वर्ष बाद वह बुद्ध होगा; और तू उसे देख पायेगा। तू आज ही प्रब्रजित हो जा।"

वह—'मैं सत्तासी करोड़ धनवाले कल में उत्पन्न बालक हूं; (तो भी) मामा

मुझे अनर्थ में नहीं लगा रहा है'—सोच, उसी समय बाज़ार से काषाय (वस्त्र) तथा मट्टी का पात्र मंगवा, शिर-दाढ़ी मुंडा, काषाय वस्त्र पहिन, 'लोक में जो उत्तम पुरुष है, उसी के नाम पर मेरी यह प्रव्रज्या है,' यह (कहते) बोधिसत्त्व की ओर अञ्जलि जोड़, पांचों अङ्गों से वन्दना की; फिर पात्र को झोली में रख, उसे कंधे पर लटका, हिमालय में प्रवेश कर, श्रमण-धर्म का पालन करने लगा।

फिर तथागत के बुद्ध हो जाने पर, (उन के) पास आ, उन से 'नाड़क-ज्ञान' सुन, फिर हिमालय में चले गये, वहां अर्हत पद को प्राप्त कर, सर्व-श्रेष्ठ मार्ग (=उत्कृष्ठ प्रतिपदा) पर आरूढ़, सात मास तक ही जीवित रह, एक सुवर्ण पर्वत के पास निवास करते, खड़े ही खड़े उपाधि-रहित निर्वाण को प्राप्त हुये।

(६) ज्योतिषि की भविष्यद्वाणी

पांचवें दिन बोधिसत्व को शिर से नहलाया गया, नामकरण संस्कार किया गया। राजभवन को चारों प्रकार के गन्धों से लिपवाया गया। खीलों सहित चार प्रकार के पुष्प बखेरे गये। निर्जल खीर पकाई गई। राजाने तीनों वेदों के पारंगत एक सौ आठ ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया। उन्हं राज-भवन में बैठा, सुभोजन करा, सत्कार पूर्वक (बोधिसत्व के लक्षण के बारे में पूछा—"भविष्य क्या है?" उनमें:—

"उस समय राम, ध्वजा, लक्ष्मण, मन्त्री, कोडञ्ञ, भोज, सुयाम और सुदत्त—यह आठ षड्-अंग जानने वाले ब्राह्मण थे, जिन्होंने मन्त्रों की व्याख्या की।"

यह आठ ही लक्षण जानने वाले (=दैवज्ञ) ब्राह्मण थे। गर्भ धारण के दिन 'स्वप्न'का भी विचार इन्हों ने ही किया था। उन में से सात जनोंने दो उंगुलियां उठा कर, दो प्रकार से भविष्य कहा—'ऐसे लक्षणों वाला यदि गृहस्थ रहे, तो चक्रवर्ती राजा होता है, और यदि प्रव्रजित हो, तो बुद्ध।" और फिर चक्रवर्ती-राजा की श्री सम्पत्ति का वर्णन किया। उन में सब से कम उमर और कौण्डिन्य गोत्री तरुण ब्राह्मण ने बोधिसत्व के सुन्दर लक्षणों को देख एकही उंगुली उठा कर, एक ही प्रकार का भविष्य कहाः—"इस के घर में रहने की सम्भावना (=कारण) नहीं है, यह महाज्ञानी (=विवृत-कपाट बुद्ध

होगा। उस अधिकारी, अन्तिम-जन्मधारी, प्रज्ञा में अन्य सात-ब्राह्मणों से अति श्रेष्ठ (ब्राह्मण) ने इन लक्षणों वाले पुरुष) के घर में ठहरने की सम्भावना नहीं, यह निश्चय बुद्ध होगा—इस एक ही अवस्था (=गति) को देखा। इसी लिये एक ही अंगुली उठा कर भविष्य कहा।

उन ब्राह्मणों ने अपने २ घर जाकर, पुत्रों से कहा—"तात ! हम बूढ़े हो गये हैं। महाराज शुद्धोदन के पुत्र के बुद्ध होने तक (हम) रहेंगे वा नहीं, (लेकिन) उस कुमार के बुद्धपद प्राप्त करने पर तुम उसके धर्म में प्रव्रजित होना।"

वे सातों आयुपूर्ण होने पर, अपने कर्मानुसार (परलोक) सिधारे। अकेला कौण्डिन्य माणवक ही जीवित रहा। वह महासत्त्व (बोधिसत्त्व) की ओर ध्यान रख, गृह को त्याग, क्रमशः उरूवेला* जा, 'यह भूमि-भाग बड़ा रमणीय है, योगार्थी कुल-पुत्र के योगाभ्यास के लिये उपयुक्त स्थान है' सोच, वहीं रहने लगा। (फिर) "महापुरुष प्रव्रजित हो गये" सुन, उन (सात) ब्राह्मणों के पुत्रों के पास जाकर कहा—"सिद्धार्थ-कुमार प्रव्रजित हो गये, वह निःसंशय बुद्ध होंगे। यदि तुम्हारे पिता जीवित होते, तो वह आज घर छोड़ प्रव्रजित हुए होते। यदि तुम चाहते हो, तो (मेरे साथ) आओ हम उस पुरुष के पीछे प्रव्रजित होंगे।"

वे सब (लड़के) एक मत न हो सके। तीन प्रव्रजित नहीं हुए। शेष चारों कौण्डिन्य ब्राह्मण को मुखिया बना कर प्रव्रजित हुए। (आगे चल कर) वह पांचों जने पंचवर्गीय स्थविरों के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तब राजा ने पूछा—"क्या देख कर, मेरा पुत्र प्रव्रजित होगा ?" (उत्तर मिला) "चार पूर्व लक्षण।" "कौन कौन से चार लक्षण (=निमित्त) ?" "वृद्ध, रोगी, मृत और प्रव्रजित।"

राजा ने (आज्ञा की)—"अब से इस प्रकार के किसी लक्षण (=वृद्ध आदि) को मेरे पुत्र के पास मत आने दो। मुझे, उसके बुद्ध बनने से मतलब नहीं। मैं उसे दो सहस्र द्वीपों से घिरे चारों महाद्वीपों का आधिपत्य करते हुए, छत्तीस योजन घेरे की परिषद् के बीच, आकाश में विचरते देखने की इच्छा रखता हूं।" यह कह, राजा ने इन चार प्रकार के पुरुषों को कुमार के दृष्टि-गोचर होने से बचाने के लिये चारों दिशाओं में तीन तीन कोस की दूरी पर पहरा बैठ

* बोध-गया, जि० गया (बिहार)।

दिया। उसी दिन उस मांगलिक स्थान पर एकत्र हुए, अस्सी हज़ार ज्ञाति-सम्बन्धियों ने अपने एक २ पुत्र (को देने) की प्रतिज्ञा की। यह (कुमार) चाहे बुद्ध हो, अथवा राजा, हम (इसे) अपना एक २ पुत्र दे देंगे। यदि यह बुद्ध होगा तो क्षत्रिय साधुओं से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा। यदि राजा होगा तो क्षत्रिय-कुमारों से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा।

(७) शैशव का एक चमत्कार

राजा ने बोधिसत्त्व के लिये उत्तम रूप वाली, सब दोषों से रहित धाइयां नियुक्त कीं। बोधिसत्त्व अनंत परिवार, तथा महती शोभा और श्री के साथ बढ़ने लगे। एक दिन राजा के यहां (खेत) बोने का उत्सव था। उस (उत्सव के) दिन लोग सारे नगर को देवताओं के विमान की भांति अलंकृत करते थे। सभी दास (=गुलाम) और नौकर आदि नये वस्त्र पहिन, गंध माला आदि से विभूषित हो, राज-महल में इकट्ठे होते थे। राजा को एक हज़ार हलों की खेती थी। लेकिन उस दिन बैलों की रस्सी की जोत के साथ एक कम आठ सौ सभी रूपहले हल थे। राजा का हल रत्न-सुवर्ण-जटित था। बैलों के सींग, और रस्सी-कोड़े भी सुवर्ण-खचित ही थे। राजा बड़े दल-बल के साथ, पुत्र को भी ले, वहां पहुंचा। खेती के स्थान पर ही, बहुत पत्रों तथा घनी छाया वाला एक जामुन का वृक्ष था। उसके नीचे कुमार की शैय्या बिछाई गई। ऊपर सुवर्ण-तार-खचित चंदवा तनवाया गया। उसे कनात से घिरवा, पहरा लगवा दिया गया। फिर सब अलङ्कारों से अलंकृत हो, अमात्य गण सहित राजा, हल जोतने के स्थान पर गया। वहां उसने सुनहले हल को पकड़ा, अमात्यों ने (अन्य) एक-कम आठ सौ रूपहले हलों को और कृषकों ने शेष दूसरे हलों को। हलों को पकड़ कर, वे इधर उधर जोतने लगे। राजा इस पार से उस पार, और उस पार से इस पार आता था। वहां बड़ी भीड़ थी, बड़ा तमाशा था। बोधिसत्त्व को घेर कर बैठी धाइयां, राजकीय-तमाशा देखने के लिये कनात के भीतर से बाहर चली आईं। बोधिसत्त्व इधर उधर किसी को न देख, जल्दी से उठ, श्वास-प्रश्वास को रोक, प्रथम ध्यान में स्थित हो गये। धाइयों ने खाद्य-भोज्य में (लगे रह कर) कुछ देर कर दी। सभी वृक्षों की छाया घूम गई, लेकिन (बोधिसत्त्व वाले) वृक्ष की छाया गोल ही खड़ी रही। धाइयों ने 'आर्य-पुत्र अकेले हैं', ख्याल कर जल्दी से कनात

उठा, अन्दर घुस कर, बोधिसत्त्व को बिछौने पर आसन मारे बैठे देखा। उस चमत्कार को देख उन्होंने जाकर राजा से कहा—'देव! कुमार इस तरह बैठा है। अन्य सभी वृक्षों की छाया लम्बी हो गई है, लेकिन जामुन के वृक्ष की छाया गोलाकार ही खड़ी है।" राजा ने वेग से आ, उस चमत्कार को देखा, "तात! यह दूसरी बार तेरी वन्दना है" (कह) पुत्र की वन्दना की।

(२) गौतम बुद्धका चरित्र (यौवन)

(१) यौवन प्रवेश

क्रमशः बोधिसत्त्व सोलह वर्ष के हुए। राजा ने बोधिसत्त्व के लिये, तीनों ऋतुओं के लायक तीन महल बनवा दिये। उन में एक नौ तला, दूसरा सात तला, तीसरा पांच तला था। चालीस हज़ार नाटक-करने वाली स्त्रियों को नियुक्त किया। बोधिसत्त्व अप्सराओं के समुदाय से घिरे देवताओं की भांति, अलंकृत नटियों से परिवृत, स्त्रियों द्वारा बजाये गये वाद्यों से सेवित, महा-सम्पत्ति को उपभोग करते हुए, ऋतुओं के क्रम से, उतने (ऋतुओं के अनुकूल) प्रसादों में विहरते थे। राहुल-माता देवी इन की अग्रमहिषी (=पटरानी) थी।

वह इस प्रकार महा सम्पत्ति का उपभोग करते रहते थे। उसी समय एक दिन बोधिसत्त्व की जाति-बिरादरी में ऐसी बात चली—"सिद्धार्थ क्रीड़ा में ही रत रहता है। किसी कला को नहीं सीखता, युद्ध आने पर क्या करेगा?" राजा ने बोधिसत्त्व को बुला कर कहा:—"तात! तेरे सगे-सम्बन्धी कहते हैं कि सिद्धार्थ किसी कला को न सीख कर सिर्फ भोगों में ही लिप्त रहता है। तुम इस विषय में क्या उचित समझते हो?"

"देव! मुझे शिल्प सीखने को नहीं है। नगर में मेरा शिल्प देखने के लिये ढंढोरा पिटवा दें कि आज से सातवें दिन (मैं) जाति वालों को (अपना) शिल्प (कर्तव्य) दिखाऊंगा।"

राजा ने वैसा ही किया। बोधिसत्त्व ने अक्षण वेध, बाल-बेध जानने वाले धनुर्धारियों को एकत्रित कर, लोगों के मध्य में अन्य धानुर्धारियों से (भी) विशेष बारह प्रकार के शिल्प (=कला) जाति-बिरादरी वालों को दिखलाये इन (के विस्तार) को सरभंग-जातक में आये (वर्णन) के अनुसार जानना चाहिये। तब बोधिसत्त्व के सगे सम्बन्धियों की शंका दूर हुई।

(२) जरा, व्याधि, मृत्यु और सन्यास दर्शन

एक दिन बोधिसत्त्व ने बगीचा देखने की इच्छा से सारथी को बुलाकर रथ जोतने को कहा। उस ने 'अच्छा' कह महार्घ उत्तम रथ को सब अलङ्कारों से अलंकृत कर, कमल-पत्र-सदृश चार मङ्गल सिन्धु-देशीय (घोड़ों) को जोत, बोधिसत्त्व को सूचना दी। बोधिसत्त्व देव-विमान-सदृश रथ पर चढ़ कर बगीचे की ओर चले। देवताओं ने (सोचा), सिद्धार्थ-कुमार के बुद्धत्व प्राप्त करने का समय समीप है, (हम) इसे पूर्व-लक्षण दिखायें। (सो उन्होंने) एक देव-पुत्र को जरा से जर्जरित, टूटे-दांत, पक्के केश, टेढ़े-झुके शरीर, हाथ में लकड़ी लिये, कांपता हुआ (करके) दिखलाया। उसे (केवल) बोधिसत्व और सारथी ही देखते थे। तब बोधिसत्व ने **महापदानसूत्र*** में आये (वर्णन) अनुसार सारथी से पूछाः—"सौम्य, यह कौन पुरुष है! इसके केश भी औरों के समान नहीं है।" (और) सारथी का उत्तर-पा, (वे) अहो! धिक्कार है जन्म को, जहां जन्म-लेने-वाले को (ऐसा) बुढ़ापा हो, (सोचते हुये,) उदास हो, वहां से लौट कर महल में चले गये। राजा ने पूछाः—"मेरा पुत्र जल्दी क्यों लौट आया?" "देव! बूढ़े आदमी को देख कर।" (भविष्यद्वक्ताओं ने) बूढ़े आदमी को देख कर प्रव्रजित होगा कहा था (सोच)राजा ने इस लिये, मेरा नाश मत करो। पुत्र के लिये शीघ्र ही नाटक तैय्यार करो। भोग भोगते हुये प्रव्रज्या का ख्याल न आयेगा, कह, पहरा और भी बढ़ाकर चारों दिशाओं में आधे योजन तक का करवा दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार बगीचे जाते हुए, देवताओं द्वारा निर्मित रोगी पुरुष को देख, पहिले की भांति पूछ, शोकाकुल हृदय से महल में लौट आये। राजा ने भी पूछ कर, पहले की भांति खिन्न चित हो, पहरे को फिर बढ़ाकर चारों ओर पौन योजन तक का कर दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार उद्यान जाते हुये, देवताओं द्वारा निर्मित मृत-पुरुष को देख, पहिले की भांति पूछ, उदास हो, फिर महल में लौट आये। राजा ने भी पूछ कर पहिले की भांति खिन्न चित्त हो, पहरे को फिर बढ़ा कर चारों ओर एक योजन तक का कर दिया।

---

*देखो दीर्घ-निकाय।

फिर एक दिन उद्यान जाते हुये, बोधिसत्व ने देवताओं द्वारा निर्मित भली प्रकार (वस्त्र) पहिने, (चीवर से) भली प्रकार ढंके एक प्रव्रजित (सन्यासी) को देखकर, सारथी से पूछा—'सौम्य! यह कौन है?' अभी बुद्ध प्रकट नहीं हुये थे, इसी लिये सारथी को प्रव्रजित (वा) प्रव्रज्या के गुणों के बारे में कुछ मालूम न था। लेकिन देवताओं की प्रेरणा से सारथी ने—'देव! यह प्रव्रजित है' कह प्रव्रजितों के गुण वर्णन किये। बोधिसत्त्व 'प्रव्रज्या' में रुचि उत्पन्न कर, उस दिन उद्यान को गये। यहां पर दीर्घ-भाणकों* का मत है कि '(बोधिसत्त्व ने) चारों पूर्व-लक्षणों (=निमित्तों) को एक ही दिन देखा।

(३) पुत्र जन्म

बुद्ध बोधिसत्त्व ने उद्यान में दिन भर विनोद कर, सुन्दर पुष्करिणी में स्नान किया। सूर्यास्त के समय सुन्दर शिला पट्ट पर, अपने को आभूषित कराने की इच्छा से बैठे। उस समय इन के परिचारक नाना रङ्ग के दुशाले, नाना भांति के आभूषण, माला, सुगन्धि, उबटन लेकर चारों ओर से घेर रक खड़े थे। उसी समय इन्द्र का आसन गर्म हुआ। उसने, "कौन मुझे इस सिंहासन से उतारना चाहता है" सोचते हुए बोधिसत्व के अलंकृत होने का काल देख, विश्वकर्मा को बुला कर कहाः—"सौम्य विश्वकर्मा! आज आधी रात के समय सिद्धार्थ कुमार महाभिनिष्क्रमण (=गृह त्याग)करेंगे। यह (आज का शृङ्गार) उन का अन्तिम शृङ्गार है। उद्यान में जाकर महापुरुष को दिव्य अलंकारों से अलंकृत करो।"

उस ने 'अच्छा' कह, देव-बल से उसी क्षण आकर, बोधिसत्व के जामा-साज़ के सदृश ही रूप धारण कर, जामा-साज़ के हाथ से दुशाला ले, बोधिसत्व के सिर पर बांधा।

उस के हाथ के स्पर्श से ही बोधिसत्व जान गये कि यह मनुष्य नहीं, कोई देव-पुत्र है। पगड़ी से शिर को वेष्टित करते ही शिर में, मुकुट के रत्नों की भांति एक सहस्र, दुशाले उत्पन्न हो गये। फिर बांधने पर दस सहस्र, इस प्रकार दस बार बांधने पर दस-सहस्र दुशाले उत्पन्न हुए। शिर छोटा और दुशाले बहुत, इस की शंका न होनी चाहिये (क्योंकि) उन में सब से बड़े

*'दीर्घ-निकाय' कण्ठ करने वाले पुराने आचार्यों को दीर्घ-भाणक कहा जाता है।

दुशाले (का वजन ही) श्यामा-लता के फूल के बराबर था, (और) दूसरे तो कुतुम्बुक पुष्प के ही बराबर थे। बोधिसत्व का शिर किंजल्क-युक्त कुय्यक फूल के समान था। उन के सब आभूषणों से आभूषित हो, सब (गीत=) तालज्ञ ब्राह्मणों के अपनी २ प्रतिभा का प्रदर्शन कर लेने पर, 'जय हो' आदि बचनों से, तथा सूतमागधों के नाना प्रकार के मंगल बचनों तथा स्तुति-घोषों से सत्कृत हो, (बोधिसत्व) सर्वालङ्कार-विभूषित उत्तम रथ पर आरूढ़ हुये।

उसी समय 'राहुल-माता ने पुत्र प्रसव किया' सुन महाराज शुद्धोदन ने आज्ञा की कि मेरे पुत्र को यह शुभ-समाचार सुनाओ। बोधिसत्व ने उसे सुन कहा "राहु पैदा हुआ, बन्धन पैदा हुआ।" राजा ने 'मेरे पुत्र ने क्या कहा,' पूछ, उसे सुन, कहाः—"अब से मेरे पोते का नाम राहुल-कुमार हो।"

बोधिसत्व भी श्रेष्ठ रथ पर चढ़, बड़े भारी यश, अति मनोरम शोभा तथा सौभाग्य के साथ नगर में प्रविष्ट हुये। उस समय, प्रासाद के ऊपर बैठी, कृशा गौमती नामक क्षत्रिय-कन्या ने नगर की परिक्रमा करते हुये बोधिसत्व की रूप शोभा को देख कर, बहुत ही प्रसन्नता तथा हर्ष से यह 'उदान*' कहाः—

"परम शान्त है वह माता, परम शान्त है वह पिता, परम शान्त है वह नारी, जिस का इस प्रकार का पति हो।"

बोधिसत्व ने यह सुना तो सोचा—यह कह रही है, कि इस के एकाग्र रूप को देखने वाली माता का हृदय परमशान्त होता है, पिता का हृदय परम शान्त होता है, पत्नी का हृदय परमशान्त होता है। किस के शान्त होने पर हृदय परमशान्त होता है? तब रागादि क्लेशों (मलों) से विरक्त होते हुए, (बोधिसत्व) को यह (विचार) हुआ कि राग-अग्नि के शान्त होने पर परम-शान्ति होती है, द्वेश-अग्नि तथा मोह-अग्नि के शान्त होने पर परम-शान्ति होती है। अभिमान मिथ्या-विचार (=दृष्टि) आदि सभी मलों के उपशमन होने पर परम-शान्ति होती। यह मुझे प्रिय-वचन सुना रही है। मैं निर्वाण को ढूंढ़ रहा हूं। आज ही मुझे गृह-वास छोड़, निकल कर, प्रव्रजित हो, निर्वाण की खोज में लगना चाहिये। 'यह इसकी गुरु-दक्षिणा हो'—कह उन्होंने अपने गले से एक

* आनन्दोल्लास में निकली वाक्यावली।

लाख का मोती का हार उतार कृशा गौतमी के पास भेज दिया। "सिद्धार्थ-कुमार ने मेरे प्रेम में फंस कर भेंट भेजी है" सोच वह बड़ी प्रसन्न हुई।

(४) गृह-त्याग

बोधिसत्व भी बड़े श्री-सौभाग्य के साथ अपने महल में जा, सुन्दर शैय्या पर लेट रहे। उसी समय सभी अलङ्कारों से विभूषित, नृत्य गीत आदि में दक्ष, देव-कन्या समान परम सुन्दरी स्त्रियों ने अनेक प्रकार के वाद्यों को लेकर, (कुमार को) घेर कर, खुश करने के लिये नृत्य, गीत और वाद्य आरम्भ किया। बोधिसत्व (रागादि) मलों से विरक्त-चित्त होने के कारण, नृत्य आदि में रत न हो, थोड़ी ही देर में सो गये। उन स्त्रियों ने भी सोचा—"जिस के लिये हम नृत्य आदि करते हैं, वह ही सो गया। अब (हम) काहे को तकलीफ़ करें। इसलिए वह भी अपने २ बाजों को साथ लिये ही सो गईं। उस समय सुगन्धित-तेल-पूर्ण प्रदीप जल रहे थे। बोधिसत्व जाग कर, पलंग पर आसन मार बैठ गये। उन्होंने वाद्य-भाण्डों को साथ ही लिये सोई उन स्त्रियों को देखा। (उन में) किन्हीं के मुंह से कफ और लार बह कर, उनका शरीर भीग गया था, कोई दांत कटकटा रही थीं कोई खांस रही थीं, कोई बर्रा रही थीं. किन्हीं के मुंह खुले हुए थे, किन्हीं के वस्त्र हटे होने से अति घृणोत्पादक गुह्य स्थान दिखलाई दे रहे थे। उन (स्त्रियों) के इन विकारों को देख कर (वे) और भी अधिक दृढ़ता-पूर्वक काम-भोगों से विरक्त हो गये। उन्हे वह सु-अलंकृत इन्द्र-भवन सदृश महाभवन सड़ती हुई नाना प्रकार की लाशों से पूर्ण कच्चे श्मशान की भांति मालूम हुआ। तीनों ही भव (=संसार) जलते हुए घर की तरह दिखलाई पड़े। हा! कष्ट!! हा! शोक!! ऐसी आह निकल पड़ी। उस समय उनका चित्त प्रव्रज्या के लिये, अत्यन्त आतुर हो गया। 'आज ही मुझे महाभिनिष्क्रमण (गृह-त्याग) करना चाहिये' (इस प्रकार निश्चय कर) पलंग पर से उतर, द्वार के पास जा पूछा—'कौन है?"

ड्योढ़ी में सिर रख कर सोये हुए छन्न ने कहा—'आर्य पुत्र! मैं छन्दक हूं।'

"मैं आज महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूं, मेरे लिये एक घोड़ा तैयार करो।"

'अच्छा देव!' कह, उसने घोड़े का साज-सामान ले, घोड़सार में जा, सुगन्धित तेल के जलते प्रदीपों (के प्रकाश) में, बेल बूट वाले रेशमी चन्दवे के नीचे,

सुन्दर स्थान पर खड़े, अश्व-राज कन्थक को देख कर, 'आज मुझे इसे ही तैयार करना चाहिए, (सोच) कन्थक को ही तैय्यार किया। साज सजाये जाते समय (कन्थक) ने सोचा-(आज की) तैय्यारी बहुत कसी हुई है। अन्य दिनों में उद्यान-क्रीड़ा आदि की यात्रा की तैय्यारी जैसी तैय्यारी नहीं है। आज मेरे आर्य-पुत्र महाभिनिष्क्रमण के इच्छुक होंगे। इसलिए प्रसन्न-चित्त हो, ज़ोर से हिनहिनाया। वह शब्द सारे नगर में फैल जाता; लेकिन देवताओं ने उस शब्द को रोक कर, किसी को न सुनने दिया।'

बोधिसत्व छन्दक को (तो उधर) भेज, पुत्र को देखने की इच्छा से, अपने आसन को छोड़ राहुल-माता के वास-स्थान की ओर गये। शयनागार का द्वार खोला। उस समय घर के भीतर सुगन्धित तेल-प्रदीप जल रहा था। राहुल-माता बेला, चमेली आदि के मन भर फूलों से सजी शय्या पर, पुत्र के मस्तक पर हाथ रखे सो रही थी। बोधिसत्व ने देहली में पैर रख खड़े २ देख कर सोचा-'यदि मैं देवी के हाथ को हटा कर अपने पुत्र को ग्रहण करूंगा, तो देवी जाग उठेगी, इस प्रकार मेरे गमन में विघ्न होगा। बुद्ध होने के पश्चात् ही, आकर पुत्र को देखूंगा। तब महल से उतरे आये। *जातकट्ठकथा में जो 'उस समय राहुल कुमार एक सप्ताह के थे' कहा है, वह दूसरी अट्ठकथाओं में नहीं है। इस लिए यहां यही समझना चाहिए।

इस प्रकार बोधिसत्व ने महल से उतर कर, घोड़े के पास जाकर कहा-'तात! कन्थक! आज तू मुझे एक रात तार दे, मैं तेरी सहायता से बुद्ध होकर, देवताओं सहित सारे लोक को तारूंगा।' फिर कूद कर कन्थक की पीठ पर सवार हुये कन्थक गर्दन से ले कर (पूंछ तक) अठारह हाथ लम्बा (और) वैसे ही महाकाय, बल-वेग-सम्पन्न धुले शङ्ख-सदृश सर्व-श्वेत वर्ण का था। यदि वह हिनहिनाता या पैर खटखटाता, तो (वह) शब्द सारे नगर में फैल जाता। इस लिये देवताओं ने अपने प्रताप से, ऐसा किया, जिस से कोई उस शब्द को न सुने। उन्हों ने हिनहिनाने के शब्द को रोक लिया (और) जहां २ (घोड़ा) पैर रखता था, वहां वहां हथेलियां रखीं। बोधिसत्व श्रेष्ठ अश्व की पीठ पर सवार हो छन्दक को उस की पूंछ पकड़वा, आधि रात के समय महा-द्वार के समीप पहुंचे। उस समय राजा ने यह

* यह पुरानी सिंहळ भाषा वाली जातक कथा होगी

सोच, कि कहीं बोधिसत्व जिस किसी समय नगर-द्वार को खोल कर, (बाहिर) न निकल जायें, दर्वाजे के दोनों कपाटों में से प्रत्येक को एक हजार मनुष्यों द्वारा खुलने लायक बनवाया था। बोधिसत्व महाबल-सम्पन्न हाथी की गिनती से दस अरब हाथी के बल को धारण करते थे; और पुरुष के हिसाब से एक खरब पुरुषों का बल। उन्हों ने सोचा—"यदि द्वार न खुला तो आज मैं कन्थक की पीठ पर बैठे, उस की पूंछ पकड़ कर लटके छन्दक के साथ ही, घोड़े को जांघ से दबा कर अठारह हाथ ऊंचे प्राकार को कूद कर पार करूंगा। छन्दक ने भी सोचा, "यदि द्वार न खुला, तो मैं आर्यपुत्र को कन्धे पर बैठा कन्थक को दाहिने हाथ से बगल में दबा प्राकार फांद जाऊंगा"। कन्थक ने भी सोचा—"यदि द्वार नहीं खुला, तो मैं अपने स्वामी के पीठ पर वैसे ही बैठे, पूंछ पकड़ कर लटकते छन्दक के साथ ही, प्राकार को लांघ जाऊंगा"। यदि द्वार न खुलता, तो तीनों में से प्रत्येक ऊपर सोचे अनुसार करता। लेकिन द्वार में रहने वाले देवता ने द्वार खोल दिया।

उस समय बोधिसत्व को (वापिस) लौटाने की इच्छा से, आकर, आकाश में खड़े हो मार * ने कहा—"मार्ष (मित्र)! मत निकलो। आज से सातवें दिन तुम्हारे लिये चक्र-रत्न प्रकट होगा। दो हजार छोटे द्वीपों सहित चारों महाद्वीपों पर राज्य करोगे। लौटो, मार्ष!"

"तुम कौन हो?"

"मैं बड़ा वर्ती हूं"

"मार! मैं भी जानता हूं कि मेरे लिये चक्र-रत्न प्रकट होगा। लेकिन मुझे राज्य से काम नहीं। मैं तो साहस्रिक लोक-धातुओं को निनादित कर बुद्ध बनूंगा।"

"आज से जब कभी तुम्हारे मन में कामना सम्बन्धी तर्क, द्रोह संबन्धी वितर्क, या हिंसा-संबन्धि वितर्क उत्पन्न होगा, तब मैं तुम्हें समझूंगा।" कह, मार मौका ताकते हुये, छाया की भान्ति जरा भी अलग न होते हुये, पीछा करने लगा।

बोधिसत्व हाथ में आये चक्रवर्ती-राज्य (के प्रति) अपेक्षा रहित हो, उसे थूक की भान्ति छोड़ कर, आषाढ़ की पूर्णिमा को उत्तराषाढ़ नक्षत्र में नगर से निकले। (लेकिन) नगर से निकल कर, (उन्हें) फिर नगर देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। चित्त में ऐसा विचार होते ही महा पृथ्वी कुम्हार के चक्के की भान्ति कांपी,

---

* कामदेव या शैतान।

मानों कह रही थी कि 'महा पुरुष ! तूने लौट कर देखने का काम (कभी) नहीं किया।' बोधिसत्व ने जहां से मुंह फेर कर नगर को देखा था, उस भू-प्रदेश में "कन्थक-निर्वर्तन-चैत्य" बना। वह गन्तव्य-मार्ग की ओर कन्थक का मुंह फेर, अत्यन्त सत्कार और महान् श्री-सौभाग्य के साथ चले। उस समय देवताओं ने उनके सम्मुख साठ हज़ार, पीछे साठ हज़ार, दाहिनी तरफ साठ हज़ार और बाईं तरफ भी साठ हज़ार मशाल धारण किये। अन्य देवताओं ने चक्र वालों के द्वार-समूह पर अपरिमित मशालों को धारण किया। और (भी) दूसरे देवताओं तथा नाग, सुपर्ण (=गरुड़) आदि (के) दिव्य गन्ध, माला, चूर्ण, धूप से पूजा करते हुये, पारिजात-पुष्प, मन्दार-पुष्प, (की वृष्टि से) घने मेघों की वृष्टि के समय (बरसती) धाराओं की भान्ति, आकाश आच्छादित हो गया। उस समय दिव्य संगीत हो रहे थे। चारों ओर आठ प्रकार के, साठ प्रकार के अडसठ-लाख बाजे बज रहे थे। समुद्र के उदर में मेघ-गर्जन-काल की भान्ति, युगन्धर की कुक्षि में सागर-निर्घोष काल की भान्ति (शब्द) हो रहा था। इस श्री और सौभाग्य के साथ जाते हुये, बोधिसत्व एक ही रात में तीन राज्यों * को पार कर, तीस योजन की दूरी पर अनोमा‡ नामक नदी के तट पर पहुंचे।

क्या अश्व तीस योजन से अधिक न जा सका ? नहीं, न जा सका ! वह (अश्व) एक चक्रवाल के अन्दर के घेरे को, पृथ्वी पर पड़े चक्के के घेरे की तरह, मर्दित करते हुये, कोने २ पर घूम कर, प्रातः काल के भोजन के समय से पूर्व लौट कर अपने लिये तैय्यार किये गये भोजन को खा सकता था। लेकिन, उस समय मार्ग आकाश में स्थित देव नाग तथा गरुड़ आदि द्वारा बरसाये गये गन्धमाला आदि से जांघ तक ढका हुआ था। शरीर निकालते २, गन्ध माला के जाल को हटाते हटाते बहुत देर हो गई। इस लिए केवल तीस योजन ही पहुंच सका।

३ गौतम बुद्ध का चरित्र (सन्न्यास)

(१) भिक्षु वेश में

तब बोधिसत्व ने नदी के किनारे खड़े हो छन्दक से पूछा—

"इस नदी का क्या नाम है ?"

---

* शाक्य, कोलिय और राम-ग्राम।

‡ औमी नदी ? जिला गोरखपुर।

"देव ! अनोमा है।"

"हमारी भी प्रव्रज्या अनोमा होगी," (सोच) एड़ी से रगड़ कर घोड़े को इशारा किया। घोड़ा छलांग मार कर, आठ ऋषभ* चौड़ी नदी के दूसरे तट पर जा खड़ा हुआ। बोधिसत्व ने घोड़े की पीठ से उतर, रुपहले रेशम जैसे (नर्म) बालुका-तट पर खड़े हो, छन्दक को कहा—"सौम्य ! छन्दक ! तू मेरे आभूषणों तथा कन्थक को लेकर जा, मैं प्रव्रजित होऊंगा।"

"देव ! मैं भी प्रव्रजित होऊंगा"

"तुझे प्रव्रज्या नहीं मिल सकती, लौट जा" तीन बार कह कर, बोधिसत्व उसे आभरण और कन्थक सौंप सोचने लगे:—

यह मेरे केश श्रमण-भाव (=सन्न्यासीपन) के योग्य नहीं हैं, और बोधिसत्व के केश काटने लायक दूसरा कोई नहीं है, इसलिये अपने ही आप खड्ग से इन्हें काटूं।"

(यह सोच) दाहिने हाथ में तलवार ले, बायें हाथ से मौर सहित जूड़े को काट डाला। केश सिर्फ दो अंगुल के होकर, दाहिनी ओर से घूम, सिर में चिपट गये। फिर जिन्दगी भर, उन का वही परिणाम रहा। मूंछ (-दाढ़ी) भी उनके अनुसार ही हो गई। फिर सिर-दाढ़ी मुंडाने की जरूरत नहीं रही। बोधिसत्व ने मौर-सहित जूड़े को ले, आकाश में फेंक दिया और (सोचा) यदि मैं बुद्ध होऊं, तो यह आकाश में ठहरे, नहीं तो, भूमि पर गिर पड़े।" वह चूड़ामणि वेष्टन योजन भर (ऊपर) जाकर, आकाश में ठहरा। शक्र देवराज ने दिव्य-दृष्टि से देख, (उसे) उपयुक्त रत्नमय करण्ड में ग्रहण कर त्रयस्त्रिंश (स्वर्ग) लोक में चूड़ामणि चैत्य की स्थापना की।

"बोधिसत्त्व (अग्र-पुद्गल) ने सुगन्धयुक्त मौर को काट कर, आकाश में में फेंक दिया। देवेन्द्र (=सहस्राक्ष) ने, उसे सुवर्ण-करण्ड में ग्रहण कर शिरोधार्य किया।"

फिर बोधिसत्व ने सोचा—यह काशी के बने वस्त्र भिक्षु के योग्य नहीं हैं। तब कश्यप बुद्ध के समय के इन के पुराने मित्र घटिकार महाब्रह्मा ने एक बुद्धन्तर † बीतने पर भी जरा को अप्राप्त मित्र-भाव के कारण सोचा—आज

* ४ धनुष=१६ हाथ=१ ऋषभ।

† दो बुद्धों के बीच का समय।

मेरे मित्र ने महाअभिनिष्क्रमण किया है। मैं उसके लिये भिक्षु की आवश्यकतायें (=श्रमण परिष्कार) ले चलूंगा।"

"योग में युक्त भिक्षु को, तीन चीवर, पात्र, छुरी, सुई, काय-बन्धन और पानी छानने का वस्त्र—यह आठ (चीजें) होती हैं।"

(उसने) इन आठ परिष्कारों को लाकर बोधिसत्व को दिया। बोधिसत्व ने अर्हित-ध्वजा को धारण कर (अर्थात्) श्रेष्ठ प्रव्रज्या-वेष को ग्रहण कर छन्दक को प्रेरित किया।

'छन्दक! मेरी बात से माता पिता को आरोग्य कहना।' छन्दक बोधिसत्व की वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर चल दिया। लेकिन कन्थक ने बोधिसत्व की छन्दक के साथ हुई बात को सुना। "अब मुझे, फिर स्वामी का दर्शन नहीं होगा।" सोच, आंख से ओझल होने के शोक को न सह सकने के कारण, वह कलेजा फट कर मर गया; और त्रयस्त्रिंश-भवन में कन्थक नामक देवपुत्र हो उत्पन्न हुआ। छन्दक को पहिले एक ही शोक था; लेकिन कन्थक की मृत्यु से (अब) दूसरे शोक से (भी) पीड़ित हो (वह) रोता नगर को चला।

(२) राजगृह में भिक्षाटन

बोधिसत्व भी प्रव्रजित हो उसी प्रदेश में, अनूपिया नामक कस्बे के आमों के बाग में, एक सप्ताह प्रव्रज्या-सुख में बिता, एक ही दिन में तीस योजन मार्ग पैदल चल कर, राजगृह में प्रविष्ट हुए। वहां प्रविष्ट हो भिक्षा मांगने के लिये निकले। जैसे धनपाल राजगृह में प्रविष्ट हुआ हो, जैसे असुरेन्द्र देवनगर में प्रविष्ट हुआ हो, वैसे ही बोधिसत्व के रूप को देख कर सारा नगर संक्षुब्ध हो गया। राज-पुरुषों ने जाकर राजा से कहा—"देव! इस रूप का एक पुरुष नगर में मधूकरी मांग रहा है। वह देव है या मनुष्य, नाग है या गरुड़, कौन है हम नहीं जानते?" राजा ने महल के ऊपर खड़े हो महापुरुष को देख आश्चर्यान्वित हो, (अपने) आदमियों को आज्ञा दी—'जाओ! देखो! यदि अमनुष्य होगा, तो नगर से निकल कर अन्तर्धान हो जायगा। यदि देवता होगा, तो आकाश से चला जायगा, यदि नाग होगा तो पृथिवी में डुबकी लगा कर चला जायगा। यदि मनुष्य होगा, तो जो भिक्षा मिली है, उसे खायेगा।" महापुरुष ने मिश्रित भोजन को संग्रह कर, 'इतना मेरे लिये पर्याप्त होगा' जान, प्रविष्ट हुये द्वार से ही

(बाहर) निकल, पाण्डव-पर्वत* की छाया में पूरब-मुंह बैठ, भोजन करना आरम्भ किया। उस समय उनके आंत उलट कर मुंह से निकलते जैसे मालूम हुए। तब इस जन्म में, इस से पूर्व ऐसा भोजन आंख से भी न देखा होने से, उस प्रतिकूल भोजन से दु:खित हुए अपने आप को, अपने आप ही यों समझाया—

"सिद्धार्थ! तू अन्न-पान सुलभ कुल में तीन वर्ष के (पुराने) सुगन्धित चावल का भोजन किये जाने वाले स्थान में पैदा होकर भी, गुदड़ीधारी (भिक्षु) को देख कर (सोचता था)—कि मैं भी कब इसी तरह (भिक्षु) बन कर भिक्षा मांग भोजन करूंगा? क्या वह भी समय होगा?—और यही सोच घर से निकला था। अब यह क्या कर रहा है?" इस प्रकार अपने ही अपने आप को समझा कर निर्विकार हो भोजन किया। राज-पुरुषों ने उस वृत्तान्त को देख, जाकर राजा से कहा। राजा ने दूत की बात सुन, नगर से शीघ्र निकल, बोधिसत्व के पास जा, उनकी चर्या से ही प्रसन्न हो बोधिसत्व को (अपने) सभी ऐश्वर्य अर्पण किये। बोधिसत्व ने कहा—महाराज! मुझे न वस्तु-कामना है, न भोग कामना। मैंने महान् बुद्ध-ज्ञान (=अभिसंबोधि) की प्राप्ति के लिये गृह-त्याग (=अभिनिष्क्रमण) किया है। राजा के बहुत तरह से प्रार्थना करने पर भी, उसका चित्त आकृष्ट न कर सकने पर, कहा—अच्छा! तुम निश्चय से बुद्ध होगे। बुद्ध होने पर पहले पहल हमारे राज्य में आना।" यह यहां संक्षेप में है। विस्तार "प्रव्रज्या का वर्णन करता हूं, जिस प्रकार चक्षुमान् प्रव्रजित हुए" (इस प्रकार आरम्भ होने वाले) **प्रव्रज्या-सूत्र**† को अट्ठकथा के साथ प्रव्रज्या सूत्र में देख कर जानना चाहिये।

(३) तपस्या

बोधिसत्व भी राजा को वचन दे, क्रमश: विचरण करते हुए, आलार कालाम तथा उद्दक-राम पुत्र के पास पहुंच समाधि (=समापत्ति) सीखी। फिर यह (समाधि) ज्ञान (=बोध) का रास्ता नहीं है, (सोच) उस समाधि भावना को अपर्याप्त समझ, देवताओं सहित सभी लोकों को अपना बल वीर्य दिखाने के लिये महान् प्रयत्न में लगने की इच्छा से, उरूवेला में पहुंच—"यह भूमि-भाग

*वर्तमान रत्नगिरि या रत्नकूट।

†सुत्त-निपात, मार वग्ग।

(=प्रदेश)रमणीय है" सोच, वहां महा-प्रयत्न करने लगे।

कौण्डिन्य आदि पांच परिव्राजक भी, गांव, शहर, राजधानी में भिक्षा-चरण करते, बोधिसत्व के पास वहां पहुंचे। 'अब बुद्ध होंगे अब बुद्ध होंगे' इस आशा से, वह उनके छः वर्ष तक महा प्रयत्न करने के समय, आश्रम की झाडू-बहारी आदि सेवाओं को करते, बोधिसत्व के पास रहे।

बोधिसत्व भी 'अन्तिम दर्जे की दुष्कर-क्रिया करूंगा' सोच (अक्षत) तिल तण्डुलादि से भी काल-क्षेप करने लगे। (आगे चलकर) आहार ग्रहण करना सर्वथा छोड़ दिया। देवताओं ने रोम कूपों द्वारा (उनके शरीर में) ओज डाला। (तो भी) आहार के बिना बहुत दुबले होकर,उन का कनक-वर्ण शरीर काला पड़ गया। (शरीर में विद्यमान) महापुरुषों के बत्तीस-लक्षण छिप गये। एक बार श्वास-रहित ध्यान करते समय, काय क्लेश से बहुत ही पीड़ित (एवं) बेहोश हो टहलने के चबूतरे (=चन्क्रमण-भूमि) पर गिर पड़े। तब कुछ देवताओं ने कहा, 'श्रमण गौतम मर गये' कुछ ने कहा 'अर्हत-व्यक्ति का विहरण (=चर्या) ऐसा ही होता है।" तब जिन (देवताओं) का विचार था कि (श्रमण गौतम) मर गये, उन्होंने जाकर राजा शुद्धोदन से कहाः— "तुम्हारा पुत्र मर गया।"

मेरे पुत्र ने 'बुद्ध' होने के पश्चात् शरीर छोड़ा अथवा 'बुद्ध' होने से पूर्व ही शरीर छोड़ दिया?"

"'बुद्ध' न हो सका। प्रयत्न-भूमि में, (प्रयत्न करते हुये ही) गिर कर मर गया।"

यह सुन कर राजा ने (इस बात का) विरोध कियाः—"मैं इस में विश्वास नहीं करता। 'बुद्ध' हुये बिना मेरे पुत्र की मृत्यु होने वाली नहीं।"

राजा ने किस लिये विश्वास नहीं किया? तपस्वी काल देवल के वन्दना करने के दिन तथा जम्बू-वृक्ष के नीचे अलौकिक घटनायें देखे रहने के कारण। होश में आकर, बोधिसत्व के उठ बैठने पर, उन देवताओं ने फिर महाराज शुद्धोदन को जाकर कहाः—"महाराज! तुम्हारा पुत्र सकुशल है।" राजा ने कहाः—"हां! मैं अपने पुत्र के जीवित रहने की बात जानता हूं।" महासत्व की छः वर्ष की दुष्करतपस्या आकाश में गांठ बांधने के समान (निष्फल) हुई। तब उन्होंने सोचा —"यह दुष्कर तपस्या बुद्धत्व-प्राप्ति का मार्ग

नहीं है।" (इस लिये) स्थूल आहार ग्रहण करने के लिये ग्रामों तथा नगरों में भिक्षाटन कर, भोजन करना आरम्भ कर दिया। (शरीर के) बत्तीस महा पुरुष-लक्षण (फिर) स्वाभाविक अवस्था में आगये। शरीर फिर सुवर्ण-वर्ण हो गया। पंच वर्गीय भिक्षुओं ने सोचाः—छः वर्ष तक दुष्कर तपस्या करके भी यह सर्वज्ञता को प्राप्त नहीं कर सका, अब ग्रामादि में भिक्षा मांग कर स्थूल आहार ग्रहण करता हुआ तो यह क्या ही कर सकेगा ? यह लालची है। तपस्या के मार्ग से भ्रष्ट है। जैसे शिर से नहाने की इच्छा रखने वाले के लिये ओस-बून्द की ओर ताकना (निष्फल) है, वैसे ही हमारा इस की ओर ताकना (=आशा रखना) है। इस से हमारा क्या मतलब (सिधेगा) ? ऐसा सोच महापुरुष को छोड़, अपने २ पात्र चीवर ले, अठारह योजन चल कर ऋषिपतन* पहुंचे।

(१४) सुजाता की खीर

उस समय उरूवेला (प्रदेश) के सेनानी नामक कस्बे में, सेनानी कुटुम्बी के घर में उत्पन्न सुजाता नाम की कन्या ने तरुणी (वयस्-प्राप्त) होने पर, एक बरगद के वृक्ष से सुख सुख रक्खी थी (=प्रार्थना की थी)—"यदि समान जाति के कुल-घर में जा, पहिले ही गर्भ में पुत्र लाभ करूंगी, तो प्रति वर्ष एक लाख के खर्च से तेरी पूजा (=बलि कर्म) करूंगी। उस की वह प्रार्थना पूरी हुई। महासत्व (=महापुरुष) की दुष्कर तपश्चर्या का छठा वर्ष पूरा होने पर, वैशाख पूर्णिमा के दिन बलि-कर्म करने की इच्छा से, उस ने पहिले हज़ार गायों को यष्टि-मधु (=जेठी मधु) के बन में चरवाकर, उन का दूध दूसरी पाँच सौ गायों को पिलवाया। (फिर) उनका दूध ढ़ाई सौ गायों को; इस तरह (एक का दूध दूसरे को पिलाते) १६ गायों का दूध आठ गायों को पिलवाया। इस प्रकार दूध का गाढ़ापन, मधुरता, और ओज (बढ़ाने के लिये) उसने क्षीर-परिवर्तन किया। उस ने वैशाख-पूर्णिमा के प्रातः ही बलि-कर्म करने की इच्छा से भिन-सार को उठ कर, उन आठ गायों को दुहवाया। बछड़ों ने गौवों के थनों को मुंह नहीं लगाया। थनों के पास नवीन बरतन के लाते ही, क्षीर-धारा अपने आप ही निकलने लगी। उस आश्चर्य को देख, सुजाता ने, अपने ही हाथ से

*सारनाथ (B. N. W. Ry), जि० बनारस

दूध को लेकर, नवीन बरतन में डाल, अपने ही हाथ से आग जला (खीर) पकाना आरम्भ किया। उस खीर के पकते समय, (उस में) बड़े २ बुलबुले उठ कर दक्षिण की ओर (हो) संचार करते थे। एक बुलबुला भी बाहिर नहीं गिरता था। चूल्हे से ज़रा सा भी धुआं नहीं उठता था। उस समय चारों लोकवालों ने आकर चूल्हे पर पहरा देना शुरू किया, महाब्रह्मा ने छत्र धारण किया। शक्र (=इन्द्र) ने ईंधन ला ला आग जलाई। देवताओं ने दो सहस्र द्वीप परिवारों और चारों महा द्वीपों देवताओं और मनुष्यों के योग्य ओज, अपने देव-प्रताप से, डण्डे पर लगे हुये मधु-छत्ते को निचोड़ कर मधु ग्रहण करने की तरह, एकत्र कर उस में डाला। और २ समय पर देवता ओज को कौल, कौल (=कवल) करके डालते हैं। लेकिन सम्बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन और परिनिर्वाण के दिन ऊखली (=देगची) में ही उंडेल दिया।

एक ही दिन में अनेक आश्चर्यों का प्रगट हुआ देख, सुजाता ने (अपनी) पूर्णा (नाम की) दासी को कहा—। अम्मा पुण्णे! आज हमारे देवता बहुत ही प्रसन्न हैं। मैं ने इस से पहले, इतने समय तक (कभी) इस प्रकार का आश्चर्य्य नहीं देखा। जल्दी से जाकर देवस्थान को साफ करो" "आर्य्ये! अच्छा।" कह उसके बचन को ग्रहण कर, वह जल्दी २ वृक्ष के नीचे पहुंची। बोधिसत्त्व भी, उस रात को पांच महा स्वप्न देख, "आज मैं निःसंशय बुद्ध होऊंगा" निश्चय कर उस रात के बीतने पर, शौच आदि से निवृत्त हो, भिक्षा-काल की प्रतीक्षा करते हुये, प्रातःकाल ही आकर, अपनी प्रभा से सारे वृक्ष को प्रकाशित करते हुये, उस वृक्ष के नीचे बैठे। पूर्णा ने आकर देखा कि बोधिसत्त्व वृक्ष के नीचे बैठे हैं और पूर्व की ओर ताक रहे हैं। उन के शरीर से निकलने वाली प्रभा के कारण सारा वृक्ष प्रकाशित है। (यह) देखकर उस ने सोचाः— आज हमारे देवता वृक्ष से उतर कर अपने ही हाथ से बलि ग्रहण करने को बैठे हैं" (इस लिये) उद्विग्न हो, उसने बहुत जल्दी से यह (बात) जाकर सुजाता से कही।

सुजाता ने उस की बात को सुन कर प्रसन्न हो, "आज से तू मेरी ज्येष्ठ-पुत्री बन कर रह" कह, (अपनी) लड़की के योग्य सब आभरण आदि उस को दिये।

'बुद्धत्व प्राप्ति के दिन लाख के मूल्य का सुवर्ण-थाल मिलना चाहिये' इस लिये (सुजाता ने खीर) को सोने की थाल में डालने का विचार कर, लाख

के मूल्य की सोने का थाल मंगवा कर, उस में खीर डालने की इच्छा से पके बर-तन को उलटा। पद्म-पुष्प में रक्खे पानी की तरह, सारी खीर उलट कर, थाल में आ पड़ी। और वह (खीर) ठीक एक थाल भर ही हुई। उसने उस सुवर्ण-थाल को दूसरे सुवर्ण-थाल से ढक, कपड़े से बांध, अपने को सब अलङ्कारों से अलंकृत कर, थाल को अपने सिर पर रख, बड़े वैभव के साथ न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे गई और बोधिसत्व को देख बहुत ही सन्तुष्ट हो, (उन्हें) वृक्ष का देवता समझ, (प्रथम) दिखाई पड़ने की जगह में ही (गौरवार्थ) झुक २ कर जा, सिर से थाल को उतार कर खोला फिर सोने की झारी में सुगन्धित पुष्पों से सुवासित जल ले, बोधिसत्व के पास जा खड़ी हुई। घटिकार महाब्रह्मा द्वारा दिया गया मट्टी का पात्र (=भिक्षा पात्र) इतने समय तक बराबर बोधिसत्व के पास रहा, लेकिन इस समय वह अदृश्य हो गया। बोधिसत्व ने पात्र को न देख कर, दाहिने हाथ को फैला जल ग्रहण किया। सुजाता ने पात्र-सहित खीर को महा पुरुष के हाथ में अर्पण किया। महा पुरुष ने सुजाता की ओर देखा। उस ने संकेत से जान कर—"आर्य! मैं ने तुम्हें यह प्रदान किया, इसे ग्रहण कर यथारुचि पधारिये" कह, वन्दना कर (फर) "जैसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, वैसे ही तुम्हारा भी पूरा हो" कह, लाख (मुद्रा) के मूल्य के उस सवर्ण थाल को लिये पुरानी पत्तल की भान्ति जरा भी ख्याल न कर चल दी।

बोधिसत्व बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए स्थान से उठ, वृक्ष की प्रद-क्षिणा कर, थाल को ले, नेरञ्जरा के तीर पर गये। वहां लाखों बोधिसत्वों के बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन, उतर कर नहाने योग्य, समतल घाट है, वहां किनारे पर थाल को रख कर, उतर नहा कर अनेक लाख बुद्धों का पहरावा अर्हत्-ध्वजा (=चीवर) पहन कर, पूर्व दिशा की ओर मुंह कर बैठ, एक (ही) बीज वाले पके ताल-फल के प्रमाण के, उनचास कवल (पिण्ड) करके, उस समस्त निर्जल मधुर-खीर का भोजन किया। यही आहार बुद्धत्व-प्राप्ति होने पर, बोधि-मण्डप में सात-सप्ताह तक बैठे रहने के समय, उनचास दिन का आहार हुआ। इतने समय तक न दूसरा आहार किया, न नहाया, न मुंह धोया, न (अन्य) शारीरिक कृत्य किया। (इन सप्ताहों को) ध्यान-सुख, मार्ग (लाभ) सुख तथा फल (=दुःख-क्षय) सुख में ही बिताया। हां, उस खीर को खा, सोने के थाल को ले, "यदि मैं बुद्ध हो सकूं, तो यह थाल पानी के स्रोत की तरफ चले; यदि न हो सकूं तो नीचे की ओर

जाये, कह कर, (नदी में) फेंक दिया। वह थाल धार चीर कर, नदी के बीच जा, बीचों बीच ही वेगवान् घोड़े की तरह, अस्सी हाथ (की दूरी) तक स्रोत से उलटी चली और एक गढ़े में डूब कर, काल नाग राज के भवन में जा, तीनों बुद्धों के उपयोग किए थालों से टकरा कर छन-छन (किल-किल) शब्द करता हुआ, उन सब थालों के नीचे जाकर बैठ गया। काल-नाग-राजा उस शब्द को सुन कर, "कल (भी) एक बुद्ध उत्पन्न हुआ था, आज फिर एक बुद्ध उत्पन्न हुआ है (सोच) अनेक सौ श्लोकों से प्रशंसा करता रहा। उस (नाग-राज) को पृथ्वी का एक योजन तीन गव्यूति मोटा हो जाने का समय 'आज' या 'कल' की तरह ही था।

बोधिसत्व भी नदी तीर के सुपुष्पित शाल वन में दिन बिता कर, शाम को डंठल से फूलों के गिरने के समय, देवताओं द्वारा अलंकृत, आठ ऋषभ चौड़े मार्ग से, सिंह-गति से बोधि-वृक्ष के पास गए। नाग, यक्ष, गरुड़ आदि ने दिव्य गन्ध तथा पुष्पों से पूजा की। दिव्य संगीत का गायन किया। दस सहस्र लोक सर्वत्र सुगन्धित, किये। एक समान माला (अलंकृत) एक समान 'साधु २' के शब्द से गूंजित हुई। उस समय, सामने से घास लिये आते हुए श्रोत्रिय नामक घास काटने वाले ने, महापुरुष के आकार को देख कर, उन्हें आठ मुट्ठी तृण दिया। बोधिसत्व तृण ले, बोधिमण्ड पर चढ़ दक्षिण-दिशा में उत्तर की ओर मुंह कर के खड़े हुए। उस समय दक्षिण चक्रवाल दब कर, मानों अविचि (नरक) तक नीचे चला गया; उत्तर-चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानों भवाग्र तक ऊपर चला गया। "मालूम होता है, यहां सम्बुद्धत्व नहीं प्राप्त होगा" सोच, बोधिसत्व प्रदक्षिणा करते हुए, पश्चिम दिशा की ओर जा पूर्व की ओर मूंह करके खड़े हुये। तब पश्चिम-चक्रवाल दब कर, मानों अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया। पूर्व-चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानों भवाग्र तक ऊपर चला गया। वह जहां २ जाकर ठहरे, वहां २ नेमियों को लम्बे करके, नाभी के सहारे लिटाये हुये, शकट के पहिए के सदृश महापृथ्वी ऊंची नीची हो उठी। "मालूम होता है, यहां भी बोधि (=ज्ञान) की प्राप्ति नहीं होगी' सोच, बोधिसत्व प्रदक्षिणा करते उत्तर दिशा की ओर जा दक्षिण की ओर मूंह कर खड़े हुए। तब उत्तर का चक्रवाल दब कर, मानों अवीची (नरक) तक नीचे चला गया: दक्षिण चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानों भवाग्र (लोक) तक ऊपर

उठ गया। "मालूम होता है, यह भी बुद्धत्व-प्राप्ति का स्थान न होगा" सोच, बोधिसत्व, प्रदक्षिणा करते पूर्व दिशा की ओर जा, पश्चिम की ओर मुंह कर के खड़े हुए। पूर्व-दिशा, सभी बुद्धों के बैठने का स्थान है इसलिये न हिलती है, न कांपती है। "यह सभी बुद्धों से अपरित्यक्त स्थान है, (यही) दुःख-पञ्जर के विध्वंसन का स्थान है"—जान, (बोधिसत्व ने) उन कुशों के छोरों को पकड़ कर हिलाया। उसी समय चौदह हाथ का आसन बन गया; और वह तृण ऐसे (सुन्दर) रूप से बैठ गये, जैसे (सुन्दर) रूप से कोई चतुर चित्रकार अथवा पुस्तक-लेखक (पढ़ कर) चित्रित नहीं कर सकता। बोधिसत्व ने बोधिवृक्ष को भी पीठ की ओर करके, दृढ़-चित्त हो निश्चय किया—"चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न बाकी रह जायें; (और) शरीर, मांस, रक्त सूख जाये, तो भी यथार्थ ज्ञान को प्राप्त किये बिना इस आसन को नहीं छोड़ूंगा" और सौ बिजलियां के गिरने से भी न टूटने वाले अपराजित आसन पर बैठ गये।

मार पराजय

उस समय मार देव-पुत्र ने सोचा—"सिद्धार्थ-कुमार मेरे अधिकार से बाहिर निकलना चाहता है, इसे नहीं जाने दूंगा"—और अपनी सेना के पास जा, यह बात कह, घोषणा करवा कर, अपनी सेना ले निकल पड़ा। मार के आगे की ओर वह सेना बारह योजन तक; दाईं और बाईं ओर भी बारह २ योजन तक; (लेकिन) पीछे की ओर चक्रवाल के अन्त तक फैली हुई थी। आसमान की ओर सौ योजन तक ऊंची थी। जय-घोष करने पर (उस का) जय-घोष एक हज़ार योजन दूर से भी पृथ्वी के फटने के शब्द की भान्ति सुनाई देता था। तब मार देव-पुत्र ने डेढ़ सौ योजन के गिरिमेखल नामक हाथी पर चढ़कर, सहस्रबाहु से नाना प्रकार के आयुधों को ग्रहण किया। मार-सेना के बाक़ी लोगों में से भी, किसी दो ने एक प्रकार के हथियार नहीं लिये। वे सब नाना प्रकार के रंग तथा और मुख वाले बन कर बोधिसत्व को डराते हुये आये। उस समय दस सहस्र चक्रवालों के देवता महा सत्त्व की स्तुति करते रहे। देवेन्द्र शक्र अपने विजयोत्तर-शङ्ख को फूंकता रहा। वह शङ्ख एक सौ बीस हाथ का था। एक बार फूंक देने के चार महीने तक बजकर निःशब्द होता था। महा काल नाग-राजा शेष सौ श्लोकों से गुणगान कर रहा था। महाब्रह्मा श्वेत छत्र लिये खड़ा था। (लेकिन) मार सेना के बोधि-मण्ड तक पहुंचते २ (मार सेना) में (से) एक

भी खड़ा न रह सका; (सभी) सामने आते ही भाग गये।

काल नाग-राज पृथ्वी में अन्तर्धान हो कर, पांच सौ योजन व.ले अपने मञ्जेरिक नाग–भवन में जा, दोनों हाथों से मुंह को ढंक, लेट रहा। शक्र विजयोत्तर-शङ्ख को पीठ पर रख कर चक्रवाल के प्रधान द्वार पर जा खड़ा हुआ। म.ा ब्रह्मा श्वेत छत्र को चक्रवाल के सिरे पर रख (अपने आप) ब्रह्म-लोक को भाग गया। एक भी देवता न ठहर सका। महा-पुरुष अकेले ही बैठे रहे। मार ने भी अपने अनुचरों से कहा––"तात! शुद्धोदन-पुत्र सिद्धार्थ के समान दूसरा (कोई) वीर नहीं है। हम सामने से इससे युद्ध नहीं कर सकेंगे (इस लिये) पीछे से चल कर करें।" महा पुरुष ने भी सब देवताओं के भाग जाने के कारण तीनों दिशाओं को खाली देखा। फिर उत्तर-दिशा की ओर से मार-सेना को आगे बढ़ते देख––"यह इतने लोग मेरे अकेले के विरुद्ध इतने प्रयत्न शील हैं। आज यहां माता, पिता भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी नहीं है। मेरी दस पारिमितायें ही चिरकाल से परिशोषित मेरे परिजन के समान हैं। इसलिये इन पारमिताओं को ही ढाल बना कर, (इस) पारमिता-शस्त्र को ही चला कर, मुझे यह सेना-समूह विध्वंस करना होगा।" (यह सोच) दस पारमिताओं का स्मरण करते हुये बैठे रहे।

तब मार देव-पुत्र ने सिद्धार्थ को भगाने की इच्छा से आंधी उत्पन्न की। तत्काल (उसी क्षण) पूर्व, पश्चिम से झंझावात उठ कर, अर्ध-योजन, (योजन), दो योजन और तीन योजन तक के पर्वत-शिखरों को उखाड़ती, वृक्षों को उन्मूलन करती, चारों ओर ग्राम-नगरों को चूर्ण चूर्ण करती आगे बढ़ी। किंतु महा पुरुष के पुण्य-तेज से उसकी प्रचंडता बोधिसत्व के पास पहुंचते २ (इतनी निर्बल हो गई कि) उनके चीवर का कोना भी न हिला सकी। तब पानी में डुबाने की इच्छा से उसने भयंकर महा-वर्षा शुरू की। उस के दिव्य बल से ऊपर सौ (फिर) हज़ार तहों वाले बादल बरसने लगे। वर्षा की धाराओं के ज़ोर से पृथ्वी में छेद पड़ गये। बन-वृक्षों की ऊपरी चोटियों तक महा-समुद्र आ गया, तो भी, (वह) महासत्व के चीवरों को ओस की बूंदों के समान भी न भिगो सका। उस के बाद पत्थरों की वर्षा की। बड़े २ धुआं-धार जलते दहकते पर्वत-शिखर आकाश-मार्ग से आए; लेकिन बोधिसत्व के पास पहुंच कर दिव्य-पुष्पों के गो

बन गये। उसके बाद आयुध-वर्षा आरम्भ की। एक धार, द्विधार, असि(=तलवार), शक्ति, खुरपा आदि प्रज्वलित आयुध आकाश मार्ग से आने लगे; (लेकिन) बोधिसत्त्व के पास पहुंच कर (वह भी) दिव्य-पुष्प बन गए। उस के बाद अङ्गारों की वर्षा की। लाल २ रंग के अङ्गार आकाश से बरसने लगे; (लेकिन) बोधिसत्त्व के पैरों पर वह दिव्य-फूल बन कर बिखर गए। उसके बाद राख की वर्षा की। अत्यन्त उष्ण अग्निचूर्ण आकाश से बरसने लगा, (लेकिन) बोधिसत्त्व के चरणों पर वह चन्दन-चूर्ण बन कर गिर पड़ा। तब रेत की वर्षा की। धुंध आती, प्रज्वलित, अति सूक्ष्म बालुका आकाश से बरसने लगा, (लेकिन) बोधिसत्त्व के चरणों पर वह दिव्य-पुष्प बन गिर पड़ा। तब कीचड़ की वर्षा की। धुंध आती प्रज्वलित कीचड़ आकाश से बरसने लगा; (लेकिन) बोधिसत्त्व के पैरों पर वह दिव्य-लेप बन गिर पड़ा। तब मार देव-पुत्र ने कुमार को भगाने की इच्छा से अन्धकार कर दिया। वह अन्धकार चारों ओर से घनघोर अन्धकार था, तो (भी) बोधिसत्त्व के पास पहुंच, सूर्य प्रभा से विनिष्ट अंधेरे की भान्ति अन्तर्धान हो गया।

इस प्रकार मार जब वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, बालू, कीचड़, अन्धकार की वर्षा से (भी) बोधिसत्त्व को न भगा सका तो (अपनी परिषद् से बोला)—"भणे! क्या खड़े हो। इस कुमार को पकड़ो, मारो, भगाओ" और इस प्रकार परिषद् को आज्ञा देकर, अपने आप गिरिमेखल हाथी के कन्धे पर बैठ, (अपने) चक्र को ले, बोधिसत्त्व के पास पहुंच कर बोला—"सिद्धार्थ! इस आसन से उठ, यह (आसन) तेरे लिये नहीं, मेरे लिये है।" महासत्त्व ने उस के बचन को सुन कर कहा—"मार! तू ने न दस पारमितायें पूरी की, न उप-पारमितायें, न परमार्थ-पारमितायें ही, न तू ने पांच महात्याग ही किये, न ज्ञाति-हित न लोक-हित काम किये, न ज्ञान का आचरण किया। यह आसन तेरे लिये नहीं, मेरे ही लिये है।"

मार अपने क्रोध के वेग को न रोक सका; और उसने महापुरुष पर चक्र चलाया। महापुरुष ने (अपनी) दस पारमिताओं का स्मरण किया; और उन के ऊपर, वे आयुध फूलों का चन्दवा बन कर ठहर गये। यहां वही तेज़ चक्र था, जिसे यदि और दिनों, मार क्रुद्ध होकर फेंकता तो एक ठोस पाषण-स्तम्भ को बांस

कें समूह की तरह खंड २ कर देता । जब वह बोधिसत्त्व के लिये मालाओं का चन्दवा बन गया, बाकी मार-परिषद् ने अब आसन से भगाने के लिए बड़ी २ पत्थर की शिलायें फेंकी। वह पत्थर की शिलायें भी, दस पारमिताओं का स्मरण करते ही महापुरुष के पास आ कर, माला की मणिकायें बन कर, पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

चक्रवाल के मुख द्वार पर खड़े देवता-गण गर्दन पसार पसार सिर उठा उठा कर देख रहे थे। "भो ! सिद्धार्थ कुमार का सुन्दर स्वरूप नष्ट हो गया। अब वह क्या करेगा ?" तब महापुरुष ने कहा—पारमिताओं को पूरा करने वाले बोधिसत्वों के बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन (जो) आसन प्राप्त होता है, वह मेरे लिये ही है, और (सामने) खड़े मार से पूछा, "मार ! तेरे दान देने का कौन साक्षी है ?" मार ने मार-सेना की ओर हाथ पसार कर कहाः—"यह इतने जने साक्षी हैं।" उस समय "मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं" कह कर मार-परिषद् ने जो शब्द किया, वह पृथ्वी के फटने के शब्द के समान था। तब मार ने महापुरुष से पूछा—सिद्धार्थ ! तू ने दान दिया है, इस का कौन साक्षी है ?" महापुरुष ने कहा, "तेरे दान-देने के साक्षी तो जीवित-प्राणी (=सचेतन) हैं, लेकिन इस स्थान पर मेरे दान (दिए) का कोई जीवित साक्षी नहीं। दूसरे जन्मों में दिये दान (की बात) रहने दे वेस्सन्तर-जन्म के समय मेरे द्वारा सात सप्ताह दिये गये दान की यह अचेतन ठोस महापृथ्वी भी साक्षिणी है, (और फिर) चीवर के भीतर से दाहिने हाथ को निकाल, "वेस्सन्तर-जन्म के समय मेरे द्वारा सात सप्ताह तक दिये गए दान की तू साक्षिणी है वा नहीं ?" कह, महापृथ्वी की ओर हाथ लटकाया। महापृथ्वी ने "मैं तेरी तब की साक्षिणी हूं," (इस प्रकार) सौ-बाणी से, सहस्र बाणी से, लाख-बाणी से, मार-बल को तितर-बितर करते हुए महा-नाद किया।

तब महापुरुष ने 'सिद्धार्थ ! तूने महा दान दिया, उत्तम दान दिया है' कहा। वेस्सन्तर के दान पर विचार करते २ डेढ़ सौ योजन के शरीर वाले गिरिमेखल हाथी ने (दोनों) घुटने टेक दिए। मार-सेना दिशाओं विदिशाओं की ओर भाग निकली। एक मार्ग से दो जनों का जाना नहीं हुआ। वे शिर के आभरण तथा पहने वस्त्रों को छोड़, जिधर मुंह समाया, उधर ही भाग निकले।

तब देव-गण ने भागती हुई मार सेना को देख सोचा—'मार की पराजय हुई, सिद्धार्थ-कुमार विजयी हुए। (आओ हम चलकर) विजयी की पूजा करें।' फिर नागों ने नागों को, गरुड़ों ने गरुड़ों को, देवताओं ने देवताओं को, ब्रह्माओं ने ब्रह्माओं को (सन्देश) भेजा और हाथ में गन्ध माला ले, महापुरुष के पास, बोधि आसन के पास पहुंचे। इस प्रकार उन के वहां पहुंचने पर:—

उस समय प्रमुदित हो नाग-गण ने, "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में महर्षी की विजय उद्घोषित की।

उस समय प्रसन्न हो गरुड़ ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई), और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में महर्षी की विजय उद्घोषित की।

उस समय आनन्दित हो देव-गण ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में महर्षी की विजय उद्घोषित की।

उस समय आनन्दित हो ब्रह्माओं ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में स्थिरचित्त (बुद्ध) की विजय उद्घोषित की।

शेष दस हज़ार चक्रवालों के देवता, माला-गन्ध-विलेपन से पूजा कर, नाना प्रकार की स्तुतियां करने लगे।

(७) बुद्ध पद का लाभ

इस प्रकार महापुरुष ने सूर्य्य के रहते रहते मार-सेना को परास्त किया। चीवर के ऊपर, गिरते हुए, बोधिवृक्ष के अंकुर गिर रहे थे; जान पड़ता था, लाल मूंगों की (वर्षा से उनकी) पूजा हो रही है।

प्रथम याम में उन्हें पूर्व-जन्मों का ज्ञान हुआ; दूसरे याम में दिव्य-चक्षु विशुद्ध हुआ; और अन्तिम याम में उन्हों ने *प्रतीत्य-समुत्पाद का साक्षात्कार किया।

सो उन के बारह-पदों के प्रत्यय-स्वरूप (प्रतीत्य-समुत्पाद) को चक्र की दृष्टि से, सीधे (=अनुलोम) उलटे (=प्रतिलोम), विचार करते हुए, दस सहस्र लोक-धातु (=ब्रह्माण्ड), पानी की सतह तक, बारह बार कांपे।

---

*देखो, महा निदान सुत्त (दीर्घ निकाय)।

महापुरुष ने दस सहस्र लोक-धातुओं को उन्निनादित कर, दिन की लाली फटते समय बुद्धत्व (=सर्वज्ञता) का साक्षात्कार किया। उस समय, सारे दस सहस्र लोक-धातु सु-अलंकृत थे। पूर्व चक्रवाल के छोरों पर ध्वजायें फहरा रही थी। इन पताकाओं की प्रभायें पश्चिम चक्र-वाल के छोरों तक पहुंच रही थीं। इसी प्रकार पश्चिम चक्र-वाल के छोरों पर फहराती (ध्वजाओं की प्रभाओं से) पूर्व चक्रवाल के छोर (प्रभासित हो रहे थे)। उत्तर चक्र-वाल के छोरों पर फहराती उत्तेजित ध्वजायें दक्षिण चक्र-वाल के छोरों को प्रभासित कर रही थीं। दक्षिण-चक्र-वाल के छोरों पर उड़ाई (पताकाओं की प्रभा) उत्तर चक्रवाल के छोरों तक पहुंच रही थी। पृथ्वी तल पर उठाई गईं ध्वजा पताकायें, ब्रह्म लोक को छू रही थीं; और ब्रह्मलोक में उठाई पताकायें पृथ्वी तल पर पहुंच रही थीं। दस सहस्र चक्रवाल में फूलदार वृक्षों पर फूल खिल गए, फलदार वृक्ष फलों के भार से लद गये। (वृक्षों के) स्कन्ध में स्कन्ध-कमल खिल गये। शाखाओं में शाखा-कमल, लताओं में लता-कमल, आकाश में लटकने वाले कमल और शिला-तल को फोड़ कर ऊपर ऊपर सात २ होकर (खिलने वाले) दण्डक-पुष्प भी (खिल) उठे।

दस सहस्र लोक धातु पलट कर लाए हुए माला की मणियों के सदृश या सुप्रसारित पुष्प-शैय्या के सदृश हो गए थे। चक्रवालों के बीच के आठ सहस्र 'लोकान्तर' (जो) पहले सात सूर्यों के प्रकाश से भी प्रकाशित नहीं होते थे; (अब) चारों ओर प्रकाश से प्रकाशित (=एको भासा) हो रहे थे। चौरासी हज़ार योजन गहरा महा समुद्र मीठे जल वाला हो गया था। नदियों का बहना रुक गया। जन्मान्ध को रूप दिखाई देने लगा था। जन्म के बहरे शब्द सुनने लगे थे। जन्म के पंगु पांव से (चलने) लग गये थे। (बंदियों की) हथकड़ी, बेड़ी आदि बन्धन टूट कर गिर पड़े। इस प्रकार अनन्त प्रभा-शोभा से पूजित (हो) अनेक प्रकार की आश्चर्यकर घटनाएं घटित हो रही थीं।

बुद्ध ने बुद्धत्व-ज्ञान का साक्षात् कर, सभी बुद्धों द्वारा कहे गए उदान (प्रीति-वाक्य को कहाः—

"बार बार जन्म लेना दुःख है। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले तृष्णा—रूपी) गृह-कारक को पाने की खोज में भटकता रहा। लेकिन गृह-कारक! अब मैंने तुझे देख लिया। (अब) तू फिर गृह निर्माण न कर सकेगा।

तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं, गृह-शिखर बिखर गया। चित्त संस्कारहीन हो गया; तृष्णा नष्ट हो गई।"

यह तुषित देवलोक से आरम्भ करके यहाँ बोधिमण्ड में बुद्धत्व (=सर्वज्ञता) प्राप्ति तक की बात 'अविदूर निदान' कही जाती है।

ग. सन्ति के निदान

(१) बुद्ध होकर बोधि वृक्ष के आसपास

लेकिन 'सन्ति के निदान' (क्या है)? "भगवान् *श्रावस्ती में अनाथ पिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे," । "वैशाली"† में महाबन की कूटागार शाला में विहार करते थे"। इस प्रकार उन २ स्थानों पर विहार करते समय का वृत्तान्त उन २ स्थानों पर ही मिलता है। जो कुछ इस विषय में कहा गया है, उसे भी आरम्भ से इस प्रकार समझना चाहिए:—

उस उदान (=प्रीति वाक्य) को कह कर (वहां) बैठे भगवान् के मन में हुआ:—"मैं इस (बुद्ध) आसन के लिए लाखों असंख्य कल्प चौकड़ियाँ दौड़ता रहा; इसी आसन के लिए मैं ने इतने समय तक, अपने अलंकृत सीस को गर्दन से काट कर दिया; सुअञ्जित आंखों और हृदय-मांस को निकाल कर प्रदान करता रहा; जालिय कुमार सदृश पुत्र, कृष्णाजिना कुमारी सदृश पुत्री, माद्री देवी सदृश भार्य्या को दूसरों के दास बनने के लिए दिये। मेरा यह आसन, जय-आसन है, श्रेष्ठासन है। यहां (इस आसन) पर बैठे मेरे सङ्कल्प पूरे हुए हैं। अभी मैं यहां से नहीं उठूंगा" (यह सोच) दसों खरब समापत्तियों (=ध्यानों) में रत, सप्ताह भर तक वहीं बैठे रहे। इसी के बारे में कहा है:—"भगवान् सप्ताह-भर तक एक ही आसन से विमुक्ति-सुख का आनन्द लेते हुए बैठे रहे।"‡

---

* बलराम पुर से १० मील पर वर्तमान सहेट महेट (जि० गोण्डा, युक्त प्रान्त)।

† बसाढ (जि० मुजफ्फर पुर) के प्रायः २ मील उत्तर वर्तमान कोल्हुआ, जहां आज अशोक-स्तम्भ खड़ा है।

‡ विनयपिटक, महावग्ग।

तब कुछ देवताओं के मन में ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ, 'सिद्धार्थ कुमार को अभी भी (कुछ योग) करना बाकी है। इसी से वह आसन के मोह को नहीं छोड़ता है'। शास्ता ने देवताओं के संदेह को जान, उसे हटाने के लिए, आकाश में जाकर यमक-*प्रातिहार्य दिखाई। महाबोधि-मण्ड में की गई यह प्रातिहार्य, (देह) सम्बन्धियों के समागम के समय पर की गई, प्रातिहार्य, और पाटिकपुत्र (परिब्राजक) के समागम पर की गई प्रातिहार्य,—ये सब प्रातिहार्य, गण्डम्ब वृक्ष के नीचे की गई यमक-प्रातिहार्य जैसी ही हुई थीं। इस प्रकार इस प्रातिहार्य से देवताओं के संदेह को दूर कर, शास्ता ने (वज्र-) आसन से ज़रा थोड़ा पूर्व की ओर 'उत्तर-दिशा भाग' में खड़े हो सोचा—'इस स्थान पर मैं ने सर्वज्ञता-ज्ञान प्राप्त किया' फिर लक्षाधिक लाखों असंखेय्य कल्प चौकड़ियों तक पूरी की गई पारमिताओं की फल प्राप्ति के लिए (उस) स्थान को निर्निमेष दृष्टि से देखते सप्ताह बिता दिया। इसीलिए स्थान का नाम 'अनिमिस-चेतिय' (=अनिमेष चैत्य) हो गया।

तब (वज्र-) आसन और खड़े होने के स्थान के बीच की भूमि को चंक्रमण-भूमि बना, पूर्व से पश्चिम को (रतन=अरत्नि भर) चौड़े, रत्न-चंक्रमण पर में चंक्रमण करते हुए सप्ताह बिताया। उस स्थान का नाम 'रत्न-चंक्रमण चेतिय' पड़ा।

चौथे सप्ताह में, देवताओं ने बोधि से पश्चिमोत्तर दिशा में रत्न-घर बनाया। वहीं (शास्ता ने) आसन पर बैठ, अभिधर्म-पिटक को—विशेष कर से अनन्त क्रम वाले समन्त पट्ठान †को विचारते हुये सप्ताह बिताया। इस विषय में आभिधर्मिकों का कथन है:—"रत्नघर रत्नमय-गृह का नाम नहीं है; बल्कि (अभिधर्म के) सात प्रकरणों का संग्रह-स्थान ही रत्न-घर है।" चूंकि यहां दोनों ही अर्थ ठीक लग जाते हैं, इसलिए दोनों ही अर्थ ग्रहण करने चाहिए। उस के बाद उस स्थान का नाम 'रत्नघर चेतिय' पड़ा।

(२) अजपाल बर्गद के नीचे।

इस प्रकार बोधि-वृक्ष के ही समीप चार सप्ताह बिता कर, पांचवें सप्ताह (भगवान्) बोधि-वृक्ष से (चल कर) जहां अजपाल बर्गद (=न्यग्रोध) है, वहां चले

---

* दिव्य चमत्कार।

† अभिधर्म-पिटक का एक ग्रन्थ।

गये। वहाँ भी धर्म पर विचार करते तथा विमुक्ति-सुख का आनन्द लेते ही बैठे रहे। उस समय देवपुत्र मार ने इतने समय तक (शास्ता का) पीछा कर के, मौक़ा ढूंढते हुए भी, इनमें कोई दोष न देख, सोचा—'अब यह मेरे अधिकार से बाहिर हो गए।' और खिन्न हो, महामार्ग पर बैठे २ सोलह बातों का ख्याल कर, पृथ्वी पर सोलह रेखायें खैंचीं। "मैं ने इसकी तरह दान पारमिता पूरी नहीं की; इसीलिए मैं इस के जैसा नहीं हुआ" यह (सोच) एक रेखा खींची। वैसे ही "मैं ने इस की तरह शील-पारमिता, नैष्काम्य-पारमिता, प्रज्ञापारमिता, वीर्य्य–पारमिता, शान्ति–पारमिता, सत्य–पारमिता, अधिष्ठान–पारमिता, मैत्री पारमिता, उपेक्षा–पारमिता पूरी नहीं की; इसी लिए मैं इस जैसा नहीं हुआ" (सोच) दसवीं रेखा खींची। "मैं ने इसकी तरह (श्रद्धा इन्द्रिय आदि) इन्द्रियों की उन्नत अनुन्नत अवस्था सम्बन्धी असाधारण ज्ञान की प्राप्ति के आश्रय भूत दस पारमिताओं की पूर्ति नहीं की: इस लिए मैं इस जैसा नहीं हुआ" (सोच) ग्यारहवीं रेखा खैंची। वैसे ही 'मैं ने इसकी तरह असाधारण आशय-अनुशय ज्ञान, (तीनों अस्रव=चित्तमल) महा करुणा समापत्ति (=ध्यान) ज्ञान. यमक-प्रातिहार्य ज्ञान; अनावरण-ज्ञान तथा सर्वज्ञता ज्ञान की प्राप्ति के आश्रय दस पारमिताओं की पूर्ति नहीं की। इसी लिए मैं इस जैसा नहीं हुआ" (सोच) सोलहवीं रेखा खींची। इस प्रकार, इन २ कारणों से (देवपुत्र मार) महा मार्ग पर सोलह लकीरें खैंचते बैठा रहा।

उस समय तृष्णा, अरति तथा रगा (=राग) नामक मार की (तीनों) कन्याओं ने "हमारा पिता दिखाई नहीं दे रहा है, वह इस समय कहाँ है" (सोच) ढूंढते हुए उसे खिन्न-चित्त भूमि कुरेदते (=लिखते) देखा। उन्होंने पिता के समीप जा पूछाः—"तात! आप किस लिए दुःखी तथा खिन्न चित्त हैं?"

"अम्म! यह महा-श्रमण मेरे अधिकार से बाहिर हो गया। इतने समय तक देखते रहते भी इसके छिद्र नहीं देख सका। इसी से मैं दुखी तथा खिन्न-चित्त हूं" "यदि ऐसा है, तो सोच मत करो। हम इसे अपने वश में कर के ले आयेंगी।"

"अम्म! इसे कोई वश में नहीं कर सकता। यह पुरुष अचल श्रद्धा में प्रतिष्ठित है।"

"तात ! हम स्त्रियां हैं। हम उसे अभी राग आदि के पाश में बांध कर ले आयेंगी। आप चिन्ता न करें (यह) कह भगवान् के पास जा उन्होंने पूछा ! "श्रमण ! हमें अपने चरणों की सेवा करने दो।"

भगवान् ने न उन के कथन को सुना, न आंख खोल कर (उन की ओर) देखा। वह अनुपम, उपाधिक्षीण (=निर्वाण) में रत हो, विमुक्त-चित्त, विवेक (=एकान्त) सुख का अनुभव करते बैठे रहे। तब मारकन्याओं ने सोचा—"पुरुषों की रुचि भिन्न २ होती है। किसी को कन्यायें प्रिय लगती लगती हैं, किसी को नव तरुणियां और किसी को बीच की आयु मध्यवयस्कायें और किसी को प्रौढायें। (आओ) हम इसे भिन्न २ प्रकार से प्रलोभन दें।" तब उन्होंने सौ सौ रूप धारण किए। कुमारी बनीं, अप्रसूता हुईं, एक बार प्रसूता दो बार प्रसूता, मध्यवयस्का तथा प्रौढा स्त्रियें बन बन कर छ बार भगवान् के पास आकर पूछाः- "श्रमण ! हमें अपने चरणों की सेवा करने दो !" भगवान् ने उस (कथन) को भी मन में नहीं किया। वह उस अनुपम, उपाधिक्षीण (=निर्वाण) में रत, विमुक्त-चित्त ही रहे।

(इस विषय में) कोई कोई आचार्य्य कहते हैं:—"उन्हें बूढ़ी स्त्रियों के स्वरूप में देख, भगवान् ने अधिष्ठान किया: कि यह खण्डित-दन्त और श्वेत केशा हो जायें" किन्तु यह (कथन) ग्रहण करने योग्य नहीं है, 'क्योंकि बुद्ध इस प्रकार का अधिष्ठान नहीं करते। हां, भगवान् ने, "तुम जाओ। काहे यह सब प्रयत्न करती हो ? विरागी नहीं है उन लोगों के सन्मुख यह सब करना चाहिए। तथागत का राग नष्ट हो गया, द्वेष (=क्रोध) नष्ट हो गया; मोह नष्ट हो गया।" कह अपने चितशुद्धि के विषय में कहा:—

"जिसके जय को पराजय में बदला नहीं जा सकता, जिसके जीते (राग, द्वेश, मोह फिर) नहीं लौट सकते; उस बे-निशान (अपद=स्थान-रहित), अनन्तदर्शी बुद्ध को किस रास्ते पा सकोगे ? जाल रचने वाली जिसकी विषय रूपी तृष्णा कहीं भी ले लाने लायक नहीं रह गई; उस अपद, अनन्त दर्शी बुद्ध को किस रास्ते से पा सकोगे ? इन धर्म्म-पद के बुद्ध-वग्ग (१४) में आई दो गाथाओं को कह धर्मोपदेश किया। तब वे मार-कन्यायें हमारे पिता ने सत्य ही कहा था, "अर्हत् सुगत को राग (के बन्धन) में लाना आसान नहीं।" (सोच) पिता

के पास चली गईं। भगवान् भी सप्ताह बिता कर वहां से मुचलिन्द् वृक्ष के नीचे चले गये।

(३) मुचलिन्द् वृक्ष के नीचे

उस समय सप्ताह भर की बदली उत्पन्न हो गई। सर्दी आदि से बचने के लिये, नाग राज मुचलिन्द् ने फन तान सात गेंडुरी बनाईं। उसमें गन्ध-कुटी में बाधारहित विचरने की तरह, विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए, (भगवान् ने) सप्ताह बिताया फिर राजायतन (—वृक्ष) के पास पहुंच, वहां भी विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुये बैठे रहे। इस प्रकार यह सात सप्ताह पूरे हुए। इन सात-सप्ताहों में (भगवान्) ने न मुख-धोया, न शरीर-शुद्धि की, न भोजन ही किया। (सब समय) (सारे समय को) ध्यान-सुख, मार्ग-सुख और फल (—प्राप्ति के) सुख में ही व्यतीत किया।

तब सात सप्ताहों के बीतने पर, उंचासवें दिन शास्ता को मुंह धोने की इच्छा हुई। देवेन्द्र शक्र ने हर्रे लाकर दी। शास्ता ने उसे खाया। उस से उन्हें शौच (=शरीर शुद्धि) हुआ। तब शक्र ने ही नागलता की दातुन (दन्त-काष्ठ) और मुख धोने के लिये पानी ला दिया। बुद्ध उस दातुन को कर, अनोतत्त-दह (=सरोवर) पर पानी से मुंह धो, फिर राजायतन के नीचे बैठे।

(४) प्रथम धर्म प्रचार। बुद्ध के प्रथम गृहस्थशिष्य

उस समय तपस्सु और भल्लिक नामक दो व्यापारी, पांच सौ गाड़ियों के साथ उत्कल* देश से पश्चिम-देश (=मध्य देश) को जा रहे थे। उनके जाति-सम्बन्धी, देवताओं ने गाड़ियां रोक बुद्ध के लिये आहार तय्यार करने के लिये उन्हें उत्साहित किया। उन्हों ने जाकर, मट्ठा और लड्डू (=मधुपिण्ड) ले, शास्ता के पास जा, खड़े हो कर प्रार्थना की, "भन्ते! भगवान्। कृपा कर इस आहार को ग्रहण करें"।

(सुजाता के) खीर के ग्रहण करने के दिन ही भगवान् के पात्र अन्तर्धान हो गए थे। इसलिये भगवान् ने सोचा:—'तथागत हाथ में तो आहार ग्रहण नहीं करते; मैं किस (बरतन) में आहार ग्रहण करूं?" तब उन के विचार को जान कर चारों दिशाओं के चारों महाराजा इन्द्रनील मणि के बने पात्र को ले आये।

---

* उड़ीसा।

भगवान् ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। फिर मूंगे वर्ण के पाषाण के चार पत्थर ले आये। चारों देवपुत्रों पर अनुकम्पा करने के लिए भगवान् ने चारों पात्रों को ले, एक दूसरे के ऊपर रख अधिष्ठान किया कि वह एक हो जायें। चारों पात्र मुख द्वार पर प्रगट (चार) रेखाओं वाले हो, बिचले (पात्र) के परिमाण के एक पात्र बन गये। भगवान् ने उस मूल्यवान् पत्थर के पात्र में आहार ग्रहण किया। भोजन कर के (दान) अनुमोदन किया। दोनों भाई बुद्ध तथा धर्म की शरण जाने से दो-वचन के उपासक* हुए। तब उन में से एक के 'भन्ते! (पूजा) के लिए कुछ दें' कहने पर, भगवान् ने सिर पर दाहने हाथ को फेर कर (अपने कुछ) बालों (=केश) को दिया। उन्हों ने अपने नगर में पहुंच, उस केश को भीतर रख, (ऊपर से) चैत्य बनवाया।

सम्यक् सम्बुद्ध भी वहां से उठ, अजपाल न्यग्रोध के पास जा, वहां न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे बैठे। तब वहां बैठते ही उनके मन में अपने अनुभूत धर्म की गम्भीरता का विचार उत्पन्न हुआ (सब) बुद्धों के अभ्यस्त "इस धर्म का मैं ने अनुभव किया है..." (इस प्रकार) दूसरों को धर्मोपदेश देने की अनिच्छा का विचार (=वितर्क) उत्पन्न हुआ। तब सहापति ब्रह्मा ने "अरे! लोक नाश हो जायगा, अरे! लोक विनाश हो जायगा" कहते, दस सहस्र चक्रवालों से शक्र-सुयाम—सन्तुषित-सुनिर्मित—वशवर्ती-महाब्रह्माओं को ले कर, शास्ता के पास जा, "भन्ते! भगवान्! धर्मोपदेश करें। सुगत! धर्मोपदेश करें" इत्यादि क्रम से धर्मोपदेश करने की प्रार्थना की।

(२) बनारस (सारनाथ)

शास्ता उसे प्रतिज्ञा दे, सोचने लगे, "मैं पहले किसे धर्मोपदेश करूं?" "इस धर्म को आलार-कालाम शीघ्र ही जान लेगा" सोच कर देखा, तो पता लगा कि उसे मरे एक सप्ताह हो गया। तब उद्दक के बारे में ख्याल आया। मालूम हुआ, वह भी (उसी) रात को मर गया। (तब) सोचा—"पञ्च वर्गीय भिक्षुओं ने मेरा बहुत उपकार किया है"। पञ्चवर्गीय भिक्षुओं के बारे में प्रश्न हुआ, 'वह इस समय कहां हैं?' सोचते हुये, बाराणसी (बनारस) के मृगदाय † में (बिहरते

* सङ्घ के न होने से वह बुद्ध और धर्म दो की ही शरण जा सकते थे।

† वर्तमान सारनाथ, बनारस।

हैं) जान; वहां जा कर धर्मचक्र प्रवर्तित करने का विचार किया।

कुछ दिन तक बोधिमण्ड के आस पास ही भिक्षाचार कर विहार करते रहे। आषाढ़ पूर्णिमा के दिन बनारस पहुंचने के विचार से, चतुर्दशी को प्रातःकाल, तड़के ही (=समय) पात्र चीवर ले, अठारह योजन के मार्ग पर चल पड़े। रास्ते में उपक नामक आजीवक * को देख कर, उसे अपने 'बुद्ध' होने की बात कह, उसी दिन शाम के समय ऋषिपतन पहुंचे।

पञ्चवर्गीय-भिक्षुओं ने तथागत को दूर से आते देख निश्चय किया:—"आयुष्मानो! यह श्रमण गौतम वस्तुओं के अधिक लाभ के लिये मार्ग-भ्रष्ट हो परिपूर्ण शरीर, मोटी इन्द्रियों वाला, सुवर्ण-वर्ण हो कर आ रहा है। हम उसे अभिवादन आदि न करेंगे। लेकिन महाकुल-प्रसून होने से यह आसन का अधिकारी है; अतः हम इसके लिये खाली आसन बिछा देंगे।"

भगवान् ने देवों सहित (सारे) लोक के चित्त की बात जान सकने वाले ज्ञान से सोच कर उन (पंच वर्गीयों) के विचार को जान लिया। तब उन्हों ने समान रूप से सब देव मनुष्यों तक पहुंचने वाले मैत्री-पूर्णचित्त को, विशेष रूप से पंच वर्गीयों की ओर फेरा। भगवान् के मैत्री चित्त से स्पृष्ट हो, तथागत के समीप आते आते वह अपने निश्चय पर दृढ़ न रह सके और उन्हों ने अभिवादन, प्रत्युत्थान आदि सब कृत्यों को किया। लेकिन 'सम्बुद्धत्व प्राप्ति' का उन्हें ज्ञान न था; इसलिये वह (तथागत को) केवल नाम ले कर अथवा 'आवुस' (=आयुष्मान्) कह कर सम्बोधन करते थे।

(३) बुद्ध के प्रथम उपदेश और प्रथम भिक्षुशिष्य

तब भगवान् ने उन्हें "भिक्षुओ! तथागत के नाम से अथवा 'आवुस' कह कर मत पुकारो। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् हैं, सम्यक् सम्बुद्ध हैं" कह, अपने बुद्ध होने को प्रगट किया। बिछे श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठ, उत्तराषाढ़ नक्षत्र (आषाढ़ी पूर्णिमा) के दिन अठारह करोड़ ब्रह्माओं से घिरे हुए पञ्चवर्गीय स्थविरों को सम्बोधित कर धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र † का उपदेश किया। उन में से स्थविर आज्ञा-कौण्डिन्य उपदेशानुसार ज्ञान का प्रसार करते हुए, सूक्त की समाप्ति पर अठारह करोड़ ब्रह्माओं सहित स्रोतआपत्ति फल में स्थित हुए। तब बुद्ध वर्षा-काल के

* उस समय के नग्न साधुओं का एक सम्प्रदाय।

† संयुत्त नि० ५५: २: १ विनय महावग्ग (महाखंधक)।

लिये वहीं ठहर गए। अगले दिन वप्प स्थविर को उपदेश करते विहार में ही बैठे रहे। शेष चार जने भिक्षा मांगने गये। वप्प स्थविर पूर्वाह्न में ही स्रोतआपत्ति फल को प्राप्त हुए। इसी क्रम से अगले दिन भद्दिय स्थविर, फिर अगले दिन महानाम स्थविर, फिर अगले दिन अश्वजित महा स्थविर—सब को स्रोतआपत्ति फल में स्थित कर, पक्ष के पांचवें दिन, पांचों जनों को एकत्र कर **अनन्त-लक्षण सूत्र** का उपदेश किया। देशना की समाप्ति पर पांचों स्थविर अर्हत-फल में स्थित हुये।

तब शास्ता ने यश कुल-पुत्र की योग्यता (=उपनिस्सय) देख, उसी रात विरक्त हो, घर छोड़ कर निकले (यश) को, "यश! आ।" कह बुलाया। उसी रात को उसे स्रोतआपत्ति-फल, (और) अगले दिन अर्हत-फल में प्रतिष्ठित कर, उस के और भी चौवन (५४) मित्रों को "भिक्षुओ! आओ"—वचन द्वारा प्रव्रज्या दे कर 'अर्हत' प्राप्त कराया।

(४) उरुवेला की ओर

इस प्रकार लोक में इकसठ अर्हत हो गए। वर्षा-वास की समाप्ति पर शास्ता ने 'प्रवारण'* कर, "भिक्षुओ! चारिका करो..."† (कह) भिक्षुओं को साठ दिशाओं में भेज, स्वयं उरुवेल को जाते हुये, मार्ग में कप्पासिय वन-खंड में तीस भद्रवर्गीय कुमारों को दीक्षित (=विनीत) किया। उन (कुमारों) में जो सब से पिछला था, वह भी सर्वश्रेष्ठ **स्रोतापन्न** हो, **अनागामी** हुआ। उन सब को भी "भिक्षुओ! आओ।" वचन से ही प्रव्रजित कर, (भिन्न २) दिशाओं में भेज, स्वयं उरुवेल पहुंच (वहां) तीन सहस्र पांच सौ **प्रातिहार्य** (=चमत्कार) दिखा, सहस्रों जटिलों सहित उरुवेल काश्यप आदि तीन जटिल भाइयों को विनीत कर 'भिक्षुओ! आओ'—वचन से ही (उन्हें भी) प्रव्रजित कर ‡**गया-शीर्ष** पर बैठ, **आदित्य-पर्य्याय** (**सूक्त) के उपदेश से (उन्हें) अर्हत्-भाव में प्रतिष्ठित कराया। फिर उन सहस्र अर्हतों के साथ (राजा) बिम्बिसार को दी हुई प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये **राजगृह नगर***** के समीप स्थित लट्ठि-वन-उद्यान में पहुंचे।

---

* वर्षा-समाप्ति के लिये शास्त्रीय शब्द।

† महावग्ग (महाकवंधक)।

‡ गया सीस, गया का ब्रह्मयोनि पर्वत है। **संयुक्त नि० ४३:३:६।

*** मगध की राजधानी।

(५) राजा बिम्बिसार का बौद्ध होना

राजा अपने माली के मुंह से बुद्ध के आने की बात सुन, बारह लाख (=नियुत) ब्राह्मण-गृहपतियों के साथ, बुद्ध के पास पहुंचे। चक्र से अंकित तल वाले, सुनहले वस्त्र के चंदवे के समान प्रभा-पुंज प्रसारित करने वाले, चरणों में सिर से प्रणाम कर, परिषद् सहित एक ओर बैठ गया। तब उन ब्राह्मण-गृहपतियों के मन में यह (शंका) हुई—'क्या ऊरुवेल-काश्यप महाश्रमण (गौतम) का शिष्य है अथवा महाश्रमण उरुवेल काश्यप का (शिष्य)? भगवान् ने अपने चित्त से उन के चित्त के वितर्क को जान (उरुवेल काश्यप) स्थविर को 'गाथा' में कहा:—

उरुवेल-वासी! तपः कृशों के उपदेशक! क्या देख कर (तुमने) आग छोड़ी? काश्यप! तुम से यह बात पूछता हूं, तुम्हारा अग्नि-होत्र कैसे छूटा?"

स्थविर ने भगवान् का अभिप्राय समझ कर कहा:—"रूप; शब्द, रस; काम-भोग, तथा स्त्रियां ये सब यज्ञ से (मिलती हैं), ऐसा कहते हैं। लेकिन (उक्त) उपाधियां मल हैं, यह जान कर, विरक्त चित्त हो, मैं न यज्ञ करता हूं, न हवन करता हूं"।

इस गाथा को कह अपने शिष्य भाव के प्रकाशनार्थ, तथागत के चरणों में शिर रख, "भन्ते। भगवान्! आप मेरे गुरु (=शास्ता) हैं, मैं आप का शिष्य हूं" कह, आकाश में एक-ताल, दो-ताल, तीन-ताल......सात-ताल ऊंचे तक, सात बार चढ़ उतर कर, तथागत को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। इस प्रकार के चमत्कार को देख, लोग कहने लगे "बुद्ध ओह! महाप्रतापी हैं; जिन तथागत ने इस प्रकार के दृढ़मत, अपने को अर्हत् समझने वाले उरुवेल काश्यप के मत रूपी जाल तक को काट कर, उसे दीक्षित किया! भगवान् ने "न केवल अभी मैं ने उरुवेल-काश्यप का दमन किया है, अतीत-काल में भी किया है।" कह, तथा इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिये **महानारद काश्यप जातक** कह, चार आर्य्य सत्यों का प्रकाश किया। ग्यारह लाख (ब्राह्मण-गृहपतियों) सहित मगध-नरेश (बिम्बिसार) स्रोतआपत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुये। एक लाख उपासक हुये।

बुद्ध के पास बैठे ही बैठे राजा (बालक-पन में अपने मन में उठी) **पांच इच्छाओं** * को कह, त्रिशरण ग्रहण कर, अगले दिन के लिये निमन्त्रण दे,

* 'क्या ही अच्छा होता, यदि मैं राज्याभिषिक्त होता' आदि पांच इच्छायें (महावग्ग)

आसन से उठ, भगवान् की प्रदक्षिणा कर चला गया। अगले दिन, जिन्होंने तथागत को देखा था, वे भी, और जिन्हों ने नहीं देखा था, वे भी—सभी अठारह करोड़ राजगृह-निवासी, तथागत को देखने की इच्छा से प्रातःकाल ही राजगृह से यष्टि-वन * को गये। तीन गव्यूति मार्ग (भी) पर्य्याप्त नहीं था। सारा यष्टि-वन उद्यान हमेशा भरा रहता था। जन समूह भगवान् के सुन्दर स्वरूप को देखतेतृप्त नहीं होते थे। यह रूप का प्रकरण (=वर्ण-भूमि) है। ऐसे स्थान पर लक्षण-अनुव्यञ्जनादि के विस्तार के साथ तथागत के शरीर के सारे सौन्दर्य्य का वर्णन करना चाहिये।

इस प्रकार बुद्ध (दस बल) के सुन्दर शरीर के दर्शन के लिये आने वाले जन-समूह से उद्यान के और मार्ग के निरन्तर भरे रहने से एक भिक्षु को भी बाहिर निकलने का अवकाश नहीं रहा। उस दिन भगवान् को निराहार रह जाने की सम्भावना थी। ऐसा न होने देने के लिये, शक्र का आसन गर्म हुआ। देवेन्द्र ने विचार कर के, (आसन गर्म होने के) कारण को जाना; और ब्राह्मण तरुण (=माणवक) का रूप धारण कर, बुद्ध-धर्म-संघ की स्तुति करते हुए, बुद्ध (दस-बल धारी) के सामने उतर देव-बल से अपने लिए जगह कर गाथा बना कहाः—

अनासक्त (=विप्रमुक्त) संयमयुक्त पुराने जटाधारियों (=जटिलों) के साथ युक्त (=सिंगी-निकशा) तप्त सुवर्ण (सुवर्ण सदृश) संयमी (=दमित) भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं। मुक्त, विप्रमुक्त, पुराने जटिलों के साथ तप्त सुवर्ण से रूपवान् मुक्त भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

उत्तीर्ण (=पार-प्राप्त) विप्रमुक्त, पुराने जटिलों से युक्त, तप्त सुवर्ण जैसे रूपवान् उत्तीर्ण भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

दस-वास (वाले); दस-बल (-धारी), दस धर्मों के ज्ञाता, दस गुणों से युक्त, सहस्र अर्हतों के साथ भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।"

उक्त गाथाओं से बुद्ध का गुणानुवर्णन करते हुए (देवेन्द्र) आगे आगे चल रहे थे। लोगों ने ब्राह्मण तरुण (माणवक) के रूप की सुन्दरता देख 'यह माणवक अत्यन्त सुन्दर है, हम ने इसे पहले नहीं देखा' सोच, पूछाः—

* राजगृह नगर के समीपवर्ती जाठियांव (लाठ्ठिवन उद्यान)।

"यह माणवक कहां से (आया) है ? किस का ?" इसे सुन माणवक ने यह गाथा कही:—

"लोक में जो धीर हैं, सर्वत्र संयुक्त हैं, अर्हत् हैं, सुगत हैं; अद्वितीय बुद्ध हैं—मैं उन का सेवक (परिचारक) हूं ।"

एक सहस्र भिक्षुओं के साथ बुद्ध (=शास्ता) ने, शक्र द्वारा बनाये गये मार्ग से राजगृह में प्रवेश किया। राजा ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन (=महा-दान)दे (प्रार्थना की):—"भन्ते ! मैं बुद्ध-धर्म—संघ (=त्रिरत्न) के बिना न रह सकूंगा। समय, बे समय, भगवान् के पास आऊंगा। यष्ठि (=लट्ठि)-वन उद्यान बहुत दूर है। लेकिन हमारा वेणुवन उद्यान अधिक दूर नहीं है। वहां आना जाना सहज है। बुद्ध के योग्य निवासस्थान है। भगवान् ! आप उसे स्वीकार करें।" (कह) सोने की झारी में, पुष्प गन्ध से सुवासित, मणि के रंग जल को ले कर वेणुवन उद्यान का दान करते हुये, बुद्ध (=दशबल) के हाथ में जल डाला। उसी आराम की स्वीकृति से बुद्ध धर्म (=शासन) ने (लोक में) जड़ पकड़ी—(इसी लिये) पृथ्वी कांपी। जम्बुद्वीप में वेणुवन को छोड़ और किसी निवास (=शय-नासन) के ग्रहण करने के समय पृथ्वी नहीं कांपी। सिंहल (ताम्रपर्णी) में भ महाविहार * के अतिरिक्त, और किसी शयनासन के ग्रहण करते वक्त पृथ्वी नहीं कांपी। (भगवान्) वेणुवन को ग्रहण कर, राजा (के दान) का अनुमोदन कर, आसन से उठ, भिक्षुसङ्घ सहित वेणुवन को चले गये।

(६) सारि-पुत्र और मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या

उस समय अमृत पदार्थ की खोज में लगे हुये सारिपुत्र मौद्गल्यायन—दो परिव्राजक राजगृह के समीप रहते थे। उनमें से (एक) सारिपुत्र ने अश्वजित् स्थविर को भिक्षा-चार करते देखा। वह प्रसन्न-चित्त हो, उन का सत्सङ्ग कर उन से "जो हेतुओं से उत्पन्न धर्म हैं ....(=ये धम्मा हेतुप्पभवा... †)" गाथा को सुन स्रोतआपत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने अपने मित्र मौद्गल्यायन परिव्राजक को भी वह गाथा कही। वह भी स्रोतआपत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुए। वह दोनों ही (अपने पूर्व आचार्य्य) सञ्जय से भेंट कर, अपनी मंडली के साथ शास्ता के

---

* सिंहल-द्वीप में महास्थविर महेन्द्र को प्रदत्त प्रथम विहार।

† ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह ! तेसं च यो निरोधो, एवं वादी महासमणो।

पास जा प्रव्रजित हुए। उन में से महामौद्गल्यायन (एक) सप्ताह में ही अर्हत्व को प्राप्त हुए। सारिपुत्र पन्द्रह दिन में। शास्ता ने उन दोनों को प्रधान शिष्य (=अग्र-श्रावक) बनाया। सारिपुत्र स्थविर ने जिस दिन अर्हत् पद प्राप्त किया, उसी दिन (बुद्ध) शिष्यों का सम्मेलन किया गया।

(७) शुद्धोदन का संदेश

तथागत के उसी वेणुवन उद्यान में विहार करते समय, शुद्धोदन महाराज ने सुना—"मेरे पुत्र ने छः वर्ष तक दुष्कर तपस्या कर, बुद्ध के उत्तम पद को प्राप्त किया है। वह धर्म-उपदेश का प्रारम्भ (=धर्मचक्रप्रवर्तन) कर, राजगृह के समीप वेणुवन में विहार करता है। फिर एक मंत्री (=अमात्य) को बुला कर कहा:—"अरे! आओ, तुम एक हजार आदमियों को साथ ले, राजगृह जा कर मेरे वचन से, मेरे पुत्र को कहो—'आप के पिता महाराज शुद्धोदन (आप का) दर्शन करना चाहते हैं,' कह और मेरे पुत्र को (बुलाकर) ले कर आओ।"

"अच्छा देव!" कह उसने राजा के वचन को शिरोधार्य किया। फिर वह एक हज़ार आदमियों को साथ ले, शीघ्र ही साठ योजन रास्ते को पार कर (राजगृह) पहुंचा। बुद्ध दश-बल (उस समय) (भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका) चार प्रकार की परिषद् के बीच बैठ, धर्म उपदेश कर रहे थे। उसी समय वह विहार में प्रविष्ट हुआ। उस ने 'राजा का भेजा सन्देशा अभी पड़ा रहे' सोच परिषद् के अन्त में खड़े खड़े शास्ता का धर्म उपदेश सुना; और खड़े ही खड़े हज़ार आदमियों सहित अर्हत् पद प्राप्त कर उस ने प्रव्रज्या मांगी। भगवान् ने 'भिक्षुओ! आओ' कह हाथ पसारा। उसी समय वे सब योगबल से पात्र-चीवर-धारी हो गये। सौ वर्ष के स्थविर (=बुद्धभिक्षु) जैसे हो गए।

'अर्हत् पद-प्राप्त होने पर आर्य-लोग मध्यस्थ भाव को प्राप्त हो जाते हैं,' इस लिए उस ने राजा के भेजे सन्देसे को नहीं कहा। राजा ने 'न गया हुआ (अमात्य) ही लौटता है, न कोई समाचार ही सुनाई देता है' सोच; 'अरे! आ, तू जा' कह, उसी प्रकार से दूसरा अमात्य भेजा। वह भी जा कर, पूर्व प्रकार से परिषद् सहित अर्हत्-पद को प्राप्त हो चुप रह गया। राजा ने इसी प्रकार हज़ार २ मनुष्यों के साथ नौ अमात्य भेजे। सब अपना २ (आत्मोन्नति का) काम समाप्त कर, चुप्पी साध, वहीं विहरने लगे। कोई लौट कर समाचार भी कहने

वाला न मिलने से, राजा सोचने लगा—"इतने आदमियों ने मेरे प्रति स्नेह का भाव रखते हुए भी कोई समाचार भी नहीं दिया, तो अब कौन मेरे वचन को करेगा ?" (इस प्रकार सोचते हुये) सारी राजकीय परिषद् पर विचार करते हुए, उस ने काल उदायी को देखा। वह राजा का सर्वार्थसाधक, (प्राइवेट सेक्रेटरी) आन्तरिक, अतिविश्वासी अमात्य था। वह बोधिसत्त्व के साथ एक ही दिन पैदा हुआ था (और) साथ का धूली-खेला मित्र था। राजा ने उसे बुलाया "तात ! काल-उदायी ! मैं अपने पुत्र को देखना चाहता हूं, नौ हज़ार आदमियों को भेजा। एक आदमी भी आ कर समाचार (=शासन) भी कहने वाला नहीं है। शरीर का कोई ठिकाना नहीं। मैं जीते जी पुत्र को देख लेना चाहता हूं। क्या मेरे पुत्र को मुझे दिखा सकोगे ?"

"देव ! दिखा सकूंगा, यदि साधु बनने (=प्रव्रज्या लेने) की आज्ञा मिले।"

"तात ! तू प्रव्रजित (हो) या अप्रव्रजित, मेरे पुत्र को लाकर दिखा।"

"देव ! अच्छा" (कह) वह राजा का संदेश (=शासन) ले, राजगृह गया और बुद्ध (=शास्ता) के धर्म उपदेश के समय सभा (परिषद्) के अन्त में खड़ा हो, धर्म सुन, साथियों (=परिवार) सहित अर्हत्फल को प्राप्त हो "भिक्षु ! आओ" के वचन से साधु (=प्रव्रजित) हुआ।

भगवान् ने (=शास्ता) बुद्ध हो कर पहिला वर्षावास ऋषिपतन में किया। वर्षावास समाप्ति पर प्रवारणा (=पारणा) कर, उरूवेला में जा, वहां तीन मास रह, तीनों जटाधारी (=जटिल) भाइयों को रास्ते पर ला, एक हजार भिक्षुओं के साथ, पौष मास की पूर्णिमा को राजगृह जा, (वहां) दो मास रहे। इतने में बनारस से चले पांच मास बीत गये। सारा हेमन्त-ऋतु समाप्त हो गया। उदायी स्थविर, आने के दिन से सात-आठ दिन बिता, फाल्गुण की पूर्णिमासी को सोचने लगे—हेमन्त बीत गया। बसन्त आ गया। मनुष्यों ने खेत (सस्य आदि) काट कर, सामने के स्थानों पर रास्ता छोड़ दिया है। पृथ्वी हरित तृण से आच्छादित है। बन-खण्ड फूलों से लदे हैं। रास्ते जाने लायक हो गये हैं। यह बुद्ध (=दश-बल) के लिए अपने सम्बन्धियों (=जाति) को मिलने (=संग्रह करने) का (यह ठीक) समय है। (यह सोच) भगवान् के पास जा कर बोले—

"भदन्त इस समय वृक्ष पत्ते छोड़ फलने के लिये (नये पत्तों से) अंगार-वाले (जैसे) हो गये हैं। उन की चमक अग्नि-शिखा सी है। महावीर! यह शाक्यों (=भगीरथों भृग्वंगिरसों) (के संग्रह करने) का समय है।

न बहुत शीत है, न बहुत उष्ण है, न भोजन की बहुत कठिनाई है। भूमि हरियाली से हरित है। महामुनि! यह (चलने का) समय है," (इत्यादि) साठ गाथाओं द्वारा बुद्ध (=देश-बल) से (अपने) कुल के नगर को जाने के लिये यात्रा की स्तुति की। भगवान् (=शास्ता) ने पूछाः—"उदायी! क्या है, जो (तुम) मधुर स्वर से यात्रा की स्तुति कर रहे हो?"

"भन्ते! आप के पिता महाराज शुद्धोदन (आप का) दर्शन करना चाहते हैं। (आप) जातिवालों का संग्रह करें।"

"उदायी! अच्छा? मैं जाति वालों का संग्रह करूंगा; भिक्षु संघ को कहो कि यात्रा की तैय्यारी (=व्रत) करें।"

"अच्छा भन्ते!" (कह) स्थविर ने (भिक्षु-संघ को) कहा।

(८) बुद्ध का कपिलवस्तु गमन

भगवान् दस हज़ार अंग मगध वासी कुल-पुत्रों तथा दस हज़ार कपिलवस्तु वासी कुल-पुत्रों; सब बीस हज़ार अर्हत् भिक्षुओं के साथ राजगृह से निकल कर, प्रति दिन योजन भर चलते थे। राजगृह से साठ योजन (दूर) कपिलवस्तु दो मास में पहुंचने की इच्छा से धीमी चारिका से चलते थे। स्थविर भी भगवान् के चल पड़ने की बात को राजा से कहने की इच्छा से आकाश मार्ग से जा राजा के निवास स्थान पर प्रकट हुये। राजा ने स्थविर को देख प्रसन्न-चित्त हो, (उन्हें) बहुमूल्य आसन पर बिठा, अपने लिए तैय्यार किए गये, नाना प्रकार के स्वादु भोजन से पात्र भर कर दिया। स्थविर ने उठ कर चलने का सा ढंग किया। "बैठ कर, भोजन करें" (राजा ने कहा) "महाराज! मैं भगवान् (=शास्ता) के पास जा कर भोजन करूंगा" (स्थविर ने उत्तर दिया)।

"शास्ता कहां है?"

"महाराज! बीस हज़ार भिक्षुओं सहित वह तुम्हारे देखने के लिए चल पड़े हैं।"

राजा ने प्रसन्न-चित्त हो कहाः—"आप इस भोजन को ग्रहण कर और

जब तक मेरा पुत्र यहां नहीं पहुंचता, तब तक उसके लिये यहीं से भिक्षा (=पिण्ड-पात) ले जायें।" स्थविर ने स्वीकार किया। राजा ने स्थविर को (भोजन) परोस कर दिया, और (भिक्षा-पात्र) में सुगन्धित चूर्ण लगा, उसे उत्तम भोजन से भर 'इसे तथागत को दें' कह, पात्र स्थविर के हाथ में दिया। स्थविर ने सब के सामने ही, पात्र को आकाश में फेंक दिया; और अपने आप भी आकाश में उड़ भिक्षा (=पिण्डपात) लाकर भगवान् (=शास्ता) के हाथ में दिया। भगवान् (=शास्ता) ने वह आहार ग्रहण किया। इस प्रकार स्थविर प्रति दिन (आहार) लाते थे।

यात्रा में भगवान् (शास्ता) ने राजा की ही भिक्षा (=पिण्डपात) ग्रहण की। स्थविर ने भी प्रतिदिन भोजन करने के बाद "भगवान्! आज इतना चले आए, भगवान्! आज इतना चले आए" (कह) भगवान् के दर्शन से पहिले ही बुद्ध के गुणों की कथा से सारे राज-परिवार में बुद्ध (=शास्ता) के प्रति श्रद्धा पैदा कर दी। इसी लिये भगवान् ने 'भिक्षुओ! मेरे गृहस्थों का मन-प्रसन्न करने वाले (=कुलप्रसादक) शिष्य (=श्रावक) भिक्षुओं में काल उदायी सर्व श्रेष्ठ है" (कह) उसे ऊंचा (=अग्र) स्थान दिया है।

शाक्य भी भगवान् के पहुंचने पर, 'अपनी जाति के (सर्व) श्रेष्ठ (पुरुष), के दर्शन की इच्छा से एकत्रित हुए; और (अपनी सभा में) भगवान् के ठहराने के लिये स्थान पर विचार किया। उन्हों ने न्यग्रोध (नामक) शाक्य के आराम को रमणीय जान, वहां सब प्रकार से सफाई कराई। अगवानी के लिये पहिले गन्ध, पुष्प हाथ में ले, सब अलङ्कारों से अलंकृत, नगर के छोटे २ लड़कों तथा लड़कियों को भेज फिर राजकुमारों और राजकुमारियों को भेजा। उन के बाद स्वयं गन्ध, पुष्प, चूर्ण आदि से भगवान् की पूजा करते, (उन्हें) न्यग्रोधाराम लिवा ले गये। वहां बीस हज़ार अर्हतों के साथ (जा कर) भगवान्, बिछे श्रेष्ठ बुद्ध के आसन पर बैठे। शाक्य अभिमानी स्वभाव के थे। उन्हों ने 'सिद्धार्थकुमार हम से छोटा है, हमारा कनिष्ठ है, हमारा भानजा है, हमारा पुत्र है, हमारी जाति का है, सोच छोटे २ राज कुमारों को कहा:—"तुम प्रणाम करो। हम तुम्हारे पीछे बैठेंगे।" उन के इस प्रकार (बिना प्रणाम किये ही) बैठे रहने पर, भगवान् ने उन के मन की बात जान विचारा—जाति-सम्बन्धी मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं।

अच्छा तो मैं उन से प्रणाम कराऊंगा" और अभिज्ञा के सहारे ध्यानावस्थित हो, आकाश में चढ़, उन के सिर पर पैर की धूली बखेरते हुये से, गण्डम्ब वृक्ष के नीचे किये गए यमक नामक दिव्यनीति प्रदर्शन (यमक-प्रातिहार्य) जैसी प्रातिहार्य की।

राजा ने इस आश्चर्य को देख कर कहाः—'भगवान् ! मैं उत्पन्न होने के दिन, तुम्हें काल देवल की बन्दना के लिये ले गया था: उस समय (तुम्हारे) चरणों को उलट कर ब्राह्मण के सिर में लगे देख, मैं ने तुम्हारी बन्दना की। वह मेरी प्रथम बन्दना (थी)। फिर खेत बोने के उत्सव के दिन, जामुन की छाया में सुन्दर शैय्या पर बैठे रहने के समय, दिन ढल जाने पर भी जामुन के वृक्ष की छाया का बना रहना देख कर भी (मैं ने तुम्हारे) चरणों में वन्दना की थी। वह मेरी दूसरी वन्दना (थी)। अब पहले कभी न देखी गई यह प्रातिहार्य, देख कर भी, मैं तुम्हारे चरणों की वन्दना करता हूं। यह मेरी तीसरी वन्दना है। राजा के वन्दना करने पर, एक शाक्य भी ऐसा नहीं बचा, जो बिना बन्दना किये रहा हो। सभी ने वन्दना की। इस प्रकार भगवान् जाति-सम्बन्धियों से प्रणाम करवा, आकाश से उतर बिछे आसन पर बैठे। भगवान् के बैठने पर जाति-सम्बन्धियों का समूह अत्यन्त प्रसन्न (=शिखर-प्राप्त) हो सभी एकाग्र-चित्त हो बैठे।

तब महामेघ ने बूंदा-बांदी (=पुष्कर-वर्षा) आरम्भ की। ताम्बे के रंग का पानी, नीचे, शब्द करता हुआ बहने लगा। भीगने की इच्छा वाले भीगते थे, जो नहीं भीगना चाहते थे, उन के शरीर पर बून्द मात्र भी न गिरती थी। यह देख सभी चकित हुये, और कहने लगेः—अहो ! आश्चर्य ! अहो ! अद्भुत !

बुद्ध ने कहा कि यहां केवल अभी मेरे वंश के समागम के समय ही वर्षा नहीं बरसी पहले भी वह बर्सी है" और इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिये, महावेस्सन्तर-जातक कही। धर्म उपदेश सुन, सभी उठ, प्रणाम कर चले गये। न राजा ने, न राजा के महामात्य ने, और न दूसरे किसी ने भी कहा कि भगवान् ! कल हमारी भिक्षा ग्रहण करें।

(६) सम्बन्धियों से मिलन

अगले दिन बीस हज़ार भिक्षुओं सहित बुद्ध (=शास्ता) ने कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिये प्रवेश किया। (वहां) न किसी ने उन्हें भोजन के लिये निम-

न्त्रित ही किया, न किसी ने पात्र ही ग्रहण किया। भगवान् ने इन्द्रकीले * पर खड़े हो सोचा—"पूर्व के बुद्धों ने (अपने) कुल के नगर में कैसे भिक्षाटन किया ? क्या बीच के घरों को छोड़ कर (सिर्फ) बड़े २ आदमियों के ही घर गए, अथवा एक ओर से सब के घर ?" फिर देखा कि एक बुद्ध ने भी बीच के बीच में घर छोड़ कर भिक्षाटन नहीं किया है, (फिर) निश्चय किया—"मेरा भी (कुल) अब यही (बुद्धों का) कुल है, इस लिये मुझे अपना यह कुल धर्म ग्रहण करना चाहिए। ऐसा करने से भविष्य में मेरे शिष्य (=श्रावक) मेरा ही अनुकरण करते (हुए) भिक्षाचार के व्रत को पूरा करेंगे।" ऐसा (सोच), छोर के घर से ही, एक ओर से भिक्षाचार आरम्भ किया।

"आर्य सिद्धार्थ कुमार भिक्षाचार कर रहे हैं" यह (सुन) लोग दुतल्ले, तितल्ले प्रासादों पर से खिड़कियां खोल देखने लगे।

राहुल-माता देवी ने भी—'आर्यपुत्र इसी नगर में राजाओं के बड़े भारी ठाट से सोने की पालकी आदि में (चढ़ कर) घूमे, और आज (इसी नगर में) वह शिर-दाढ़ी मुंडा, काषाय वस्त्र पहिन, कपाल (=खपड़ा) हाथ में ले, भिक्षाचार कर रहे हैं ! क्या (यह) शोभा देता है' कह, खिड़की खोल कर देखा कि परम वैराग्य से उज्ज्वल (बुद्ध का) शरीर नगर की सड़कों को प्रभासित कर रहा है। चारों ओर व्याम भर प्रभा वाली, बत्तीस महापुरुष लक्षणों और अस्सी अनुव्यञ्जनों से अलंकृत, अनुपम बुद्ध शोभा से शोभायमान भगवान् को देखा और (उस का) सिर से पांव तक (इस प्रकार) आठ नरसिंह गाथाओं में वर्णन किया—

"चिकने, काले, कोमल, घुंघरवाले केश हैं; सूर्य्य सदृश निर्मल तलवाला ललाट है, सुन्दर, ऊंची, कोमल, लम्बी नासिका है; नरसिंह अपने रश्मि-जाल को फैला रहे हैं।" इत्यादि फिर (जा कर) राजा से कहा—"आप का पुत्र भिक्षाचार कर रहा है।"

राजा घबराया हुआ, हाथ से धोती संभालते, जल्दी २ निकल कर, वेग से जा, भगवान् के सामने खड़ा हो बोला—"भन्ते ! हमें क्यों लजवाते हो ? किस लिये भिक्षाटन करते हो ? क्या यह प्रगट करते हो कि इतने भिक्षुओं के लिये (हमारे यहां) भोजन नहीं मिलता ?"

---

* किले के द्वार के बाहर खड़ा खम्भा।

"महाराज! हमारे वंश का यही आचार है"।

"भन्ते? निश्चय से हम लोगों का वंश महा सम्मत (=मनु) का क्षत्रिय वंश है? इस वंश में एक क्षत्रिय भी तो कभी भिक्षाचारी नहीं हुआ।"

"महाराज! वह राज-वंश तो आपका वंश है। हमारा वंश तो दीपङ्कर-कौण्डिन्य ········ काश्यप (आदि) का बुद्ध-वंश है। और दूसरे अनेक सहस्र बुद्ध भिक्षाचारी (रहे हैं); भिक्षाचार से ही जीविका चलाते रहे हैं। उसी समय सड़क में खड़े ही खड़े यह गाथा कहीः—

"उद्योगी आलसी न बने, सुचरित धर्म का आचरण करे, धर्माचारी (पुरुष) इस लोक में भी और परलोक में भी सुख-पूर्वक सोता है।" गाथा की समाप्ति पर राजा स्रोतापत्ति-फल में स्थित हुआ। (फिर):—

"सुचरित कर्म का आचरण करे, दुश्चरित कर्म (=धर्म) का आचरण न करे। धर्माचारी (पुरुष) इस लोक और परलोक में सुख पूर्वक सोता है।" इस गाथा को सुनकर राजा सकृदागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। महाधम्मपाल जातक को सुन कर अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। अन्त में मृत्यु के समय, श्वेत छत्र के नीचे, सुन्दर शय्या पर लेटे ही लेटे अर्हत्पद को प्राप्त हुआ। राजा को आरण्य-वास कर योगाभ्यास आदि प्रयत्न नहीं करना पड़ा। (उसने) स्रोत आपत्ति-फल का साक्षात्कार कर, भगवान् का पात्र ले, मण्डली सहित भगवान् को महल पर ले जाकर, उत्तम खाद्य भोज्य परोसे। भोजन के बाद एक राहुल-माता को छोड़, शेष सभी रनिवास ने आ आकर भगवान् को वन्दना की। वह परिजन द्वारा—'जाओ, आर्यपुत्र की वन्दना करो' 'यदि मेरे में गुण हैं, तो आर्यपुत्र स्वयं मेरे पास आयेंगे आने पर ही वन्दना करूँगी" कह न गई।

भगवान् राजा को पात्र दे, दो प्रधान शिष्यों (=सारिपुत्र, मौद्गल्यायन) के साथ, राजकुमारी के शयनागार (=स्त्री गर्भ) में जा "राजकन्या को यथा-रुचि वन्दना करने देना, कुछ न बोलना' कह बिछे आसन पर बैठे। उस ने जल्दी से आ पैर पकड़ कर, शिर को पैरों पर रख, अपनी इच्छानुसार वन्दना की। राजा ने भगवान् के प्रति राजकन्या के स्नेह-सत्कार आदि गुण को कहा—"भन्ते। मेरी बेटी आप के काषाय-वस्त्र पहिनने को सुन कर, तभी से काषाय-धारिणी हो गई। आप के एक बार भोजन करने को सुन, एकाहारिणी हो गई।

आप के ऊंचे पलङ्ग के छोड़ने की बात सुन, पृथ्वी पर सोने लगी। आप के माला, गन्ध आदि से विरत होने की बात सुन, माला गन्ध आदि से विरत हो गई। अपने पीहरवालों के 'हम तुम्हारी सेवा सुश्रूषा करेंगे' ऐसा पत्र भेजने पर एक सम्बन्धी को भी नहीं देखती! भगवान्! मेरी बेटी ऐसी गुणवती है।"

"महाराज! इस में (कुछ) आश्चर्य नहीं, इस समय तो आपकी सुरक्षा में रह, परिपक्व ज्ञान के साथ राजकन्या ने अपनी रक्षा की है। पहले तो बिना किसी रक्षा के, अपरिपक्व ज्ञान रखते भी, पर्वत के नीचे विचरते समय अपनी रक्षा की थी" कह 'चन्द किन्नर जातक' सुना, बुद्ध आसन से उठ कर चले गये।

दूसरे दिन (नन्द) राजकुमार का अभिषेक, गृहप्रवेश, विवाह—ये तीन मंगल-उत्सव थे। उस दिन, भगवान् नन्द के घर जाकर, उसे प्रव्रजित करने की इच्छा से नन्दकुमार के हाथ में पात्र दे मंगल कह, आसन से उठ कर चल पड़े। (नन्द की नव वधू) जनपद-कल्याणी ने कुमार को पीछे जाते देखा पर, "आर्य पुत्र! जल्दी आइयो" कह गर्दन बढ़ा कर देखने लगी। राजकुमार भी (संकोच वश) भगवान् को 'पात्र ग्रहण कीजिये' न कह, विहार (तक) चला गया। उस की (अपनी) इच्छा न रहने पर भी भगवान् ने उसे प्रव्रजित किया। इस प्रकार भगवान् ने कपिलपुर जाने के तीसरे दिन नन्द * को साधु बनाया।

(१०) पुत्र को दाय भाग

सातवें दिन राहुल-माता ने (राहुल) कुमार को अलंकृत कर, भगवान् के पास यह कह कर भेजा, "तात! देख! बीस हज़ार साधुओं श्रमणों के मध्य में (जो वह) सुनहले उत्तम रूप वाले साधु (=श्रमण) हैं वही तेरे पिता हैं। उन के पास बहुत से खजाने थे; जो उन के (घर से) निकलने के बाद से नहीं दिखाई देते। जा, उन से वरासत मांग। (उन से कह) "तात! मैं (राज-) कुमार हूं। अभिषेक प्राप्त करके चक्रवर्ती '(-राजा) बनना चाहता हूं। मुझे धन चाहिये। धन दें। पुत्र पिता की सम्पति का स्वामी होता है।" कुमार भगवान् के पास जा, पिता का स्नेह पा प्रसन्न-चित हो, "श्रमण! तेरी छाया सुखमय है" यह और भी अपने अनुकूल (कुछ २) कहता खड़ा रहा

---

* सिद्धार्थ की मौसी और सौतेली मां महागौतमी प्रजापती का पुत्र।

भगवान् भोजन के बाद (दान का) महत्व कह आसन से उठ कर चले गये। कुमार भी, 'श्रमण! मुझे दायज दें। श्रमण! मुझे दायज दें।' कहता भगवान् के पीछे २ हो लिया। भगवान् ने कुमार को नहीं लौटाया। परिजन भी उसे भगवान् के साथ जाने से न रोक सके। इस प्रकार वह भगवान् के साथ आराम तक चला गया। भगवान् ने सोचा:—"यह पिता-के-पास के जिस धन को मांगता है, वह (धन) सांसारिक है, नाशवान् है। क्यों न मैं इसे बोधिमण्डप में मिला अपना सात प्रकार का आर्य-धन* दूं। इसे अलौकिक वरासत का स्वामी बनाऊं" (ऐसा सोच) आयुष्मान् सारिपुत्र को कहा—"सारिपुत्र! तो तो राहुल-कुमार को साधु बनाओ।" राहुल-कुमार के साधु होने पर राजा को अत्यन्त दुःख हुआ। उस दुःख को न सह सकने के कारण, राजा ने (उसे) भगवान् से निवेदन कर, वर मांगा:—"अच्छा भन्ते! आर्य (भिक्षु लोग) माता पिता की आज्ञा के बिना (उन के) पुत्र को प्रव्रजित न करें" भगवान् ने राजा को वह वर दिया।

फिर एक दिन (भगवान्) राज-महल में प्रातःकाल के भोजन के लिये गये। (भोजन) कर चुकने पर, एक ओर बैठे राजा ने कहा—"भन्ते! आप के दुष्कर तपस्या करने के समय, एक देवता ने मेरे पास आ कर कहा कि तुम्हारा पुत्र मर गया। उस के वचन पर न विश्वास कर के उसका वचन का खण्डन करते हुए मैंने कहा, "मेरा पुत्र बुद्ध पद प्राप्ति किये बिना मर नहीं सकता"।

ऐसा कहने पर, भगवान् ने कहा, "जब तुम ने उस समय में, हड्डियां दिखा कर, 'तुम्हारा पुत्र मर गया' कहने पर विश्वास नहीं किया, तो अब क्या विश्वास करोगे?" इस के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये (भगवान् ने) **महाधम्मपाल जातक** कहा। कथा की समाप्ति पर राजा अनागमिफल में स्थित हुआ।

(११) अनाथपिण्डिक का दान

इस प्रकार पिता को तीन फलों में स्थापित कर, भिक्षुसंघ सहित भगवान् (कपिलवस्तु से चल कर) फिर एक दिन राजगृह जा सीतवन में ठहरे। (उस) समय, अनाथपिण्डिक गृहपति पांच सौ गाड़ियों में माल भर, राजगृह जा अपने प्रिय मित्र सेठ के घर ठहरा था। वहां उसने भगवान् बुद्ध के

---

* श्रद्धा, शील (=सदाचार), लज्जा, भय, (बहु-) श्रुत होना, त्याग तथा प्रज्ञा।

उत्पन्न होने की बात सुनी। फिर अत्यन्त प्रातःकाल (उठा और) देवताओं के प्रताप से खुले द्वार से बुद्ध के पास पहुंचा। धर्मोपदेश सुन, स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हो, दूसरे दिन भिक्षु संघ सहित बुद्ध को महा दान दे, श्रावस्ती आने के लिये भगवान् (=शास्ता) से वचन लिया।

(अनाथपिण्डिक ने) रास्ते में पैंतालीस योजन तक लाख २ खर्च करके, योजन २ पर विहार बनवाये। अट्ठारह करोड़ अशर्फी (=सर्वण) बिछा कर जेतवन मोल, ले उसने मकान बनवाना आरम्भ किया। (वहां) बीच में दश-बल बुद्ध की गन्धकुटि बनवाई। उस के इर्द गिर्द अस्सी महास्थविरों के पृथक २ निवास, एक दीवार-, दो दीवार-वाली, हंस के आकार की लम्बी शालायें, मण्डप तथा दूसरे बाकी शयनासन, पुष्करणियां, टहलान (=चंक्रमण), रात्रि के स्थान और दिन के स्थान बनवाये। (इस प्रकार) अट्ठारह करोड़ के खर्च * से रमणीयस्थान में सुन्दर विहार बनवा, भगवान् के लिवा लाने के लिये दूत भेजा। भगवान् (=शास्ता) दूत का सन्देश सुन, महान् भिक्षु संघ के साथ राजगृह से निकल क्रमशः श्रावस्ती नगर में पहुंचे।

महासेठ भी विहार-पूजा की तैय्यारी (पहिले ही से) कर चुका था। उस ने तथागत के जेतवन में प्रवेश करने के दिन, सब अलंकारों से अलंकृत पांच सौ कुमारों के साथ, सब अलंकारों से प्रतिमण्डित (अपने) पुत्र को आगे भेजा। अपने साथियों सहित वह, पांच रंग की चमकती हुई, पांच सौ पताकायें ले कर बुद्ध के आगे २ चला। उस के पीछे महासुभद्रा और चूलसुभद्रा (नाम की) सेठ की दो बेटियां, पांच सौ कुमारियों के साथ, पूर्ण-घट ले कर निकलीं। उन के पीछे सब अलंकारों से अलंकृत सेठ की देवियां (=भार्य्यायें) पांच सौ स्त्रियों के साथ, भराथाल ले कर निकलीं। उन के बाद सफेद वस्त्र धारण किये स्वयं सेठ, अन्य वैसे ही श्वेत वस्त्र धारण किये अन्य पांच सौ सेठों को साथ ले, भगवान् की अगवानी के लिये चला।

---

* श्रेष्ठी नगर का अवैतानिक पदाधिकारी होता था। वह धनिक व्यापारियों में से बनाया जाता।

यह उपासक मंडली आगे जा रही थीं। (पीछे पीछे) भगवान् महाभिक्षुसंघ से घिरे हुए, जेतवन को अपनी सुनहरी शरीर-प्रभा से रञ्जित करते हुये, अनन्त बुद्ध-लीला और अतुलनीय बुद्ध शोभा के साथ जेतवन में प्रविष्ट हुये। तब अनाथपिण्डिक ने उन्हें पूछाः—"भन्ते! मैं इस विहार के विषय में कैसे क्या करूं?"

"गृहपति! यह विहार भूत भविष्य हमेशा के लिये भिक्षु-संघ को दान कर दे।"

'अच्छा भन्ते!' कह महासेठ ने सोने की झारी ले, बुद्ध के हाथ पर (दान का) जल डाल, "मैं यह जेतवन विहार सब दिशा और सब काल (आगत अनागत चतुर्दिश) के बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को देता हूं" कह प्रदान किया। शास्ता ने विहार को स्वीकार कर दान की प्रशंसा करते कहाः—

"यह गर्मी सर्दी से, हिंस्र जन्तुओं से, रेंगने वाले (=सर्पादि) जानवरों से, मच्छरों से, बूंदा बांदी से, वर्षा से और घोर हवा-धूप से रक्षा करता है। यह आश्रय के लिये, सुख के लिये, ध्यान के लिए और योगाभ्यास के लिए (उपयोगी है) इसीलिए बुद्ध ने विहार-दान को श्रेष्ठ-दान (=अग्रदान) कह, उसकी प्रशंसा की है। अपनी भलाई चाहने वाले पुरुष को चाहिये, कि सुन्दर विहार बनाये और उन में बहु-श्रुतों को निवास कराये और प्रसन्न-चित्त उन सरल चित्त वालों को, अन्न-पान, वस्त्र तथा निवास (=शयनासन) प्रदान करे। तब (ऐसा करने पर) वे सब दुःखों के नाश करने वाले, धर्म का उपदेश करते हैं, जिसे जान कर वह मलरहित (=अनाश्रव) परिनिर्वाण को प्राप्त होगा" इस प्रकार विहार-दान का माहात्म्य कहा।

दूसरे दिन से अनाथपिण्डिक ने विहार-पूजोत्सव आरम्भ किया। विशाखा का प्रासाद का पूजोत्सव चार महीने में समाप्त हुआ। लेकिन अनाथपिण्डिक का विहार-पूजोत्सव नौ महीनों में समाप्त हुआ था। विहार पूजोत्सव में भी अठारह करोड़ ही खर्च हुए। इस प्रकार (उस ने) उस विहार ही में चौवन करोड़ धन का दान किया।

पूर्व में भगवान् विपस्सी के समय, पुन्नवसुमित्र नामक सेठ ने सोने की ईंटों को सिरे से सिरे लगा कर, (उस से भूमि) खरीद कर, उसी स्थान में योजन भर का सङ्घाराम बनवाया था। भगवान् शिखि के समय श्रीवर्द्ध नामक सेठ ने सोने

के फलकों को फैला कर (भूमि) खरीद कर, उसी स्थान पर तीन गव्यूति (६ मील) भर का सङ्घाराम बनवाया था। भगवान् विश्वभू (=वेस्सभू) के समय स्वस्ति (=सोत्थि) नामक सेठ ने सोने के हस्ति-पदों के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर आधे-योजन भर का सङ्घाराम बनवाया था। भगवान् ककुसन्ध के समय अच्युत नामक सेठ ने सोने की ईंटों के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर गव्यूति (२ मील) भर का सङ्घाराम बनवाया। भगवान् कोनागमन के समय उग्र नामक सेठ ने सोने के कच्छुओं के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर, आधे गव्यूति (एक मील) का सङ्घाराम बनवाया। भगवान् काश्यप के समय में सुमङ्गल नामक सेठ ने सोने की ईंटों के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर सोलह करीष तक का सङ्घाराम बनवाया। लेकिन हमारे भगवान् के समय अनाथ-पिण्डिक सेठ ने करोड़ों कार्षापणों के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर आठ करीष भर में सङ्घाराम बनवाया। यह स्थान सभी बुद्धों से अपरित्यक्त स्थान है। इस प्रकार बोधिमण्ड में सर्वज्ञता-प्राप्ति से महापरिनिर्वाण-मञ्च तक, जिस जिस स्थान पर भगवान् रहे, यह सब 'सन्तिकनिदान' है।

इसी के सम्बन्ध से (आगे) सब जातकों का वर्णण करेंगे।

जातकट्ठ कथा की निदान-कथा समाप्त।

—:o:—

१. अपण्णक जातक (१. १. १.)

अपण्णक (इत्यादि)—यह धर्म कथा भगवान् ने श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में रहते समय कही। किस के कारण यह कथा कही गई ? एक सेठ के पांच सौ तीर्थिक मित्रों के कारण।

एक दिन अनाथपिण्डिक सेठ अपने पांच सौ अन्य तीर्थिक * मित्रों को साथ ले; बहुत सा गन्ध, माला, लेप, तेल, मधु, मक्खन वस्त्र-आच्छादन आदि लिवाकर, जेतवन गया। (वहां) भगवान् की वन्दना कर, माला आदि से पूजा कर, भिक्षु संघ को भेषज तथा वस्त्र आदि प्रदान कर, बैठने के सम्बन्ध के छः दोषों † को छोड़, एक ओर बैठ गया। वे दूसरे मत के शिष्य भी तथागत की वन्दना कर, शास्ता के पूर्ण चन्द्र की शोभा से शोभित मुख, लक्षण और अनुलक्षणों (अनु-व्यञ्जनों) से मण्डित तथा चारों ओर चार हाथ (=व्याम) की दूरी तक प्रभा से प्रकाशित सुन्दर शरीर (=ब्रह्म काय)—जिस से समय समय पर जोड़ा जोड़ा होकर घनी बुद्ध की किरणें निकलती थीं—को देखते, अनाथपिण्डिक के समीप ही बैठ गये।

तब बुद्ध ने उन्हें, मनःशिलातल पर सिंह-नाद करते तरुण सिंह की तरह, या वर्षा के गर्जते मेघ की तरह, या आकाश-गङ्गा के अवतरण की तरह, या रत्नों की माला गूंथते हुये की तरह, आठ बातों से युक्त, श्रवण-योग्य, कमनीय और उत्तम स्वर से नाना प्रकार की विचित्र धर्म-कथायें कहीं। उन्हों ने बुद्ध के उपदेश सुन, प्रसन्न चित्त हो, उठ कर बुद्ध को वन्दना की; और दूसरे मतों की शरण छोड़ बुद्ध की शरण ग्रहण की। उस दिन से आरम्भ करके, वे नित्य-प्रति, अनाथपिण्डिक के साथ, गन्ध माला आदि हाथ में ले, विहार जा कर धर्म सुनते, दान देते, सदाचार (=शील) रखते तथा व्रत (=उपोसथ-कर्म) करते थे।

एक दिन भगवान् श्रावस्ती से राजगृह चले गये। बुद्ध (=तथागत) के जाने पर, वे अन्य तीर्थिक श्रावक तथागत की शरण छोड़, फिर दूसरे मतों की शरण ग्रहण कर, अपने पहिले स्थान पर ही चले गये। भगवान् सात आठ मास बिता कर फिर जेतवन लौट आये। अनाथपिण्डिक फिर उन्हें (साथ) ले जा कर, बुद्ध के पास जा

---

* किसी अन्य पन्थ के अनुयायी।

† अत्यन्त समीप, अत्यन्त दूर, जिधर से हवा आती हो उधर, ऊंचे स्थान पर, बिल्कुल सामने तथा बिल्कुल पीछे हो कर बैठना—ये बैठने के छः दोष हैं।

गन्ध आदि से पूजा तथा प्रणाम कर, एक ओर बैठा। वे (तीर्थिक) भी भगवान् की वन्दना कर, एक ओर बैठ गये। तब (अनाथपिण्डिक ने) बुद्ध (=तथागत), से, (उन के) चारिका पर चले जाने के समय, उन (तीर्थिकों) के (तथागत की) शरण छोड़, फिर दूसरे मतों की शरण ग्रहण करके, अपने पहले स्थान पर चले जाने की बात कही।

भगवान् ने अनन्त (=अप्रमाण) करोड़ कल्पों तक निरन्तर बाणी सम्बन्धी सदाचार को पालन करने के प्रताप से, दिव्य सुगन्धों से सुगन्धित, नाना प्रकार की सुगन्धियों से भरे रत्न-करण्ड को खोलते हुए की तरह, अपने मुख-पद्म को खोल कर, मधुर स्वर से पूछा—"उपासको! क्या तुम सचमुच तीन-शरणों * को छोड़ कर दूसरे मत की शरण चले गये थे?"

उन्हों ने छिपा न सकने के कारण कहा—"भगवान्! सच (है)।"

तब बुद्ध ने कहा—'उपासको! नीचे अवीचि नामक नरक से ऊपर भवाग्र नामक सर्वोपरि देव-लोक तक जितनी अप्रमाण लोक-धातुयें हैं, उन में (कहीं भी) सदाचार (=शील) आदि गुणों में बुद्ध के समान भी कोई नहीं, बढ कर तो कहां से होगा? भिक्षुवो! (पैर) या बे पैर वाले जितने भी प्राणी हैं बुद्ध (=तथागत) उन में सर्व-श्रेष्ठ कहे जाते हैं'। 'इस लोक या पर-लोक में जितने भी धन हैं······ तथागत······', 'शुद्ध-चित्तों में श्रेष्ठ (=अग्र)······' इत्यादि सूत्रों में प्रकाशित तीनों रत्न (=बुद्ध, धर्म और संघ) के गुण प्रकाशित किये। "इस प्रकार के गुणों से युक्त तीनों रत्नों की शरण जाने वाले उपासक वा उपासिका नरक आदि में पैदा नहीं होते। (वे) नरक के जन्म से बच कर, देव-लोक में उत्पन्न हो, महासम्पत्ति भोगते हैं, इस लिए तुम लोगों ने इस प्रकार की शरण को छोड़ कर, दूसरे मतों की शरण ग्रहण कर के, अनुचित किया।"

त्रिरत्न को मोक्ष (-दायक) और उत्तम मान कर (उन की) शरण जाने वालों का नरक आदि में जन्म न लेना—यह दिखाने के लिए, यह सूत्र † उद्धृत करना चाहिए :—

"जो बुद्ध की शरण गये हैं, वे नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-देह को छोड़

---

* बुद्ध, धर्म, और संघ की शरण।

† संयुत्त निकाय, महासमय सुत्र।

कर, वे देव-लोक में पहुंचेंगे ॥"

"जो धर्म की शरण गए हैं, वे नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-देह को छोड़ कर, वह देव-लोक में पहुंचेंगे ॥"

"जो सङ्घ की शरण गए हैं, वह नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-लोक को छोड़ कर, वे देव-लोक में पहुंचेंगे।"

भयभीत हो मनुष्य पर्वत, वन, आराम (=उद्यान), वृक्ष, चैत्य आदि, अनेक चीज़ों (को देवता मान उन) की शरण लेते हैं। किन्तु ये शरण मङ्गल दायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं, क्योंकि इन शरणों को ग्रहण करने से, सब दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता।

जो बुद्ध धर्म तथा संघ की शरण जाते हैं; जिन्हों ने चारों आर्य सत्यों को भली प्रकार प्रज्ञा से देखा है। (वे चार आर्य सत्य हैं-) (१) दुःख (२) दुःख की उत्पत्ति (३) दुःख का नाश, और (४) दुःख नाशक आर्य अष्टांगिक मार्ग। ये हैं मंगलप्रद शरण, ये हैं उत्तम शरण, इन शरणों को पा कर (मनुष्य) सारे दुःखों से छूट जाता है ॥ *"

शास्ता ने केवल उन्हें इतना ही धर्मोपदेश नहीं किया; बल्कि यह भी कहा:—"उपासको! बुद्धानुस्मृति कर्मस्थान (=योगाभ्यास के लिये मन का विषय), धर्मानुस्मृति कर्मस्थान, संघानुस्मृति कर्मस्थान, श्रोतआपत्ति मार्ग, श्रोतआपत्ति फल, सकृदागामी मार्ग, सकृदागामी फल, अनागामी मार्ग, अनागामी फल, अर्हत्-मार्ग तथा अर्हत् फल, का दायक होता है। (और उस) क्रम से भी धर्मोपदेश कर (अन्त में कहा:—) "इस प्राकर की शरण छोड़ कर तुम ने अनुचित किया।"

बुद्धानुस्मृति श्रोतआपत्ति मार्ग आदि को देते हैं; यह "भिक्षुओ! एक धर्म (=बात) के अभ्यास करने से, बढ़ती करने से, सम्पूर्ण निर्वेद =विराग, निरोध, उपशमन, अभिज्ञा, सम्बोधि (=परमज्ञान) तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है। कौन सा है वह एक धर्म? बुद्धानुस्मृति †" आदि सूत्रों से प्रतिपादित करना चाहिये। इस प्रकार भगवान् ने नाना प्रकार से उपासकों को उपदेश दे कहा:—"उपासको! पूर्व (काल) में भी मनुष्यों ने (एक बार) तर्क-वितर्क से अयोग्य शरण को

---

* धम्मपद, बुद्धवग्ग।

† अंगुत्त निकाय, एकक निपात।

शरण समझ ग्रहण किया, और भूतों (=अमनुष्यों) वाले मरूभूमि (=कान्तार) में जा भूतों (=यक्षों) के ग्रास हो बर्बाद हुए। लेकिन उसी मरूभूमि में निर्दोष (=अपण्णक) शरण को अनुकूलता के साथ सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करने वाले मनुष्य कल्याण (=स्वस्तीभाव) को प्राप्त हुये।" यह कह (तथागत) चुप हो गये।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति आसन से उठ, भगवान् को वन्दना तथा प्रशंसा कर, (दोनों) हाथों को जोड़, सिर पर रख, इस प्रकार बोला:—"भन्ते! इन उपासकों का इस समय उत्तम शरण को छोड़ तर्क के पीछे चलना तो हमें मालूम है; लेकिन पूर्व समय में भूतों वाली मरूभूमि में तर्क के पीछे चलने वालों का बर्बाद होना, और निर्दोष-गहनी (=अपण्णक-ग्राह) ग्रहण करने वालों का कल्याण प्राप्त करना—यह (बात) हमें मालूम नहीं। वह आप को ही मालूम है। भगवान्! अच्छा हो, यदि आप हमें इस बात को आकाश में उदय हुये पूर्ण चन्द्रमा की भान्ति प्रकट करें।"

तब भगवान् ने 'गृहपति! मैं ने अनन्त (=अप्रमाण) समय तक दस पारमिताओं को पूरा करके, लोगों के संशय निवरण के लिये, बुद्ध (=सर्वज्ञता) का ज्ञान प्राप्त किया है। सोने के पात्र (=नालिका) में सिंह के तैल डालने की भांति अच्छी तरह ध्यान देकर सुनों' कह, सेठ को सचेत कर, बादलों को फाड़ कर निकलते चन्द्रमा की तरह, पूर्व जन्म की छिपी बात को प्रकट किया:—

पूर्व समय में काशी देश के बनारस (=वाराणसी) नगर में ब्रह्मदत्त.* नामक राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ने (एक) बंजारे (=सत्थवाह) के घर में जन्म ग्रहण किया था। क्रमशः सयाना (=वयस प्राप्त) हो, वह पांच सौ गाड़ियां ले, व्यापार करते हुए विचारते थे। वह कभी पूर्व-देश से अपरान्त देश जाते थे, कभी अपरान्त से पूर्व।

बनारस ही में (एक) और भी बंजारे का पुत्र था, लेकिन वह मूर्ख, जड़ और भोंदू था। उस समय बोधिसत्व ने बनारस से बहुत सा मूल्यवान् सौदा पांच सौ गाड़ियों पर लाद, चलने की तैय्यारी की थी। उस मूर्ख बंजारे-के-पुत्र ने उसी प्रकार, पांच सौ गाड़ियां लाद, चलने की तैयारी की थी। बोधिसत्व ने सोचा यदि यह मूर्ख मेरे साथ २ जायगा तो एक ही रास्ते से एक हज़ार गाड़ियों के

* जातकों में काशी के राजा ब्रह्मदत्त का बहुत उल्लेख है।

जाने पर रास्ता काफी न होगा, आदमियों के लिये लकड़ी-पानी तथा बैलों के लिये घास-चारा मिलना कठिन हो जायगा। इस लिये या तो उसे आगे जाना चाहिये या मुझे।

तब उस के आदमी को बुला, यह बात कह कर पूछा:—हम दोनों एक साथ एकट्ठे नहीं जा सकते तुम आगे जाओगे या पीछे?

उस ने सोचा 'आगे जाने में मुझे बहुत लाभ हैं। बिना बिगाड़े (=अभिन्न) रास्ते से जाऊंगा, बैल अछूते तृण खायेंगे, मनुष्यों को तेमन बनाने के लिये अछूते पत्ते मिलेंगे, शान्त (निमल) पानी प्राप्त होगा; और मन माने दाम पर सौदा बेचूंगा।' (यह सोच कर) उस ने कहा:— "सौम्य! मैं ही आगे जाऊंगा।"

बोधिसत्व ने पीछे जाने में बहुत लाभ देखे। उन्हों ने सोचा:– 'यह आगे २ जा कर विषम स्थानों को सम करेगा, मैं उस के गये रास्ते से चलूंगा। आगे जाने वाले बैल पकी कड़ी घास खा लेंगे; इस प्रकार मेरे बैल नये मधुर तृणों को खायेंगे। पत्ते तोड़ लिये गये स्थानों पर, नये उत्पन्न पत्ते, साग भाजी के लिये मधुर होंगे। यह लोग जहां पानी नहीं है, ऐसे स्थानों को खोद कर पानी निकालेंगे, सो दूसरों के खोदे हुये कुओं (गढ़ों) से हम पानी पीयेंगे। (वस्तुओं का) मूल्य निश्चित करना वैसा ही है जैसा मनुष्यों की जान लेना होता है। मैं पीछे जा कर इन के निश्चित किये गये मूल्य से सौदा बेचूंगा।" इतने लाभ देख कर उन्हों कहा:– सौम्य। तुम आगे जाओ।"

"अच्छा! सौम्य!" कह, वह मूर्ख बंजारा गाड़ियों को जोत (नगर से) निकला। वह क्रमशः मनुष्यों की बस्तियां पार कर कान्तार (=मरुभूमि) के प्रवेश-स्थान पर पहुचा।

कान्तार पांच प्रकार के होते हैं:—"चोरों का कान्तार, व्याल (=हिंसक जन्तुओं) का कान्तार, दैत्यों का कान्तार, निर्जल (=निरुदक) और अल्प-भक्ष कान्तार।"

जिस मार्ग पर चोरों का दखल हो, वह चोर-कान्तार (कहा जाता हैं)। सिंह आदि व्यालों से अधिकृत मार्ग व्याल-कान्तार; जहां स्नान करने वा पीने के लिये पानी न मिले वह निरुदक कान्तार; दैत्यों (=अमनुष्यों), वाला मार्ग अमनुष्य, कान्तार, और खाने पीने के लायक कंद मूल आदि से शून्य मार्ग अल्प-भक्ष

कान्तार। इन पांच प्रकार के कान्तारों में से वह कान्तार निरुदक-कान्तार तथा अमनुष्य-कान्तार था। इस लिये यह बंजारे का लड़का गाड़ियों में बड़े बड़े मटके रखवा, (उन्हें) पानी से भरवा कर (उस) साठ योजन के कान्तार में चला।

कान्तार के बीच में पहुंचने पर, कान्तार में रहने वाले दैत्य ने सोचा कि यदि मैं इन के साथ के पानी को फेंकवा दूं, तो (इन के) दुर्बल हो जाने पर मैं इन सब को खा सकूंगा। (यह सोच) उस ने बिल्कुल सफेद रंग के तरुण बैलों को मनोरम रथ (=यान) में जुतवाया, धनुष-तरकस-ढाल (आदि) हथियार (=आयुध) हाथ में लिये। फिर नीले और सफेद कमलों (की माला) को धारण कर, गीले केश, गीले वस्त्र, दस बारह दैत्यों को साथ ले एक बड़े राजा (=ईश्वर पुरुष) की तरह उस रथ में बैठ कीचड़ में डूबे हुए पहियों के साथ रास्ते पर हो लिया। उस के आगे पीछे चलने वाले, उस के सेवक (=परिचारक) भी, भीगे केश, भीगे वस्त्र, नीले सफेद कमलों की मालायें धारण किये हुए, लाल सफेद कमलों के गुच्छे लिये, पानी तथा कीचड़ की बूंदें टपकाते हुए, और भिस की जड़ें खाते हुए (साथ) चले। जब सामने की हवा चलती थी, तो बंजारा रथ में बैठ, नौकरों (=परिचारकों) के साथ धूली को हटाते हुए आगे २ चलता था; जब पीछे की हवा चलती थी, तब उसी प्रकार पीछे पीछे चलता था। उस समय तो सामने की हवा थी। इसलिये बंजारा आगे २ जा रहा था।

दैत्य ने उस बंजारे को आता देख, अपने रथ को रास्ते से एक ओर कर के पूछा:—कहां जाते हैं? (फिर) कुशल-क्षेम की बातचीत की।

बंजारे ने भी अपने रथ को रास्ते से एक ओर हटा, (अन्य) गाड़ियों को जाने का रास्ता दे, एक ओर खड़े २ उस भूत से कहा:—"जी! हम बनारस से आते हैं" और पूछा:—"यह जो आप उत्पल-कुमुद धारण किये, पद्म-पुण्डरीक हाथ में लिए, कीचड़ से सने और पानी की बूंदें चुवाते और भिस की जड़ें खाते आ रहे हैं; सो क्या आप लोगों के आने के रास्ते में वर्षा हो रही है, (वहां) उत्पल आदि से ढके सरोवर हैं?"

उस की बात सुन कर दैत्य बोला:— 'मित्र! यह क्या कहते हो? सामने यह जो हरे रंग की बन-पांती दिखाई देती है, उस से आगे के सारे जंगल में मूसलाधार वर्षा हो रही है। उपत्यकायें भरी हुई हैं। जगह जगह पर पद्म आदि

से पूर्ण जलाशय हैं।" कह आगे पीछे जाती गाड़ियों की ओर, इशारा करके पूछा:— "यह गाड़ियां ले कर कहां जा रहे हो ?"

"अमुक देश को।"

"इस इस गाड़ी में क्या क्या सौदा है ?"

"यह (सौदा) है, और यह (सौदा) है।"

"पिछली गाड़ी बहुत भारी मालूम हो रही है। उस में क्या सौदा है ?"

"उस में पानी है।"

"अभी जो पानी साथ लाये, सो तो अच्छा किया। लेकिन अब यहां से आगे पानी की आवश्यकता नहीं। आगे बहुत पानी है। मटकों को फोड़, पानी फेंक सुख से जाओ।"

इस प्रकार की बात चीत कर "आप जाइये, हमें देर होती है" कह, कुछ दूर जा कर, उन की आंख से ओझल हो, (दैत्य) अपने नगर को ही चला गया।

उस मूर्ख बंजारे ने अपनी मूर्खता के कारण दैत्य की बात मान, मटके फुड़वा, चुल्लु भर पानी भी बाक़ी न रख, सभी (पानी) फिंकवा गाड़ियां हंकवाई। आगे (रास्ते में) ज़रा सा भी पानी न था। आदमी पानी बिना पीड़ित होने लगे। उन्हों ने सूर्य्यास्त तक चलते रह कर, (शाम को) बैलों को खोल, गाड़ियों को घेरा बनाते खड़ा कर, बैलों को गाड़ियों के पहियों से बांधा। न बैलों को पानी मिला, न मनुष्यों को भोजन (=यवागु-भात)। दुर्बल मनुष्य जहां तहां पड़ कर सो रहे। रात होने पर दैत्यों के नगर से (वह) दैत्य आये (और) सब बैलों तथा मनुष्यों को मार, उन का मांस खा, हड्डियां (वहीं) छोड़ कर चले गये। इस प्रकार (उस) मूर्ख बंजारे-के-पुत्र (की मूर्खता) के कारण, वह सब नाश को प्राप्त हुए। उन की हाथों आदि की हड्डियां इधर उधर बिखर गईं; (किन्तु) पांच सौ गाड़ियां जैसी कि तैसी खड़ी रहीं।

उस मूर्ख बंजारे के पुत्र के चले जाने के मास आध-मास बाद, बोधिसत्त्व भी पांच सौ गाड़ियों के साथ नगर से निकले; और क्रमशः कान्तार के मुख पर पहुंचे। वहां उन्हों ने पानी के मटकों में बहुत सा पानी भर लिया (और) अपने तम्बुओं में ढंढोरा पीट, आदमियों को एकत्रित कर कहा:—"बिना मुझे पूछे, एक चुल्लु भर पानी भी काम में न लाना। जंगल में विषैले-वृक्ष (भी होते हैं। इस

लिये) किसी ऐसे पत्ते, फूल या फल को, जिसे पहले न खाया हो, बिना मुझ से पूछे कोई न खाये।"

इस प्रकार आदमियों को ताकीद कर, पांच सौ गाड़ियों के साथ मरूभूमि (=कान्तार) की ओर बढ़े ।

उस मरुभूमि के मध्य में पहुंचने पर, उस दैत्य ने पहिले ही की भान्ति अपने को बोधिसत्त्व के मार्ग में प्रकट किया। बोधिसत्त्व ने उसे देखते ही पहचान लिया (और सोचा):—"इस मरुभूमि में जल नहीं है । इस का नाम ही निर्जल-कान्तार है । यह (पुरुष) निर्भय है । इस की आंखें लाल हैं । (और) इस की छाया तक दिखाई नहीं पड़ती । निस्सन्देह इस ने आगे गये मूर्ख बंजारे के पुत्र का सब पानी फिंकवा, उन्हें पीड़ित कर, उसे मंडली सहित खा लिया होगा। लेकिन यह मेरी पंडिताई (=बुद्धि) तथा चतुराई (=उपाय-कुशलता) को नहीं जानता।" फिर उस से कहा:—"तुम जाओ। हम व्यापारी लोग बिना दूसरा पानी देखे, (साथ) लाये पानी को नहीं फेंकते । जहां दूसरा पानी दिखाई देगा, वहां इस पानी को फेंक गाड़ियों को हलका कर चल देंगे।"

दैत्य थोड़ी दूर जा कर, अन्तर्धान हो अपने नगर को चला गया। दैत्य के चले जाने पर आदमियों ने बोधिसत्त्व से पूछा:—"आर्य ! यह मनुष्य 'यह हरे रंगवाली बन पांती दिखाई देती है । उस के आगे मूसलाधार वर्षा बरस रही है।' कहते हुए, उत्पल-कुमुद आदि की मालायें (धारण किए हुये), पद्म-पुण्डरीक के गुच्छे को (हाथ में) लिये भिस की जड़ खाते, भीगे वस्त्र, भीगे-सीस, पानी की बून्दें चूते हुए, आये हैं। इस लिए (क्यों न) हम पानी को फेंक, गाड़ियों को हलकी कर, जल्दी २ चलें।"

बोधिसत्त्व ने उन की बात न सुन, गाड़ियों को रुकवा, सब मनुष्यों को एकत्रित करवा, (उन से) पूछा:—"क्या तुम में से किसी ने इस कान्तार में तालाब अथवा पुष्करिणी होने की बात पहले कभी सुनी ?"

"आर्य ! नहीं ! यही सुना है कि यह कान्तार निर्जल-कान्तार है।"

"अब कुछ मनुष्य कहते हैं कि इस हरे रंग की बन-पांती के उस पार वर्षा होती है । (अच्छा, तो) वर्षा की हवा कितनी दूर तक चलती है ? "

"आर्य ! योजन भर । "

"क्या किसी एक (जने) के शरीर को भी वर्षा की हवा लग रही है ?"

"आर्य ! नहीं ।"

"बादल का सिरा (=मेघ सीस) कितनी दूर तक दिखाई देता है ?"

"आर्य ! योजन भर ।"

"क्या कसी को एक भी बादल दिखाई दे रहा है ।"

"आर्य ! नहीं ।"

"बिजली कितनी दूर तक दिखाई देती है ?"

"आर्य ! चार पांच योजन तक ।"

"क्या किसी को बिजली का प्रकाश दिखाई पड़ा है ?"

"आर्य ! नहीं ।"

"बादल की गर्ज कितनी दूर तक सुनाई देती है ?"

"आर्य ! एक दो योजन भर ।"

"क्या किसी को बादल की गर्ज सुनाई दी है ?"

"आर्य ! नहीं ।"

"यह मनुष्य नहीं, यह दैत्य (थे)। (वह) हमारा पानी फिंकवा कर, दुर्बल कर, (हमें) खाने के विचार से आये होंगे। आगे जाने वाला मूर्ख बंजारे का पुत्र चतुर (=उपाय-कुशल) नहीं था। इन्हों ने अवश्य पानी फिंकवा, पीड़ा दे, उसे खा लिया होगा। उस की पांच सौ गाड़ियां जैसी की तैसी भरी खड़ी होंगी। आज हम उन्हें देखेंगे। चुल्लु भर पानी भी बिना फेंके (गाड़ियों को) हांको" (कह) हंकवाया ।

फिर जाते हुये, उन्हों (=बोधिसत्त्व) ने जैसी की तैसी भरी हुई पांच सौ गाड़ियां, तथा बैलों और आदमियों के हाथों आदि की हड्डियों को इधर उधर बिखरा देख, गाड़ियां खुलवा दीं। गाड़ियों के इर्द गिर्द घेरे में तम्बू तनवा, दिन रहते ही आदमियों और बैलों को शाम का भोजन खिलवा, मनुष्यों के (घेरे के) बीच में बैलों को बंधवा- सुलवा स्वयं सर्दारों (बलनायकों) सहित हाथ में खड्ग ले, रात्री के तीनों याम पहरा देते, खड़े ही खड़े सवेरा कर बैलों को खिला, कमजोर गाड़ियों को छोड़, (उन की जगह) मज़बूत को ले, कम मोल का सौदा छोड़ (उस की जगह) अधिक दाम वाले सौदे को लाद, जहां जाना था, उस स्थान पर

चले गये। सामान को दुगुने तिगुने मोल पर बेंच, सारी मंडली को (साथ) ले फिर (सानंद) अपने नगर को लौट आये।

यह कथा कह कर बुद्ध (शास्ता) ने कहाः—गृहपति ! इस प्रकार पूर्व काल में तर्क के पीछे चलने वाले सर्वनाश को प्राप्त हुये; लेकिन निर्दोष (=अपण्णक) दैत्यों के हाथ से बच कर, सकुशल इच्छित स्थान पर जा, फिर अपने स्थान पर लौट आये।

इस प्रकार इन दो कथाओं को मिला, पूर्वापार कथा सम्बन्ध जोड़, सम्बुद्ध हो जाने पर इस निर्दोष (=अपण्णक)-धर्म-उपदेश के सम्बन्ध में यह गाथा कहीः—

अपण्णकं ठानमेके दुतियं आहु तक्किका ।
एतदञ्ञाय मेधावी तं गण्हे यदपण्णकं ॥

अर्थः—"कुछ (पंडित) लोग निर्दोष (=अपण्णक) बात (=स्थान) कह रहे हैं; तार्किक लोग दूसरी सदोष। यह जान कर बुद्धिमान् पुरुष, जो निर्दोष है, उसे ग्रहण करे।"

इस में जो 'अपण्णक' (शब्द) है, उस का अर्थ है शुद्ध (=एकांतिक), निर्दोष, नैर्याणिक (=निर्वाण को प्राप्त करने वाला)। ठान (=स्थान) का मतलब है, बात या कारण। 'कारण' को 'स्थान' इस लिये कहते हैं, क्योंकि 'फल' उस कारण के अधीन हो कर ठहरता है। 'स्थान को स्थान, अस्थान को अस्थान समझ कर' † इत्यादि में 'स्थान' का जो भावार्थ है (=प्रयोग) है,, उसे भी जानना चाहिये। यहां 'अपण्णक ठान' इन दो शब्दों का मतलब है, सारे हितों सुखों का दाता, पंडितों द्वारा आचरित जो एकांतिक कारण है, निर्दोष कारण है, नैर्याणिक-कारण है। संक्षेप रूप से यह (अर्थ) है। विस्तार से तो (बुद्ध, धर्म, संघ इन) तीन की शरण जाना, (गृहस्थों को) पांच शील (=सदाचार), (साधुओं को) दस शील (पालन करना), प्रातिमोक्ष (=भिक्षु-नियमों) से (अपनी) रक्षा करना (=संवर), इन्द्रिय-संयम, शुद्ध जीविका रखना, विहित वस्तुओं (=प्रत्ययों) का सेवन, सभी चारों प्रकार की शुद्धता वाला शील, इन्द्रियों का संयम (=गुप्त द्वारता), भोजन की (उचित) मात्रा का ज्ञान, जागरूक रहना, ध्यान, विदर्शना, अभिञ्ञा, समापत्ति (=समाधि), आर्य (अष्टांगिक) मार्ग, आर्य-फल-यह सब अपण्णक बातें(=स्थान)

† अंगुत्तर अप्पन पाली।

अपण्णक रास्ता (प्रतिपदा), नैर्याणिक रास्ता (हैं) यह अर्थ है। क्योंकि यह 'अपण्णक-प्रतिपदा' नैर्याणिक प्रतिपदा का ही नाम है, इसी लिये भगवान् ने अपण्णक-प्रतिपदा का उपदेश देते हुए यह सूक्त * कहा है:—

"भिक्षुओ! तीन धर्मों (=बातों) से युक्त भिक्षु अपण्णक (=निर्दोष) प्रतिपदा में लग कर, अपने चित्त के मलों के विनाश के लिए प्रयत्नशील होता है। कौन से तीन धर्मों से? भिक्षुओ! भिक्षु कैसे इन्द्रियों को वश में रखता है, भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। सचेत रहता है। भिक्षुओ! भिक्षु कैसे इन्द्रियों को वश में रखता है? भिक्षुओ! जब भिक्षु रूप (=स्थूल वस्तुओं) को देख कर, उस के आकार (=निमित्त) को ग्रहण नहीं करता······इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु इन्द्रियों को वश में रखता है। भिक्षुओ! भिक्षु कैसे भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है? भिक्षुओ! जब भिक्षु सोच-समझ कर आहार ग्रहण करता है, न तो मस्ती के लिये, न अभिमान के लिये······। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। भिक्षुओ! भिक्षु कैसे सचेत (=जागरूक) रहता है? भिक्षुओ! भिक्षु दिन में टहलना और बैठना······। इस प्रकार भिक्षुओ! सचेत होता है।"

इस सूक्त में तीन ही धर्म कहे गए हैं। लेकिन यह अपण्णक-प्रतिपदा अर्हत्-फल की प्राप्ति तक रहती है। यहां अर्हत्-फल समाधिस्थ होने का, उपाधि-रहित-निर्वाण का और मार्ग (=प्रतिपदा) का ही नाम है।

कुछ (=एके)—इस शब्द का मतलब है पण्डितजन। अमुक पण्डित जन, इस प्रकार का कोई नियम नहीं।। लेकिन यहां पर 'एक' शब्द का प्रयोग मंडली सहित बोधिसत्त्व के ही लिए जानना चाहिये। तार्किक लोगों ने दूसरा ही कहा है (=दुतियं आहु तक्किका)—दूसरे अर्थात् पहले कहे गये अपण्णक-स्थान, नैर्याणिक-कारण से भिन्न (=दूसरा) तर्क के पीछे चलना, अनैर्याणिक कारण। तार्किकों ने कहा (=आहु तक्किका) इसे यहां पहले शब्द (=दुतियं) से मिला कर पढ़ना चाहिये। अपण्णक स्थान = अविरोधी बात = नैर्याणिक बात-को-बोधिसत्त्व आदि कुछ बुद्धिमान् (=पण्डित) मनुष्यों ने ग्रहण किया। लेकिन जिन्हों ने मूर्ख बंजारे को अपना मुखिया बनाया वह तर्क-ग्राही (=दलील बाज़) थे; उन्हों ने दूसरी सदोष, अनैकां-

* अंगुत्तर निकाय, तिक निपात।

तिक, अनैर्याणिक बात स्वीकार की। उन में से जिन्हों ने अपण्णक स्थान को ग्रहण किया, उन्हों ने शुद्ध मार्ग (=शुक्लमार्ग) का अनुगमन किया। जिन्हों ने दूसरे 'आगे जल अवश्य होगा' इस प्रकार की दलील-बाज़ी (=तर्क-ग्राह) से युक्त अनैर्याणिक बात को माना, उन्हों ने अशुद्ध (=कृष्ण) मार्ग का अनुगमन किया। इस में जो शुक्ल-मार्ग है वह उन्नति का मार्ग है, जो कृष्ण-मार्ग है वह अवनति का मार्ग। इस लिये जिन्हों ने शुक्ल मार्ग का ग्रहण किया, उन की अवनति न हो कर, वह सुखी हुये; लेकिन जिन्हों ने कृष्ण-मार्ग का अनुसरण किया, वे अवनत हो दुःख को प्राप्त हुये।"

इस प्रकार भगवान् ने अनाथपिण्डिक गृहपति को उक्त बात कह कर, आगे यूं कहा:—"यह जान कर मेधावी पुरुष जो निर्दोष है, उसे ग्रहण करे।" इस में "एतदञ्ञाय मेधावी" का अर्थ है—मेधा कही जाने वाली विशुद्ध, उत्तम, प्रज्ञा से युक्त कुलपुत्र, इस अपण्णक और सपण्णक, तर्क-ग्राह तथा अतर्क-ग्राह कहे जाने वाले दोनों स्थानों में गुण-दोष, लाभ-हानि, अर्थ-अनर्थ जान कर। 'तं गण्हे यद्-पण्णकं' का अर्थ है, जो सम्पूर्ण रूप से शुक्ल-मार्ग है, उन्नति-मार्ग कहा जाने वाला नैर्याणिक-कारण है, उसी को ग्रहण करे। किस लिए? पूर्ण रूप से शुक्ल-मार्ग होने के कारण। लेकिन दूसरे को ग्रहण न करे। किस लिए? अनैकांतिक (=असम्पूर्ण) होने के कारण। यह अपण्णक-प्रतिपदा सब बुद्धों, प्रत्येक बुद्धों, और श्रावकों (=बुद्ध-पुत्रों) की प्रतिपदा है। सभी बुद्ध इस अपण्णक-प्रतिपदा (=मार्ग) का अनुसरण कर के ही दृढ़ पराक्रम से पारमितायें पूरी कर बोधि (=वृक्ष) के नीचे बुद्ध पद को प्राप्त होते हैं, प्रत्येक-बुद्ध प्रत्येक-बुद्ध-पद को प्राप्त होते हैं; बुद्ध-पुत्र श्रावक-पारमिता-ज्ञान को साक्षात् करते हैं। इस प्रकार भगवान् ने उन उपासकों को तीन कुल-सम्पत्तियां*, छः काम स्वर्ग † और ब्रह्म-लोक सम्पत्तियां दे कर भी अन्त में अर्हत्-मार्ग को देने वाली अपण्णक प्रतिपदा, तथा चार अगतियों (=अपायों) और पांच नीच-कुलों ‡ में जन्म देने वाली सपण्णक प्रतिपदा इस प्रकार निर्दोष (=अपण्णक) धर्म का उपदेश कर, चारों आर्य सत्यों को, सोलह प्रकार से प्रका-

---

* क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा वैश्य।

† चातुर्महाराजिक, त्रयस्त्रिंश, याम, तुषित, निर्माण-रति तथा परनिर्मित वश-वर्ति।

‡ बांस का काम करने वाले (२) नैषाद (=मल्लाह) (३) रथ-कार (४) कुम्हलाये हुये फूलों के फेंकने वाले (५) चाण्डाल।

शित किया। चारों सत्यों (के प्रकाशित करने के) के अन्त में, वह सब पांच सौ उपासक श्रोत आपन्न हो गये।

बुद्ध ने इस धर्म-उपदेश को दिखला कर, दो कहानियां सुना, तुलना कर, जातक का सारांश निकाला।

उस समय का मूर्ख बंजारा देवदत्त था। उस की मण्डली देवदत्त की मण्डली थी। (इस समय की) बुद्ध की मण्डली, बुद्धिमान् (=पण्डित) बंजारे की मण्डली थी। और बुद्धिमान् बंजारा तो मैं ही था। (यह कह) भगवान् ने धर्म-उपदेश समाप्त किया।

(इति) अपण्णक जातक ॥१॥

२. वण्णुपथ जातक (१. १. २)

"अकिला सुनो" इत्यादि यह धर्म-कथा भगवान् ने श्रावस्ती में विहार करते समय कही। किस के लिये ? एक शिथिल-प्रयत्न भिक्षु के लिए।

बुद्ध के श्रावस्ती में विहार करते समय एक श्रावस्ती-निवासी कुल-पुत्र (=संभ्रान्त तरुण) ने जेतवन जा कर बुद्ध (=शास्ता) के पास जा धर्म-उपदेश सुना; और प्रसन्न-चित्त (हो) इन्द्रिय-सम्बन्धी सुखों (=कामों) में दोष देख, साधु हो, भिक्षु-दीक्षा (=उपसम्पदा) ग्रहण की। पांच-वर्ष बीत जाने पर दो मात्रिकायें और विदर्शना-क्रम को सीख, बुद्ध से अपने चित्त के अनुकूल योगक्रिया (=कर्म्मस्थान) ग्रहण की। फिर एक जंगल में प्रविष्ट हो, वर्षावास के तीन महीने तक साधना में लगे रहने पर भी अवभास-मात्र * वा निमित्र-मात्र भी न उत्पन्न कर सका।

तब उस के मन में यह विचार हुआः—"बुद्ध ने चार प्रकार के व्यक्ति कहे हैं। मैं शायद चौथी प्रकार का—पदपरम—व्यक्ति नहीं होऊंगा। मालूम होता है मैं इस जन्म में मार्ग या फल कुछ नहीं प्राप्त कर सकूंगा। तो फिर मैं जंगल में रह कर ही क्या करूंगा ? (इस लिये) बुद्ध के पास जा, उन के अति सुन्दर शरीर को देखते तथा (उन के) मधुर धर्मोपदेश को सुनते हुए विचरूंगा।" (यह सोच) फिर जेतवन वापिस चला गया।

तब परिचितों तथा मित्रों ने उस से पूछाः—"आयुष्मान् ! तू योगाभ्यास (=श्रामणधर्म) करने के लिए भगवान् (=शास्ता) से योगविधि (=कर्मस्थान)

---

* ध्यान के विषय (=object) का अवभास अथवा साकार रूप दिखाई देना।

ले कर गया था; लेकिन अब लौट कर संघ के साथ घूम रहा है। क्या तेरे साधु होने (=प्रव्रज्या) का उद्देश्य पूरा हो गया है?"

"आयुष्मानो! मैं ने मार्ग या फल नहीं प्राप्त किया। यह सोच, कि (शायद) मैं इस के योग्य नहीं हूं; मैं अभ्यास को छोड़ चला आया हूं।"

"आयुष्मान्! दृढ़ पराक्रमी-उपदेशक के धर्म (=शासन) में साधु बन कर तू ने, जो प्रयत्न करना छोड़ दिया, वह उचित नहीं किया। आ तुझे तथागत के पास ले चलें" कह, उसे शास्ता के पास लिवा ले गये।

शास्ता ने उसे देख कर कहाः—"भिक्षुओ! तुम इस अनिच्छुक भिक्षु को ले कर आये हो। इस भिक्षु ने क्या (अपराध) किया है?"

"भन्ते! यह भिक्षु ऐसे उबारने वाले (=नैर्याणिक) धर्म में साधु बन, योगाभ्यास (=श्रवन-धर्म) करते करते उस के प्रयत्न को छोड़ कर, लौट आया है।"

तब भगवान् ने उस से पूछाः—"क्या सचमुच भिक्षु! तू ने प्रयत्न ढीला कर दिया।"

"हां सचमुच! भगवान्!"

"भिक्षु! ऐसे धर्म में साधु हो तू अपने को 'अल्पेच्छ', 'सन्तुष्ट', 'एकान्तप्रिय' वा 'प्रयत्नवान्' न बना, क्यों आलसी भिक्षु प्रकट कर रहा है? क्या तू पूर्व-जन्म में उद्योगपरायन नहीं था? (पूर्व-जन्म में) तेरे अकेले के उद्योग से मरुभूमि में पांच सौ गाड़ियों के आदमी और बैल पानी पाकर सुखी हुये थे। अब तू किस लिये हिम्मत हार रहा है?"

वह भिक्षु (भगवान् की) इस बात से संभल गया।

यह बात सुन कर भिक्षुओं ने भगवान् से प्रार्थना कीः—"भन्ते! इस समय इस भिक्षु का प्रयत्न हिम्मत-हार बैठना तो प्रगट है, लेकिन पूर्व-जन्म में इस अकेले के प्रयत्न से मरु-भूमि में बैलों और मनुष्यों का पानी पाकर सुखी होना हमें मालूम नहीं। वह आप के बुद्धत्व (=सर्वज्ञता) के ज्ञान को ही प्रगट है। हमें भी वह बात (=कारण) कहिये।"

"तो भिक्षुओ! सुनो।" (कह) भगवान् ने उस भिक्षु को ध्यान दिला (उस) पूर्व-जन्म की अज्ञात बात को प्रगट किया—

पूर्व काल में काशी देश के बनारस नगर में, ब्रह्मदत्त (राजा) के राज्य करते

सम य, बोधिसत्त्व बंजारे के कुल में पैदा हुये; सयाना होने पर पांच सौ गाड़ियों के साथ वह व्यपार करने लगे। वह एक दिन साठ योजन वाली मरु-भूमि में जा रहे थे। उस कान्तार का रेत इतना बारीक था कि मुट्ठी में लेने पर हाथ में नहीं ठहरता था। सूर्य्योदय के समय से (ही) भौर की आग की तरह (इतना) गर्म हो जाता था कि उस पर चला नहीं जाता था। इस लिये उस कान्तार को पार करने वाले, लकड़ी, पानी, तिल, चावल सब को गाड़ियों पर लाद, रात को ही जागते थे। (वह) उषा (अरुणोदय) के समय गाड़ियों को घेरे में खड़ी कर, उन पर मण्डप तनवा, समय रहते ही भोजन समाप्त कर, छाया में बैठे २ दिन बिताते थे। सूर्य्यास्त होने पर शाम का भोजन खा कर, भूमि के ठंडी होने पर, गाड़ियों को जुतवा चल देते थे। यह यात्रा समुद्र-यात्रा जैसी होती थी। (उस में भी) दिशा प्रदर्शक (=थल नियामक) की ज़रूरत रहती थी। वह दिशा-प्रदर्शक तारों को देख कर, (=क़ाफिले) को (कान्तार से) पार उतारता था।

वह बंजारा भी, उस समय, इसी ढंग से, उस कान्तार में जा रहा था। उन्सठ योजन पार कर लेने पर, यह सोच कि, अब एक ही रात में हम मरु-भूमि से बाहर हो जायेंगे,' शाम को भोजन कर, सब लड़की पानी लदवा गाड़ियां जुतवा वह चल पड़ा। दिशा-प्रदर्शक (पुरुष) अगली गाड़ी पर आसन (कुर्सी) बिछवा, आकाश में तारों को देखता, 'इधर हांको, उधर हांको' कहता हुआ लेटा था। इतनी दूर तक न सोया रहने के कारण, थक कर, उसे नींद आगई। बैलों ने लौट कर, जिस रास्ते से वह आये थे, उसी (रास्ते) को ग्रहण कर लिया; और उसे पता नहीं लगा। बैल सारी रात चलते रहे। दिशा-प्रदर्शक ने अरुणोदय के समय उठ कर, तारों को देख कर, गाड़ियों को लौटाओ २,' कहा। गाड़ियों को लौटा कर क्रमशः रास्ते पर लाते ही लाते अरुणोदय हो गया।

आदमियों ने (पहचान लिया)—'यह तो हमारा कल का तम्बू गाड़ने का स्थान है।' (फिर वह सोचने लगे)—हमारा लकड़ी-पानी खतम हो गया। इस लिये अब हमारा नाश है।—गाड़ियों को खोल, घेरे में खड़ा कर, ऊपर से मण्डप तान, चिन्ता के मारे वे, अपनी २ गाड़ी के नीचे लेट रहे।

बोधिसत्त्व ने 'मेरे हिम्मत हारने पर सभी नाश को प्राप्त होंगे' (सोच), प्रातः काल ठंडे २ समय में ही घूमते हुये एक दूब-तृण के पौदे को देख कर विचारा —

'यह तिनके नीचे पानी की नमी के ही कारण उगे होंगे,' (और) कुदाली मंगवा, वह जगह खुदवाने लगे। (लोगों ने) साठ हाथ तक खोदा। इतने खोदने पर (उन की) कुदाली नीचे एक पत्थर से टकराई। (पत्थर से) टकराते ही सब ने हिम्मत हार दी। लेकिन बोधिसत्त्व ने सोचा—"इस पत्थर के नीचे पानी होना चाहिये।" (यह सोच) नीचे उतर, पत्थर पर खड़े हो, झुक कर, कान लगा, शब्द पर ध्यान दिया। नीचे पानी के बहने का शब्द सुन, ऊपर आ, अपने प्रिय सेवक से कहाः— "तात! यदि तू ने हिम्मत छोड़ दी, तो हम सब नष्ट हो जायेंगे। तू बिना हिम्मत छोड़े, इस हथौड़े (=अयकूट) को ले, गढ़े में उतर कर, इस पत्थर को तोड़।"

उस ने बोधिसत्त्व की बात मान ली; और सब के हिम्मत छोड़ देने पर भी हिम्मत न हार, नीचे उतर कर पत्थर पर चोट करने लगा। पत्थर बीच से टूट कर, नीचे गिर पानी के सोते के बीच में पड़ा। (वहां से) ताड़ के तने जितनी (ऊंची) पानी की धारा निकली। सब ने पानी पी, स्नान कर, पुराने धुरे (=अक्ष) और जूए फाड़, खिचड़ी-भात पका कर खाया। बैलों को भी खिलाया। (फिर) सूर्यास्त होने पर, पानी के गढ़े के पास ध्वजा गाड़, इच्छित स्थान को गये। वहां उन्हों ने सौदे को बेच, दुगणा, चार गुणा मुनाफा उठाया; और फिर अपने निवास स्थान को लौट आये।

वहां अपनी आयु भर जी कर, कर्मानुसार गति को प्राप्त हुये। बोधिसत्त्व भी दान आदि पुण्य कर्म करके पर-लोक सिधारे। बुद्ध (=सम्यक्सम्बुद्ध) ने बुद्ध-पद प्राप्त कर लेने पर (ही) यह कथा कह, इस गाथा को कहा थाः—

अकिलासुनो वण्णुपथे खणन्ता,
उदङ्गणे तत्थ पपं अविन्दुं।
एवं मुनी विरियबलूपपन्नो,
अकिलासु विन्दे हदयस्स सन्तिंति॥

इस में अकिलासुनो का अर्थ है, आलस्यरहित वा प्रयत्नशील। वण्णुपथे, वण्णु कहते हैं बालू को, सो इस का अर्थ है बालू का मार्ग। खणन्ता=भूमि को खोदता हुआ। उदङ्गणे, इस में उद् जो है, सो निपात है, अङ्गण=मनुष्यों के घूमने का स्थान=खुला प्रदेश। तत्थ=उस बालू मार्ग में। पपं अविन्दुं का अर्थ है पानी को

पाया। पिया जाने से पानी को पपा कहते हैं या बहने वाला (-जल) आप, पपा अर्थात् महाजल। एवं शब्द उपमा का द्योतक है। मुनी = मौन कहते हैं ज्ञान को, अथवा काम-मौन आदि में से किसी एक से युक्त व्यक्ति को मुनी कहते हैं। लेकिन इस मुनी के, 'अगारिय-मुनी' 'अनगारिय-मुनि,' 'सेख मुनि,' 'असेखमुनि', 'पच्चेकमुनि', 'मुनि मुनि'—इस प्रकार के कई भेद हैं। सो अगारिय (=आगारिक)-मुनि, जिस ने गृहस्थ रहते मार्ग-फल को प्राप्त कर लिया है, जो धर्म (=शासन) का ज्ञाता है। अनगारिय (=अनागारिक)-मुनि, जो उक्त प्रकार से ही मार्ग-फल को प्राप्त है, लेकिन साधु है। सेख (=शैक्ष्य) मुनि का अर्थ है सात शैक्ष (=श्रोतापन्न से अर्हत्-मार्ग प्राप्त तक)। सच्चेक (=प्रत्येक)-मुनि का अर्थ है 'प्रत्येक-सम्बुद्ध'। मुनि-मुनि =बुद्ध (=सम्यक्सम्बुद्ध)। संक्षेप में यहाँ इन सब से मौनेय्य (=मौन) नामक प्रज्ञा से युक्त मुनी समझना चाहिये। विरियबलूपपन्नो का अर्थ है वीर्य्य (=हिम्मत) से तथा शरीर-बल और ज्ञान-बल से युक्त। अकिलासु = आलस्य रहित। 'चाहे चमड़ा, नस और हड्डी ही बाक़ी रह जाये'—इस प्रकार के चारों अङ्गों से सम्पूर्ण वीर्य्य से युक्त = आलस्य-रहित (कहा जाता है) विन्दे हदयस्स सन्ति का अर्थ है चित तथा हृदय की शीतलता का कारण होने से 'शान्ती' कहे जाने वाले ध्यान-विदर्शना-अभिज्ञा-अर्हत्व-मार्ग ज्ञान नामक आर्य-धर्म को प्राप्त करता है।

भगवान् ने ही, "भिक्षुओ!

आलसी मनुष्य दुःख से जीवन बिताता है, पाप, बुरे कर्म (=अकुशल धर्म) से युक्त होता है, बड़े सच्चे पदार्थों को देता है। (लेकिन) भिक्षुओ। प्रयत्न शील (मनुष्य) सुख से जीवन विताता है। पाप, बुराइयों (=अकुशल धर्मों) से रहित होता है, सच्चे सद्दार्थों की पूर्ति करता है। भिक्षुओ! ढील करने से उत्तम (=अग्रपद) की प्राप्ती नहीं होती*"—इस प्रकार अनेक सूक्तों में आलसी के जीवन का दुःखमय होना और प्रयत्न-शील के जीवन का सुखमय होना बतलाया है। यहाँ भी आग्रह रहित, प्रयत्न-शील, विदर्शक को उद्योग द्वारा होने वाले सुखमय जीवन को दिखाते हुये कहा है:—'इस प्रकार उद्योग बल से युक्त, मुनी निरालस हो चित्त की शान्ति प्राप्त करे"। (इसी लिये) यह कहा गया "जिस प्रकार उन व्यापारियों ने निरालस (हो) बालुका पथ में भी खोद

* संयुत्त निकाय, दस बल सूक्त।

कर जल पा लिया। इसी प्रकार इस धर्म (=शासन) में भी निरालस हो प्रयत्न करने वाला पण्डित-भिक्षु इस ध्यान आदि भेद से कही गई हृदय की शान्ति को प्राप्त करता है। इस लिये भिक्षु! (जब) पूर्व-जन्म में तू ने (केवल) पानी के लिये प्रयत्न किया, तो अब इस प्रकार के उबारने वाले (=नैर्याणिक) धर्म (=शासन) में मार्ग-फल की प्राप्ति के लिये क्यों हिम्मत हारता है?" इस प्रकार धर्मोपदेश के बाद (भगवान् ने) चारों (आर्य-सत्यों) की व्याख्या (=प्रकाशन) की। सत्यों की व्याख्या समाप्त होने पर वह हिम्मत हारा भिक्षु अर्हत्व (नामक) उत्तम-फल में प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने दोनों कहानियां सुना, तुलना कर, जातक का सारांश दिखायाः— "उस समय हिम्मत न हार कर पाषाण को तोड कर, जन समूह को पानी देने वाला (मेरा) प्रिय-सेवक (चूलुयस्थापक) यही हिम्मत हारा भिक्षु था। बाकी मंडली आज की बुद्ध-मंडली थी। प्रधान बंजारा तो मैं (स्वयं) ही था" कह (धर्म-) उपदेश समाप्त किया।

(इति) वरणुपथ जातक (२)

सेरिवाणिज जातक (१. १. ३)

'इधचेहि नं विराधेसि'—इस धर्म उपदेश को भी भगवान् ने श्रावस्ती में रहते हुये एक हिम्मत हारे भिक्षु के ही सम्बन्ध में कहा था। पूर्वोक्त प्रकार से ही भिक्षुओं द्वारा (बुद्ध के सम्मुख) लाने पर बुद्ध (=शास्ता) ने उस से कहाः— "भिक्षु! इस प्रकार के मार्ग-फल-दायक धर्म (=शासन) में साधु हो कर भी (यदि) तू हिम्मत हार बैठेगा, तो तू उसी प्रकार चिन्ता को प्राप्त होगा, जैसे लाख के मूल्य की सोने की थाली गंवा कर सेरि नामक बनिया। भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात के स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की अज्ञात बात (इस प्रकार) प्रकट कीः—

अब से पांच कल्प पूर्व बोधिसत्व सेरि नामक देश में कच्छपुट बनिया (के रूप में पैदा) हुये थे। वह सेरि वासी कच्छपुट बनिया एक (दूसरे) लोभी कच्छपुट बनिये के साथ नील वाहिनी नामक नदि पार कर, अन्धपुर नामक नगर में गया। (दोनों ने) नगर की गलियों को आपस में बांट लिया। बोधिसत्व अपने हिस्से की गलियों में सौदा बेचते; दूसरा बनिया अपने हिस्से की गलियों में।

उस समय नगर के एक सेठ का परिवार दरिद्र हो गया था। उस के जाति-सम्बन्धी (और उस का) धन नष्ट हो गया। (उस परिवार में) बाक़ी रह गई थी अपनी दादी के साथ एक लड़की। दोनों जने दूसरों की नौकरी-चाकरी (= मज़दूरी) करके पेट पालते थे। लेकिन, उन के घर में पहिले महासेठ के उपयोग में आने वाली दूसरे (साधारण) बरतनों में फैंकी हुई एक सोने की थाली थी। चिरकाल से उपयोग में न आने के कारण वह मैली हो गई थी। वह (दोनों) इतना भी नहीं जानती थीं कि यह सोने की थाली है। उस समय वह लोभी बनिया "कण्ठे लो, कण्ठे लो" (कहता) घूमता हुआ, उस घर के सामने आया। लड़की ने उसे देख कर अपनी दादी से कहा:—

"अम्म ! मुझे एक कण्ठा ले दो।"

"अम्म ! हम दरिद्र क्या देकर लेंगे"

"हमारे पास यह थाली जो है, यह हमारे किसी काम की नहीं है, इसे दे कर ले लें।"

उस ने व्यापारी को बुला कर, आसन पर बिठा, वह थाली दे कर कहा:—"आर्य ! इस (थाली) को लेकर, अपनी बहन को कुछ दे दो।"

व्यापारी ने थाली हाथ में ले, सोने की थाली होगी (सोच) उलट कर, थाली की पीठ पर सूई से रेखा खींचीं। 'सोने की है' जान, "इन से मुफत में ही थाली लेना चाहिये" (सोच) कहा, "यह कितने दाम की होगी ? यह तो आधे मास के मूल्य की भी नहीं है" (कह) थाली को भूमि पर फेंक, आसन से उठ कर चला गया।

(अपने में तै पाये नियम के अनुसार) एक के गली में हो आने पर, दूसरा उस गली में प्रवेश करता था। उस (बनिये) के बाद बोधिसत्त्व उस गली में प्रविष्ट हो 'कण्ठे लो, कण्ठे लो' कहते घूमते हुये उसी द्वार पर पहुंचे। उस लड़की ने फिर उसी प्रकार अपनी दादी को कहा। दादी ने पूछा:—"अम्म ! पहला आया व्यापारी थाली को ज़मीन पर पटक कर चला गया, अब क्या देकर 'कण्ठा' लें ?" लड़की ने उत्तर दिया:—" अम्म ! वह व्यापारी कठोर भाषी था, लेकिन यह सौम्य मूर्ति तथा मृदुभाषी है। आशा है कि यह थाली को ले लेगा।"

"अच्छा ! तो पुकार।"

उस ने उसे बुलाया। उस के घर में प्रवेश कर बैठने पर, (उन्होंने ने उसे) वह थाली दी।

उस ने 'थाली सोने की है' जान, कहाः— "अम्म ! यह थाली लाख के मूल्य की है। थाली के मूल्य का सामान मेरे पास नहीं।"

"आर्य ! पहले आया व्यापारी, यह आधे मासे के मूल्य की भी नहीं है, कह पृथ्वी पर पटक कर चला गया था। यह (अब) तेरे ही पुण्य (के प्रताप) से सोने की थाली हो गई होगी। हम इसे तुझे देते हैं। (इस के बदले में) हमें कुछ ही देकर, इसे ले जाइये।"

बोधिसत्त्व के हाथ में उस समय पांच सौ कार्षापण और पांच सौ के मूल्य का सौदा था। वह सब दे कर, 'मुझे यह तराजू, थैली, और आठ कार्षापण दें' मांग लेकर चले गये। और शीघ्र ही नदी के किनारे पहुंच, मल्लाह को आठ कार्षापण दे, नाव पर चढ चले।

तब लोभी बनिये ने फिर उन के घर जा कर कहाः—"लाओ वह थाली, मैं तुम्हें कुच्छ दे ही दूं।"

लड़की ने उस की हंसी उड़ाते हुए कहाः— "तू हमारी लाख के मूल्य की थाली को आधे मासे के मूल्य की भी नहीं बताता था। लेकिन तेरे स्वामी जैसा एक धर्मात्मा व्यापारी, हमें (एक) हजार दे कर उसे ले गया।"

यह सुन 'मैं ने लाख के मूल्य की सोने की थाली गवां दी, यह मेरी बड़ी हानि हुई' (सोच) अत्यन्त व्याकुल (=शोकग्रस्त) हो उठा। उस की स्मृति ठिकाने न रही, और वह पागल (=संज्ञा हीन) सा हो गया। उस ने अपने हाथ के कार्षापण और सौदे को घर के दरवाजे पर बखेर दिया। जो कुछ पहने-ओढ़े था, उसे भी उतार दिया, और वह तराजू की डण्डी की मुंगरी बना, बोधिसत्त्व के पीछे २ भागा। नदी के किनारे पहुंच, बोधिसत्त्व को (नाव में) जाते देख, मल्लाह से कहाः—" ओ! मल्लाह! मल्लाह! नाव को लौटाओ" बोधिसत्त्व ने "नाव को मत लौटाओ" कह मना किया।

उस बनिये को बोधिसत्त्व को निकल जाते देख, अत्यन्त शोक हुआ। उस का हृदय गर्म हो गया। और मूंह से खून निकल पड़ा, तथा हृदय (सूखे) कीचड़ की तरह फट गया। (इस प्रकार वह) बोधिसत्त्व के प्रति शत्रुता का भाव मन में रख, उसी क्षण मर गया।

बोधिसत्त्व के प्रति देवदत्त का यह पहला डाह हुआ। बोधिसत्त्व (भी) दान आदि पुण्य करके कर्मानुसार गति को प्राप्त हुए।

सम्यक् सम्बुद्ध ने यह धर्मोपदेश कह, सम्बुद्ध होने ही की अवस्था में यह गाथा कहीं:—

इध चेहि नं विराधेसि सद्धम्मस्स नियामतं ।
चिरं त्वं अनुतपे स्ससि सेरिवा यं व वाणिजो ॥

इस में 'इध चेहि नं विराधेसि सद्धम्मस्स नियामतं' का अर्थ है कि इस धर्म (=शासन) में इस सद्धर्म का नियम कहलाने वाला जो स्रोत-आपत्ति मार्ग है, उसे यदि तू प्राप्त नहीं करे-हिम्मत हार दे, तो यह नहीं मिलता। 'चिरं त्वं अनुतपे स्ससि' का अर्थ है, ऐसा होने पर चिर काल तक सोच करते हुये, रोते हुये, तयोगे अथवा हिम्मत हार देने के कारण, आर्य-मार्ग न पाने के कारण, चिर काल तक नरक आदि में उत्पन्न हो, नाना प्रकार के दुःखों को भोगेगा, संतप्त-परितप्त होगा, क्लेश को प्राप्त होगा। कैसे? "सेरिवा यं व वाणिजो।" सेरिवा—यह नाम है। यं वा का अर्थ है जैसे। यह कहा गया है कि "जिस प्रकार पूर्व-समय में सेरिवा नामक व्यापारी लाख के मूल्य की सोने की थाली पाकर, उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न न करके, उसे गवां कर, (पीछे) अफसोस को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार तू भी इस धर्म में, तैयार की गई सोने की थाली के सदृश, आर्य-मार्ग को प्रयत्न की ढिलाई के कारण न प्राप्त करके, उस से भ्रष्ट हो, चिरकाल तक अनुताप को प्राप्त करेगा। लेकिन यदि प्रयत्न नहीं छोड़ेगा, तो जैसे बुद्धिमान् व्यापारी ने सोने की थाली पाई, वैसे ही (तू भी) मेरे धर्म (=शासन) में नौ प्रकार के अलौकिक (=लोकोत्तर) धर्मों को प्राप्त करेगा।

इस प्रकार बुद्ध (—शास्ता) ने अर्हत्व-प्राप्ति को सर्वोच्च स्थान दे, यह धर्म उपदेश कर चारों (आर्य-) सत्यों की व्याख्या की। सत्यों की व्याख्या समाप्त होने पर, वह हिम्मत हारा भिक्षु अर्हत्व (नामक) सर्वोत्तम (=अग्र)-फल में स्थित हुआ। बुद्ध ने भी दोनों कहानियां सुना, तुलना कर, जातक का सारांश निकाला।

उस समय का मूर्ख व्यापारी देवदत्त था; और बुद्धिमान् व्यापारी तो मैं ही था (कह उपदेश समाप्त किया।

(इति) सेरिवाणिजजातक (३)

४. चुल्ल सेट्ठि जातक (१. १. ४.)

"आपके नायि मेधावी"—यह धर्म उपदेश भगवान् ने राजगृह के पास में स्थित जीवकम्बवन में विहार करते समय चूल पन्थक स्थविर को उद्देश करके कहा।

यहां पहले चुल्लपन्थक की उत्पत्ति कहनी चाहिये:— राजगृह में एक धनी सेठ की लड़की का अपने नौकर से संबंध था। दूसरों से अपने इस कर्म को छिपाने के लिये उस ने डर से नौकर से कहा:— "अब हम यहां नहीं रह सकते। यदि मेरे माता पिता इस दोष को जान लेंगें, तो मेरे टुकड़े कर देंगे। चलो हम विदेश चले चलें॥

(तब वह) हाथ में ही ले चलने योग्य कीमती कीमती (सारवान्) चीज़ ले (नगर के) प्रधान द्वार से निकल किसी दूसरों के अपरिचित स्थान में रहने की इच्छा से दोनों निकल भागे। उन के एक ही स्थान पर इकट्ठे रहते समय, दोनों के सहवास से (लड़की को) गर्भ हो गया। गर्भ के परिपक्व होने पर उस (लड़की) ने स्वामी से सलाह की:— गर्भ परिपक्व हो गया। जिस स्थान में जाति-सम्बन्धी नहीं हों वैसे स्थान पर प्रसव होने पर हम दोनों को बहुत कष्ट होगा। चलो पिता के घर (कुलगेह) चलें।"

वह 'आज चलें, कल चलें' करते करते दिन बिताने लगा। वह सोचने लगी:—यह मूर्ख अपने अपराध के भारीपन के कारण जाने से डरता है। माता पिता हर तरह से हितैषी होते हैं। चाहे यह जाये, या न जाये, मुझे जाना चाहिए। फिर पति के घर से बाहर गये रहते वक्त घर के सामान को ठीक ठाक कर दिया। फिर अपने पिता के घर को चलने की बात पड़ोसियों को कह, रास्ते पर चल पड़ी। तब उस आदमी ने घर लौट कर, स्त्री को न देख, पड़ोसियों से पूछा। पिता के घर जाने की बात सुन, जल्दी २ अनुगमन करते जा, उसे मार्ग में पाया। उस स्थान पर उसे प्रसव हो चुका था "भद्रे! क्या हुआ?" उस ने पूछा। "स्वामी! एक पुत्र हुआ है अब क्या करना चाहिये? जिस मतलब के लिये हम पिता के घर जा रहे थे, वह काम रास्ते में ही हो गया। अब वहां जाकर क्या करेंगे? चलो लौटें।"

फिर दोनों एक राय हो वापिस लौटे। उस बच्चे का नाम पन्थक रक्खा गया।

कुछ समय बाद उसे दूसरा गर्भ हो गया। (पहले की भांति यहां भी सारी कथा समझनी चाहिये)।

पन्थ (=मार्ग) में ही उत्पन्न होने के कारण, पहले उत्पन्न हुये (बालक) का नाम महापन्थक और दूसरे का चुल्लपन्थक कर दिया गया। दोनों बच्चों को

लेकर, वह अपने निवास स्थान पर लौट आये । बच्चे पन्थक ने दूसरे बच्चों को 'चाचा, दादा, दादी' कहते सुन कर माता से पूछा:—"दूसरे बच्चे, 'चाचा, दादा, दादी' कहते हैं; क्या हमारे नातेदार नहीं हैं?"

"हां तात! यहां तुम्हारे जाति के नहीं हैं; लेकिन राजगृह नगर में धन सेठी नाम के (तुम्हारे) दादा हैं; वहां तुम्हारे बहुत से नातेदार हैं।"

"अम्मा वहां हम किस लिये नहीं जाते हैं?"

उस ने पुत्र को अपने न जाने का कारण कह, पुत्रों के बार २ कहने पर स्वामी से कहा:—"यह बच्चे बहुत दुःखी हो रहे हैं । क्या माता पिता हमें देख कर (हमारा) मांस थोड़े ही खा लेगें? आओ! इन बच्चों को पिता का घर दिखला दें।"

"मैं सामने न जा (= खड़ा हो) सकूंगा। हां! तुझे वहां ले जाऊंगा।"

"आर्य! अच्छा जैसे भी हो बच्चों को पितृ-कुल दिखलाना है।"

दोनों जने बच्चों को ले कर, क्रमशः राजगृह पहुंचे । नगर-द्वार पर एक शाला में ठहरे । माता पिता के पास संदेश भेजा—"बच्चों की मां (अपने) दो बच्चों को लेकर आई है।"

उन्हों ने वह संदेश सुन कर कहला भेजा:—संसार में जन्म-मरण के चक्कर में घूमते हुये (ऐसा) कोई नहीं, जो (कभी न कभी) पुत्र या पुत्री न बना हो। उन दोनों ने हमारा बड़ा अपराध किया है । इस लिये वह हमारी आंखों के सामने नहीं खड़े हो सकते। इतना धन लेकर वह दोनों (किसी) सुख की जगह जाकर रहें; लेकिन बच्चों को यहां छोड़ जायें।

"सेठ की कन्या ने माता पिता के भेजे धन को लिया, और बच्चों को आये हुये दूतों के साथ भेज दिया। बच्चे, (अपने) नाना के कुल में पलने लगे।

उन दोनों में से चुल्लपन्थक तो (अभी) बहुत छोटा था, लेकिन महापन्थक (अपने) दादा के साथ बुद्ध का धर्म उपदेश सुनने जाता था। नित्य भगवान् (शास्ता) के सम्मुख (जाकर) धर्मोपदेश सुनने से, उस का मन साधु बनने को चाहा। उसने नाना से कहा:— "यदि आप आज्ञा दें, तो मैं भिक्षु बनूं।"

"तात! क्या कहा? मेरे लिये, सारे लोक की प्रव्रज्या से बढ़कर, तेरी प्रव्रज्या श्रेष्ठ है। यदि कर सके तो तात! साधु बन जा।" (कह) स्वीकार कर बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने पूछा:—"क्यों महासेठ! क्या पुत्र मिला है?"

"हाँ भन्ते ! यह बालक मेरा संबन्धी है, कहता है कि आप के पास साधु बनूंगा।"

"बुद्ध ने एक भिक्षु को बालक को प्रव्रजित करने की आज्ञा दी । स्थविर ने उस (बालक) को त्वच्-पञ्चक * कर्मस्थान कह प्रव्रजित किया ।

उस ने बहुत से बुद्ध के उपदेश सीख (बीस) वर्ष की अवस्था में ही † उपसम्पदा प्राप्त की । उपसम्पन्न होने पर भली प्रकार मन देकर अभ्यास करते हुये अर्हत्व को प्राप्त हुआ । ध्यान-सुख और मार्ग-सुख से समय व्यतीत करते उस ने सोचा:—'क्या मैं यह सुख चुल्लपन्थक को भी दे सकता हूं ?' फिर नाना सेठ के पास जा कर कहा:— महासेठ ! यदि तुम्हें स्वीकार हो, तो मैं इस बालक को प्रव्रजित करूं ?"

"भन्ते ! प्रव्रजित करें ।"

स्थविर ने चुल्लपन्थक बच्चे को प्रव्रजित कर, दस शीलों में स्थापित किया । चुल्लपन्थक सामणेर प्रव्रजित होते ही मन्द बुद्धि हो गया ।

"पदुमं यथा कोकनदं सुगन्धं
पातो सिया फुल्लमवीतगन्धं,
अङ्गीरसं पस्स विरोचमानं
तपन्तमादिच्चमिवन्तलिक्खे ।"

("जैसे रक्त कमल या सुगन्धित कोकनद आकाश में प्रकाशमान् सूर्य क देख सुगन्धित और प्रफुल्लित होता है । उसी प्रकार आकाश में तपने वाले सूर्य के सदृश प्रकाशयुक्त अंगिरस गोत्रीय (—बुद्ध) को देख कर (......... ।")

इस एक गाथा को चार महीनों में भी न सीख सका । यह भिक्षु (पूर्व में) काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय प्रव्रजित हुआ था । (अपने) बुद्धिमान् (होने के अभिमान में) एक मन्द-बुद्धि भिक्षु के पांती (=बुद्ध-वचन) सीखने के समय उस का मज़ाक उड़ाया । उस परिहास से उस भक्षु को इतनी लज्जा आई कि वह भिक्षु पाठ याद ही न कर सका, न स्वाध्याय हि कर सका । उसी कर्म के फल से (इस जन्म में) वह भिक्षु प्रव्रजित होते ही मन्द-

* भिक्षु (= श्रामणेर) की प्रव्रज्या के समय केश, लोम, नख, दन्त तथा त्वच्, इन पांच शब्दों का सांकेतिक उपदेश ।

† बीस वर्ष से कम आयु रहने पर, कोई भी उपसम्पन्न भिक्षु नहीं हो सकता ।

बुद्धि हो गया। याद किये पद, को वह अगले पद के सीखते समय भूल जाता था। उस समय एक ही गाथा को कण्ठस्थ करने का प्रयत्न करते उसे चार महीने बीत गये। तब उसे महापन्थक ने कहाः—"पन्थक ! तू इस धर्म (=शासन) के योग्य नहीं है। चार महीने में एक गाथा भी तू नहीं सीख सका; तो प्रव्रज्या का उद्देश्य किस प्रकार पूरा करेगा ? निकल यहां से"—(कह) विहार से निकाल दिया।

बुद्ध शासन के प्रति स्नेह से चुल्लपन्थक गृहस्थ न होना चाहते थे। महापन्थक उस समय भोजन-प्रबन्धक (=भत्तउद्देसक) थे। (एक दिन) कौमार-भृत्य जीवक* बहुत गन्धमाला सहित अपने अम्बवन में गया, (वहां) बुद्ध की पूजा कर उसने धर्मोपदेश सुना। आसन से उठ, बुद्ध को प्रणाम कर, महापन्थक के पास जा कर पूछाः—"भन्ते ! (आजकल) भगवान् के साथ कितने भिक्षु हैं"

"पांच सौ भिक्षु हैं।"

"भन्ते। बुद्ध सहित पांचों सौ भिक्षुओं के साथ कल आप मेरे घर पर भिक्षा ग्रहण करें।" स्थविर ने उत्तर दिया

"उपासक ! चुल्लपन्थक नामक (भिक्षु) मन्द-बुद्धि है, मूढ़ है, उसे छोड़ शेष सब का निमन्त्रण स्वीकार करता हूं।"

चुल्लपन्थक ने सोचाः—"स्थविर इतने भिक्षुओं का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं; किन्तु मुझे बाहर रख कर, स्वीकार करते हैं। निस्सन्देह मेरे भाई का मन मेरी ओर बिगड़ा हुआ है। अब मुझे इस शासन (में रहने) से क्या (लाभ) ? गृहस्थ हो कर दान आदि पुण्य करते जीवन व्यतीत करूंगा।"

सो वह एक दिन प्रातः ही गृहस्थ बनने की इच्छा से चल दिया। बुद्ध ने प्रातःकाल ही लोक के ऊपर विचार करते, (अपने दिव्य-ज्ञान से) इस बात को जान लिया; और चुल्लपन्थक से भी पहले, उस के जाने के मार्ग के द्वार वाले कमरे में जा कर टहलने लगे। चुल्लपन्थक ने घर से निकल कर, बुद्ध को देख, (उन के) पास जा वन्दना की। बुद्ध ने पूछाः—"चुल्लपन्थक ! इस समय तू कहां जा रहा है।"

"भन्ते ! मेरे भाई ने मुझे निकाल दिया है, इस लिये मैं गृहस्थ होने जा रहा हूं।"

"चुल्ल पन्थक ! तू मेरे आधीन (=पास) प्रव्रजित हुआ है। यदि भाई ने

---

* बुद्ध का समकालीन प्रसिद्ध वैद्य।

निकाल दिया, तो तू मेरे पास क्यों नहीं आया ? आ, गृहस्थ हो कर क्या करेगा। मेरे समीप रहना।" (कह) चुल्लपन्थक को ले कर गन्धकुटी के सामने बिठा कर कहाः—"चुल्लपन्थक पूर्व दिशा की ओर मुंह करके इस कपड़े के टुकड़े पर 'रजो हरणं रजो हरणं' कह, परिमार्जन करते हुये यहीं (बैठे) रहना।" (और फिर) ऋद्धि-बल से निर्मित कपड़े का एक परिशुद्ध टुकड़ा, उसे देकर, (उचित) समय की सूचना मिलने पर (स्वयं) भिक्षुसंघ सहित जीविक के घर जा कर बिछे आसन पर बैठे।

चुल्लपन्थक भी सूर्य्य की ओर देखते, तथा उस वस्त्र के टुकड़े से 'रजो हरणं रजो हरणं' कह पोंछते बैठा रहा। पोंछते २ उसका वह वस्त्र का टुकड़ा मैला हो गया। तब वह सोचने लगाः—"यह वस्त्र का टुकड़ा अति परिशुद्ध (था), लेकिन इस शरीर के कारण, अपने पूर्व-स्वरूप को छोड़ इस प्रकार मैला हो गया।" (यह सोच) उस ने "सभी संस्कार अनित्य हैं" का ख्याल कर, संस्कारों के क्षय और विकार पर विचार करते हुए विदर्शना-भावना (=समाधि) बढ़ाई।

बुद्ध ने 'चुल्लपन्थक का चित्त विदर्शना-भावना पर आरुढ़ हुआ' जान, 'चुल्लपन्थक ! तू यह ही मत सोच कि यह वस्त्र का टुकड़ा रज (=धूलि, मैल) से रञ्जित हो गया। तेरे अपने अपने अन्दर जो राग आदि मैल हैं, उन को दूर कर।" कह, सामने बैठ प्रकाश फैलाते हुये से, दिखाई देते हुये, हो कर यह गाथायें कहीं:-

रागो रजो न च पन रेणु वुच्चति
रागस्सेते अधिवचनं रजोति,
एतं रजं विप्पजहित्व भिक्खवो
विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने॥
दोसो रजो न च पन रेणु वुच्चति
दोसस्सेतं अधिवचनं रजोति,
एतं रजं विप्पजहित्व भिक्खवो
विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने"ति।
मोहो रजो न च पन रेणु वुच्चति
मोहोस्सेतं अधिवचनं रजोति,
एतं रजं विप्पजहित्व भिक्खवो
विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने"ति

राग को (असल) रज (=धूलि) कहते हैं, न कि रेणु को । रज राग का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर रज-रहित के शासन में विचरते हैं।

द्वेष (=क्रोध) को रज कहते हैं, न कि रेणु को। रज द्वेष का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर रज-रहित के शासन में विचरते हैं।

मोह को रज कहते हैं, न कि रेणु को। रज मोह का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर, मोह रहित के शासन में विचरते हैं॥"

गाथाओं की समाप्ति पर चुल्लपन्थक को प्रति सम्भिदा—ज्ञान के सहित अर्हत्व प्राप्त हुआ; और प्रति सम्भिदा-ज्ञान के साथ ही साथ तीनों पिटकों का भी ज्ञान हो गया।

उस ने पूर्व (-जन्म) में राजा हो, नगर की प्रदक्षिणा करते हुए, माथे से पसीना गिरने पर, शुद्ध वस्त्र से माथे को पूंछा। वस्त्र मैला हो गया 'इस शरीर के कारण इस प्रकार का परिशुद्ध वस्त्र अपने पूर्व-स्वरूप को छोड़ मैला हो गया' सोच उसे, '*सब संस्कार (=निर्माण) अनित्य हैं'—ऐसी अनित्य-बुद्धि हुई। इसी कारण से (इस जन्म में भी) उस (की अर्हत्व-प्राप्ति) का साधन (=प्रत्यय) 'रजो हरणं' ही हुआ!

कौमारभृत्य जीवक बुद्ध के लिये दक्षिणा का जल लाया। बुद्ध ने 'जीवक! (अभी) विहार में भिक्षु हैं' कह हाथ से पात्र ढक दिया। महापन्थक ने कहा:—भन्ते! (अब) विहार में (और) भिक्षु नहीं है।"

शास्ता ने कहा:— "जीवक! है।"

जीवक ने आदमी भेजा, 'भणे! जाओ, देखो तो विहार में भिक्षु है या नहीं?'

उस समय चुल्लपन्थक ने, "मेरा भाई, 'विहार में भिक्षु नहीं है' कहता है, सो उसे विहार में भिक्षुओं का होना दिखाऊंगा"—सोच, सारे आम्रवन को भिक्षुओं से भर दिया। कुछ भिक्षु चीवर-कर्म (चीवर का सीना) कर रहे थे। कुछ भिक्षु चीवर रंग रहे थे। कुछ मिल कर पाठ कर रहे थे। इस प्रकार एक दूसरे से भिन्न हज़ारों भिक्षु बना दिये। उस आदमी ने बहुत से भिक्षुओं को देख, लौट कर जीवक से कहा:—"आर्य! सारा आम्रवन भिक्षुओं से भरा पड़ा है।" उस समय चुल्ल-पन्थक स्थविर:—

---

* अनिच्चा वत संखारा।

"सहस्सक्खत्तुं अत्तानं निम्मिणित्वान पन्थको,
निसीद म्बवने रम्मे याव कालप्पवेदना" ति ॥

(चुल्लपन्थक अपने को भिन्न २ हज़ार प्रकार का बना, (भोजन के) समय की सूचना मिलने तक रमणीय आम्रवन में बैठे रहे)।

तब बुद्ध ने उस पुरुष से कहाः—"विहार जाकर कहो कि शास्ता चुल्लपन्थक को बुलाते हैं।"

उस के जाकर वैसा कहने पर, सहस्रों मुखों से "मैं चुल्लपन्थक, मैं चुल्लपन्थक," की (आवाज) उठी।

आदमी ने लौट कर कहाः— 'भन्ते ! सब चुल्लपन्थक ही हैं।"

"अच्छा ! तू जाकर, जो पहले बोले कि मैं चुल्लपन्थक हूं, उस का हाथ पकड़ लेना। बाकी सब अन्तर्धान हो जायेंगे।"

उस (आदमी) ने वैसा ही किया। उसी समय हज़ार के हज़ार भिक्षु अन्तर्धान हो गये। स्थविर आदमी के साथ आये। बुद्ध ने भोजन के बाद जीवक को बुला कर कहाः—"जीवक ! चुल्लपन्थक का पात्र ग्रहण कर। चुल्लपन्थक तुझे (दान-) अनुमोदन करेगा।"

जीवक ने वैसा ही किया। स्थविर ने सिंह नाद करते हुये तरुण-सिंह की तरह तीनों पिटकों का सारांश निकाल कर अनुमोदन किया।

बुद्ध भिक्षु संघ के साथ आसन से उठ, विहार में गये। वहां भिक्षुओं ने (अपना मध्यान्हिक) सन्मान प्रदर्शित किया। फिर आसन से उठ कर (भगवान् ने) गन्ध कुटी के सामने खड़े हो, भिक्षुसंघ को सुगतोपदेश (=बुद्धोपदेश) दे, **कर्मस्थान** * बता, भिक्षुसंघ को उत्साहित कर, सुरभि गन्ध से सुगन्धित गन्ध कुटि में प्रवेश कर दाहिनी करवट लेट सिंह-शैय्या से शयन किया। तब शाम को, धर्म-सभा में, भिक्षु इधर उधर से एकत्र हुये। लाल बानात की क़नात पसारते से, बैठ कर, वह बुद्धता के गुण को वर्णन कर रहे थेः—"आयुष्मानो ! महापन्थक ने चुल्लपन्थक की प्रवृत्ति (=अध्यास) न जानी; और 'यह चार महीनों में एक भी गाथा कण्ठस्थ न कर सका, इसलिये मूढ़ है' सोच विहार से निकाल दिया। लेकिन सम्यक् सम्बुद्ध ने अतुलनीय धर्मराज लेने के कारण,

* योग विधियां।

प्रातःकाल और मध्यान्ह के भोजन के समय भीतर ही उसे प्रतिसम्भिदा-ज्ञान सहित अर्हत्व प्रदान कर दिया; और प्रति-सम्भिदा-ज्ञान के साथ ही उसे त्रिपिटिक (का ज्ञान) भी आगया। अहो! बुद्धों के बल की महानता!"

तब भगवान् ने यह जान कि धर्म-सभा में इस प्रकार की बात-चीत हो रही है, सोचा कि आज मुझे भी वहां जाना चाहिये। उन्होंने बुद्ध-शय्या से उठ सुरक्त संघाटी धारण की; बिजली के सदृश (चमकदार) पट्टी (=काय बंधन) को बांधा; लाल बानात (कम्बल) से अपने महा-चीवर को पहना; और फिर सुगन्धित गन्ध-कुटि से निकले। मस्त हाथी का पीछा करने वाले सिंह के समान, अनन्त बुद्ध-लीला के साथ, वह धर्म सभा में पहुंचे। (वहां सभा में जाकर) अलंकृत मण्डप के बीच में अच्छी तरह बिछाये श्रेष्ठ बुद्धासन पर चढ़, छः वर्ण की बुद्ध-किरणें फैलाते, समुद्र-गर्भ को प्रकाशित करने वाले, युगन्धर पर्वत के शिखर पर स्थित बाल-सूर्य्य की भांति, आसन के बीच में विराजमान् हुए। सम्यक् सम्बुद्ध के आते ही भिक्षु संघ बात चीत छोड़ चुप हो गया। शास्ता ने मृदु, मैत्री पूर्ण चित्त से परिषद् को देख कर सोचाः—"यह परिषद् अति सुन्दर लगती है। किसी एक में भी हाथ की चञ्चलता नहीं; पांव की चञ्चलता नहीं; खांसने का शब्द वा छींकने का शब्द नहीं। सभी बुद्ध का गौरव करने वाले हैं। सभी बुद्ध के तेज से प्रभावित हैं। मेरे आयु-कल्प तक भी चुपके रहने पर, यह पहले बोलना आरम्भ न करेंगे। मुझे ही बात चीत आरम्भ करने का विषय ढूंढना चाहिये।" अपने ही प्रथम बोलने का निश्चय कर, भगवान् ने मधुर ब्रह्म-स्वर से भिक्षुओं को आमन्त्रित कर पूछा:— "भिक्षुओ! इस समय किस बात चीत में लगे थे? इस समय क्या कथा चल रही थी?"

"भन्ते! यहां हम कोई और फजूल (=तिरश्चीन-कथा) नहीं कर रहे थे। हम यहां बैठे आप का गुणानुवाद ही कर रहे थे, कि "आयुष्मानो! महा-पन्थक ने चुल्लपन्थक की प्रवृत्ति ....अहो! बुद्धों के बल की महानता!!!"

शास्ता ने भिक्षुओं की बात सुन कर कहाः—"भिक्षुओ! इसी जन्म में चुल्लपन्थक ने मेरे कारण धर्म में महानता (नहीं) प्राप्त की है, पूर्व जन्म में भी मेरे कारण उसने भोगों (=ऐश्वर्य्य) में महानता प्राप्त की थी।"

भिक्षुओं ने भगवान् से, उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की। तब भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात को प्रकट कियाः—

पूर्व काल में, काशी राष्ट्र के, बाराणसी (नगर) में ब्रह्मदत्त (राजा) के

राज्य करते समय, बोधिसत्त्व एक सेठ-परिवार में उत्पन्न हुये थे, । वयस्क होने पर श्रेष्ठी * (=सेठी) का पद पा चुल्लसेठी नाम से प्रसिद्ध हुये । वह पण्डित थे, =व्यक्त थे, सब लक्षणों के जानकार थे । एक दिन उन्हों ने राजा की सेवा में जाते समय गली में एक मरे चूहे को देखा । उसी समय नक्षत्र का विचार करके कहाः—बुद्धिमान् (चक्षुमान्) कुलपुत्र इस चूहे को ले जाकर, (अपने) परिवार का पालन कर सकता है; अथवा जीविकोपार्जन के पेशे (=कर्मान्त) में लगा सकता है ।

एक दरिद्र कुलपुत्र ने श्रेष्ठी की बात सुन, "यह बिना जाने नहीं कह रहा है" (सोच उस चूहे को एक दुकान पर ले जा बिल्ली के (खाने के) लिये दे डाला । उस के लिये उसे एक काकणी (=दस कौडी का सिक्का) मिली । उस काकणी से उस ने गुड़ खरीदा । फिर एक बरतन में पानी ले आरण्य से आते हुये मालियों को देख, उन्हें थोड़ा २ गुड़ और पानी देने लगा । उन्हों ने उसे एक २ मुठ्ठी फूल दिये । अगले दिन वह उन फूलों को बेचकर प्राप्त किये मूल्य से, फिर गुड़ और पानी का घड़ा ले कर, पुष्प-उद्यान में ही चला गया । मालियों ने उसे आधे पुष्प-वृक्ष दे दिये ।

थोड़े समय में इस उपाय से उस ने आठ कार्षापण प्राप्त कर लिये । एक दिन ऐसा हुआ कि आंधी आई; और हवा से राजोद्यान में बहुत सी सूखी लकड़ी शाखायें और पत्ते गिर पड़े । माली नहीं जानता था कि उन को कैसे हटवाये । उस ने आकर माली से कहाः—"यदि ! यह लकड़ी-पत्ते मुझे दो, तो मैं इन सब को यहां से उठवा ले जाऊं" । "आर्य ! ले जाओ ।" (कह) उस ने स्वीकार कर लिया । तब वह चुल्ल—अन्तेवासिक (=छोटा शिष्य) छोटे लड़कों के खेलने की जगह पर गया । उन्हें (थोड़ा थोड़ा) गुड़ दे, थोड़ी ही देर में लकड़ी-पत्ते उठवा कर उद्यान के द्वार पर ढेर लगवा लिया । उस समय राजकीय कुम्हार राज-परिवार के बर्तनों को पकाने लिये लकड़ी ढूंढ रहा था । राजोद्यान के द्वार पर जा उस ने उन (लकड़ी-पत्तों) को देखा । उसने उन्हें खरीद लिया । उस दिन चुल्ल-अन्तेवासिक को लकड़ी के बेचने से सोलह कार्षापण और चाटी तथा दूसरे पांच बर्तन मिले । (इस प्रकार) धीरे धीरे उस के पास चौबीस कार्षापण हो गये । उस ने सोचा 'मेरे लिये यह एक (अच्छा) ढंग है' । वह नगर-द्वार के समीप एक पानी की चाटी रख पांच सौ घसियारों (=तृणहारकों) को पानी पिलाने लगा ।

* उस समय का एक राजकीय पद जो कि नगर के अधिक धनी पुरुष को मिलता था ।

वे पूछने लगे "सौम्य तू ने हमारा बहुत उपकार किया है। हम तेरे लिये क्या करें?"

"काम पड़ने पर कहूंगा (करना)"—कह, इधर इधर घूमते हुये, उस ने स्थलपथकर्मिक (स्थल-मार्ग के कर्मचारी) * से और जल-मार्ग के कर्मचारी * (=जलपथकम्मिक) से मित्रता कर ली।

(एक दिन) स्थलपथकर्मिक ने उस से कहा:—"कल इस नगर में, घोड़ों का व्यपारी, पांच सौ घोड़े ले कर आने वाला है"। उस ने उस की बात सुन घसियारों से कहा:—"आज मुझे (सब जने) एक २ घास की पूली (=तृणकलाप) दो, और मेरा घास न बिकने तक, अपना घास न बेचो"। उन्हों ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और घास के पांच सौ पूले ला कर, उस के घर पर डाल दिये। घोड़ों के व्यापारी ने सारे नगर में (ढूंढा)। किसी दूसरी जगह घोड़ों के लिये उसे चारा न मिला। (अन्त में) उसे एक सहस्र देकर, उस ने (वह) घास खरीदी।

कुछ दिन बाद, उस के जलपथकर्मिक मित्र ने कहा कि घाट (=पत्तन-बन्दरगाह) पर बड़ी नाव आई है। उसने सोचा 'यह एक (अच्छा) मौका है' उसने आठ कार्षापण में सब सामान से सुसज्जित एक रथ किराये पर लिया। और बड़ी सजधज के साथ नाव के घाट पर जा, नाविक को एक अंगूठी पेशगी दे (उस से) थोड़ी दूर पर, क़नात तनवा, (भीतर) बैठ, आदमियों से कह दिया "जब बाहर से व्यापारी आयें, तो उन्हें तीन देहलियों से लिवा कर सूचित करना।"

"नाव आई है' सुन, बाराणसी के सौ व्यापारी सामान खरीदने के लिये आये। 'यहां से तुम्हें सामान नहीं मिल सकता, अमुक स्थान के महान् व्यापारी ने पेशगी दी है, सुन, वह उस के पास आये। सेवकों ने पूर्व आज्ञा के अनुसार उन्हें तीन देहलियों में से लिवा कर सूचना दी।

वे व्यापारी सौ थे। उन में से प्रत्येक ने एक २ सहस्र देकर, उसे नाव में भागीदार बनाया। फिर एक एक सहस्र देकर, अपने २ हिस्से (=के माल) को छुड़ा लिया। (इस प्रकार) चुल्ल-अन्तेवासिक दो लाख ले बाराणसी आया। कृतज्ञता प्रकट करने की इच्छा से वह एक लाख साथ ले चुल्ल सेठी के पास गया। श्रेष्ठी ने पूछा:—"तात! क्या करके तू ने यह धन कमाया।"

उस ने कहा:—"आपके ही बताये उपाय से चार महीने के अन्दर यह धन कमाया।" और मरे चूहे से आरम्भ करके सब कहानी कह डाली। चुल्लकमहासेठी ने 'इस प्रकार के तरुण को किसी दूसरे के पास छोड़ना अच्छा नहीं;' सोच उसे

---

* उस समय के राज-पदाधिकारी।

अपनी तरुण कन्या दे सारे परिवार का स्वामी बना दिया।

श्रेष्ठी की मृत्यु के बाद, उसे उस नगर के श्रेष्ठी का पद प्राप्त हुआ। बोधिसत्त्व भी कर्मानुसार परलोक सिधारे। सम्यक् सम्बुद्ध ने यह धर्मोपदेश कह, बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथा कही:—

अप्पकेनापि मेधावी पाभतेन विचक्खणो,
समुट्ठापेति अत्तानं अणुं अग्गिं व सन्धमंति।

((चतुर) मेधावी (पुरुष) थोड़ी सी भी आग को फूंक मार कर बढ़ा लेने की की तरह, थोड़े से भी मूलधन से अपने को उन्नत कर लेता है॥)

इस में 'अप्पकेनापि' का अर्थ है थोड़े से भी = परिमित से भी। मेधावी = प्रज्ञावान्। पाभतेन=सामान का मूल्य। विचक्खणो = व्यवहार-कुशल। समुट्ठापेति अत्तानं का अर्थ है बहुत सा धन तथा यश कमा कर, उस पर अपने को प्रतिष्ठित करता है। कैसे? अणुं अग्गिं वं सन्धमं, जैसे बुद्धिमान् आदमी थोड़ी सी आग को भी क्रम से गोबर का चूर्ण आदि डालकर, तथा मूंह से फूंक मार कर उठा लेता है, बढ़ा लेता है, बड़ा अग्नि-पुञ्ज बना लेता है। उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य थोड़ा भी मूल प्राप्त कर, नाना (प्रकार के) उपायों से धन और यश की वृद्धि करता है, और वृद्धि कर, उस पर अपने को प्रतिष्ठित करता है अथवा उस महान् धन और यश से अपने को उठाता है, प्रसिद्ध करता है, मशहूर करता है।"—यह अर्थ है।

इस प्रकार भगवान् ने, "भिक्षुओ! इस जन्म में चुल्लपन्थक ने मेरे कारण धर्म में धर्म की महानता को प्राप्त किया, और पूर्व जन्म में मेरे कारण भोगों (=ऐश्वर्य) की महानता तथा यश की महानता को प्राप्त किया" कह, इस धर्मोपदेश को स्पष्ट कर, दोनों कहानियां सुना, तुलना करके जातक का सारांश निकाल दिखाया:—"उस समय का चुल्लअन्तेवासिक (यही) चुल्लपन्थक था; और चुल्लमहासेठी तो मैं (स्वयं) ही था" कह देशना समाप्त की।

(इति) चुल्लसेट्ठि जातक ॥४॥

५ तण्डुलनालि जातक (१।१।५)

'किमग्घति तण्डुलनालिका'ति=तण्डुल-नालि का क्या मूल्य है?......' यह (उपदेश) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय लाल-उदायी स्थविर को उद्देश करके कहा।

उस समय मल्लपुत्र आयुष्मान् दब्ब संघ के भोजन प्रबन्धक (=भत्तुद्देसक) थे। जब प्रातः काल वह भोजन की शलाकायें* बांटते तो लाल-उदायी स्थविर को, किसी दिन अच्छा भोजन मिलता, किसी दिन खराब। जिस दिन उन्हें खराब भोजन मिलता, वह भोजन की शलाकायें बांटने की शाला में गड़बड़ करते; और कहते 'क्या दब्ब ही शलाका देना जानता है, हम नहीं जानते'। उस के शलाका-शाला में गड़बड़ करने से उसे ही शलाकाओं की मुष्टि दे दी गई, "हन्त! लो तुम ही शलाकायें बांटो"। उस दिन से वह ही सङ्घ को (भोजन की) शलाकायें बांटने लगा। बांटते समय वह न जानता था—यह अच्छे भोजन (की आका) है और यह खराब भोजन (की आका) है। यह भी न जानता था—अमुक वर्ष की † आयु तक के भिक्षुओं को अच्छा भात दिया जा चुका है, और अमुक-वर्ष की आयु तक के भिक्षुओं को खराब। 'अमुक-वर्षों' की सीमा (=ढितिका) करते हुये भी 'अमुक-वर्ष-तक की सीमा की जा चुकी है'—का ख्याल न रखता था। भिक्षुओं के स्थान के बारे में, 'इस स्थान पर, इस (आयु)-सीमा तक के भिक्षु ठहरें,' इस स्थान पर, इस सीमा तक के भिक्षु ठहरें, करके पृथ्वी या दीवार पर रेखा खेंचता था। अगले दिन शलाका-शाला में भिक्षु (पहले दिन से) कम हो जाते वा अधिक होजाते। उनके कम होने पर रेखा नीचे हो जाती, अधिक होने पर ऊपर। वह सीमा (=ठितिका) का ख्याल न कर, रेखा के चिन्ह के अनुसार शलाका बांटता। तब उसे भिक्षु लोग कहते—"आयुष्मान् लालउदायी! रेखा चाहे ऊपर हो, चाहे नीचे, लेकिन अच्छे भोजन मिल चुकने की सीमा अमुक-वर्ष के भिक्षुओं तक है, और खराब-भोजन मिल चुकने की सीमा अमुक-वर्ष के भिक्षुओं तक।" (लालउदायी) भिक्षु खीझ कर उत्तर देता :— "यदि ऐसा है, तो यह रेखा यहां किस लिए है? मैं तुम्हारा विश्वास थोड़े ही करूंगा मैं (तो) इस लकीर का विश्वास करूंगा।"

तब छोटे २ श्रामणेरों ने उसे, "(आयुष्मान्! लालउदायी) तेरे शलाका बांटने पर भिक्षुओं के लाभ की हानि होती है। तू बांटने के योग्य नहीं। यहां से निकल" कह, शलाका-बांटने की शाला से निकाल दिया। उस समय

*गृहस्थों की ओर से परिमित आदमियों का निमंत्रण होने पर भिक्षुओं के चुनने में पेंसिल जैसी लकड़ी की शलाकाओं का वितरण होता था।

†भिक्षुओं की आयु उनकी उपसम्पदा से गिनी जाती है।

शलाका-शाला में बड़ा कोलाहल हुआ।

उसे सुन बुद्ध ने आनन्द स्थविर से पूछा:—"आनन्द ! शलाका-शाला में बड़ा कोलाहल है । यह क्या शोर है ?" स्थविर ने तथागत को वह बात बताई ।

शास्ता ने कहा:—"आनन्द ! अपनी मूर्खता से लालउदयी न केवल इस जन्म में दूसरों के लाभ की हानि कर रहा है; बल्कि (इसने) पहले भी ऐसा किया है ।" स्थविर ने इस बात को स्पष्ट करने के लिए प्रार्थना की । भगवान् ने पूर्व-जन्म की गुप्त बात प्रकट की :—

"पूर्व समय में, काशी राष्ट्र के बाराणसी (नगर) में ब्रह्मदत्त (नामक) राजा राज्य करते थे । उस समय हमारे बोधिसत्व उस (राजा) के अर्घ-कारक (=मूल्य निश्चित करने वाले Controller of the prices) थे । (वे) हाथी, घोड़े, मणि, सुवर्ण आदि का मूल्य (निश्चित) करते और मूल्य करवा चीज़ के मालिकों को चीज़ का उचित मूल्य दिलवाते थे । लेकिन राजा लोभी था, उसने लोभी-स्वभाव होने के कारण सोचा:—"यदि यह अर्घकारक मूल्य (निश्चित) करता रहा, तो थोड़े ही समय में मेरे घर का धन नष्ट हो जायेगा । (इस लिये) किसी दूसरे को अर्घकारक रक्खूंगा" । उसने खिड़की खोल कर राजांगन में देखते हुए, एक लोभी, मूर्ख, गंवार आदमी को वहां से जाते देख कर सोचा—"यह मेरा दाम लगाने का काम कर सकेगा" । और फिर उसे बुला कर पूछा—"अरे ! क्या तू हमारा दाम लगाने का काम कर सकेगा ?"

"देव ! कर सकता हूं" । राजा ने अपने धन की रक्षा करने के लिये उस मूर्ख आदमी को अर्घ-कारक के पद पर स्थापित किया । उस समय से वह मूर्ख अर्घ-कारक हाथी, घोड़े आदि का दाम लगाते वक्त, दाम को घटा कर जैसा मन में आता, वैसा कहता था । उस के उस पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण, जो कुछ वह कहता, वही चीजों का मूल्य होता ।

उस समय एक पंजाबी (=उत्तरापथक) घोड़े का व्यापारी पांच सौ घोड़े लेकर आया । राजा ने उस आदमी को बुलवा कर घोड़ों का दाम लगवाया । उसने पांच सौ घोडों का दाम एक तण्डुल नालिका किया और फिर "घोड़ों के व्यापारी को एक तण्डुल नालिका दे दो" कह, घोड़ों को (राजकीय) अश्व-शाला में भिजवा दिया । घोड़े के व्यापारी ने पुराने अर्घ-कारक के पास

जा, उसे समाचार सुनाकर पूछा, कि अब क्या करना चाहिये ?

उसने उत्तर दिया—"उस आदमी को रिशवत देकर, उस से कहो—कि हमारे घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है; यह तो हमें मालूम हो गया, अब हम यह जानना चाहते हैं कि आप से जो तण्डुल-नालिका मिली है, उसका क्या मूल्य है ? क्या आप राजा के सम्मुख खड़े हो कर, कह सकेंगे कि तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ?, यदि कहे कि 'कह सकता हूं' तो उसे राजा के पास लेकर आओ। मैं भी वहां आऊंगा"।

घोड़ों के व्यापारी ने "अच्छा" कह बोधिसत्त्व के वचन को स्वीकार कर, अर्घ-कारक को रिशवत दे, वह बात कही। उसने रिशवत पा कर उत्तर दिया—"हां, तण्डुल-नालिका का मोल करवा सकता हूं।" "तो राज-कुल चलें" कह, उसे ले, राजा के पास आये। बोधिसत्त्व तथा दूसरे बहुत से अमात्य भी आ गये।

घोड़ों के व्यापारी ने राजा को प्रणाम करके कहा—"देव ! यह तो मैंने जाना कि पांच सौ घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है, अब अर्घ-कारक से पूछें कि एक तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ?"

राजा ने रहस्य न जानने के कारण पूछा—'अरे अर्घकारक ! पांच सौ घोड़ों का क्या मूल्य है ?"

"देव ! तण्डुल नालिका।"

"अरे ! पांच सौ घोड़ों का तो मूल्य तण्डुल-नालिका है, उस तण्डुल नालिका का क्या मूल्य है ?" उस मूर्ख ने उत्तर दिया—'तण्डुल-नालिका का मूल्य है भीतर-बाहर (= सब) वाराणसी।"

राजा का पक्ष लेकर, उसने पहले तो घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका (स्थिर किया) अब घोड़ों के व्यापारी से रिशवत लेकर, उस तण्डुल-नालिका का मूल्य अन्दर-बाहर (= सब) वाराणसी किया।

"किमग्घति तण्डुलनालिकाय
अस्सान मूलाय वदेहि राज !
बाराणसिं सन्तरबाहिरन्तं
अयमग्घति तण्डुलनालिकाति ॥"

(राजन् ! घोड़ों की कीमत, इस तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ? इस तण्डुल-नालिका का मूल्य अन्दर-बाहर सहित (सारी) बाराणसी है।)

उस समय वाराणसी का शहर पनाह (प्राकार) बारह योजन का था, (और) उसके अन्दर-बाहर तो तीन सौ योजन का देश (=राष्ट्र) था। सो, उस मूर्ख ने अन्दर और बाहर सहित इतनी बड़ी वाराणसी को तण्डुल-नालिका का मूल्य बताया।

इसे सुन अमात्य ताली पीट कर हंसते हुये कहने लगे—"हम आज तक यही समझते रहे कि पृथ्वी और राज्य अमूल्य (होते) हैं। (लेकिन आज मालूम हुआ) कि इतने बड़े राज्य सहित बाराणसी का मूल्य एक तण्डुल-नालिका मात्र है। अहो ! मूल्य करने वाले की प्रज्ञा ! इतने समय तक यह अर्घ-कारक कहां (छिपे) रहे। हमारा राजा ही (इस के) योग्य नहीं है।"

उस समय राजा ने लज्जित हो, उस मूर्ख को निकाल, बोधिसत्व को ही अर्घ-कारक का पद दिया। (समय आने पर) बोधिसत्व भी कर्मानुसार (परलोक को) गये।

शास्ता ने इस धर्म उपदेश की कहानी कह कर, तुलना कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया—"उस समय का गंवार, मूर्ख अर्घकारक (आज कल यह) लाल उदायी है। बुद्धिमान् अर्घकारक तो मैं (स्वयं) ही था" कह धर्म-देशना समाप्त की।

(इति) तण्डुलनालि जातक ॥५॥

६ देवधम्म जातक (१।१।६)

"हिरि ओत्तप्प सम्पन्ना=लज्जा और भय से युक्त" यह (धर्मदेशना) भगवान् ने जेतवन में विहार करते समय, एक बहुत सामान रखने वाले भिक्षु को लेकर कही। उसने प्रव्रजित होने से पहिले अपने लिये परिवेण, अग्निशाला भाण्डागार बनवा कर और उस भाण्डागार को घी-चावल आदि से भर कर प्रव्रज्या ग्रहण की। फिर प्रव्रजित होने पर, वह अपने नौकरों को बुलवा (उन से) यथारुचि भोजन पकवा कर खाता था। उस के पास सामान बहुत था। रात को दूसरा ओढ़न-बिछावन होता था, दिन को दूसरा। वह विहार के एक सिरे पर बसता था।

एक दिन वह चीवर बिछौने आदि को निकाल कर परिवेण में फैला कर सुखवा-रहा था, उसी समय, जनपद (=देश) के बहुत से भिक्षु शयनासन देखते घूमते हुये (उस) परिवेण में पहुंचे। वे चीवर आदि देख पूछने लगे—"यह किस के हैं ?" उसने उत्तर दिया, "आवुसो ! ये मेरे हैं।"

"आवुस ! 'यह भी चीवर, यह भी चीवर, यह भी ओढ़न, यह भी ओढ़न, यह भी बिछावन, यह भी बिछावन—यह सब तुम्हारे हैं ?"

"हां ! ये सब मेरे हैं।"

"आवुस ! भगवान् ने (अधिक से अधिक) तीन चीवरों (के रखने) की आज्ञा दी है। इस प्रकार के निर्लोभी बुद्ध के धर्म में साधु हो कर (भी) तू, इतने सामान रखता है ? 'चल, तुझे भगवान् के पास ले चलें" कह उसे शास्ता के पास ले गये।

शास्ता ने देख कर पूछा—"भिक्षुओ ! क्यों जबर्दस्ती इस भिक्षु को ले कर आये हो।"

"भन्ते ! यह भिक्षु बहुत भाण्ड बटोरे है, बहुत सामान रक्खे है।"

"भिक्षु ! क्या तू सचमुच बहुत सामान रखता है ?"

"भगवान् ! हां, सचमुच।"

"भिक्षु ! तू किस लिये, बहु-भाण्डिक हो गया ? क्या मैं निर्लोभता, संतोष, एकान्त चिन्तन और अभ्यास की प्रशंसा नहीं करता ?"

शास्ता की इस बात को सुन वह भिक्षु क्रुद्ध हो, "तो अच्छा ! अब से मैं इस तरह रहूंगा" कह, ऊपर पहने चीवर को उतार, सभा के बीच में केवल एक चीवर (=अन्तरवास—)धारी होकर खड़ा हो गया।

तब शास्ता ने उसे संभालते हुए पूछा—'भिक्षु ! क्या तू ने जल-राक्षस के जन्म में लज्जा तथा भय के साथ विहार करते हुये बारह वर्ष नहीं बिताये ? तो फिर अब इस गौरव-पूर्ण बुद्ध धर्म में प्रव्रजित होकर तू किस लिये चार प्रकार की परिषद् के बीच में पहने हुये चीवर को छोड़, लज्जा-भय त्याग खड़ा है ?"

वह शास्ता के वचन को सुन, लज्जा तथा भय से युक्त हो, उस चीवर को पहन, शास्ता को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात के प्रकट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की :—

पूर्व समय में काशी देश में, बाराणसी (बनारस) में ब्रह्मदत्त राजा था। उस समय बोधिसत्व ने उस (राजा) की पटरानी की कोख से जन्म ग्रहण किया। नाम-करण के दिन उस का नाम महिंशास कुमार रक्खा। उस के खेल-कूद करते, राजा को एक और भी पुत्र हुआ, जिस का नाम चन्द्रकुमार रक्खा गया; लेकिन

उस के खेल-कूद करते समय ही उस की माता (बोधिसत्व माता) मर गई। राजा ने दूसरी पटरानी बनाई। वह राजा की प्रिया तथा अनकूल थी। राजा के सहवास से उसे एक पुत्र पैदा हुआ, जिस का नाम सूर्य्य-कुमार रक्खा गया। राजा ने पुत्र को देख, सन्तुष्ट हो, कहा—"भद्रे! तेरे पुत्र को वर देता हूं।" देवी ने 'इच्छा होने पर ग्रहण करूंगी' कह वर को अमानत रक्खा। (फिर) पुत्र के सयाने होने पर उसने राजा से कहा—"आपने पुत्र जन्म के समय मुझे वर दिया था, अब मेरे पुत्र को राज्य दीजिये।"

'प्रज्वलित अग्निपुञ्ज के समान चमकते मेरे दो पुत्र हैं, (उन्हें छोड़ कर) तेरे पुत्र को राज्य नहीं दे सकता'—कह राजा ने इन्कार किया। लेकिन रानी को बार बार याचना करते देख, राजा ने सोचा, 'यह मेरे पुत्रों का बुरा भी सोच सकती है।' (इस लिये) पुत्रों को बुला कर कहा—"तातो! मैंने सूर्य्यकुमार के उत्पन्न होने के समय वर दिया था। अब उसकी जल-राक्षस ने बोधिसत्त्व को पानी में उतरते न देख, जङ्गल में काम करने माता राज्य मांगती है। मैं उसको नहीं देना चाहता। लेकिन स्त्री-जाति पापिन होती है, वह तुम्हारी बुराई भी सोच सकती है। इसलिये अभी तुम जङ्गल में चले जाओ, मेरे मरने पर आकर अपने कुल के आधीन (इस) नगर में राज्य करना।" (यह कह) रोते कुमारों के सिरों को चूम, (उन्हें जङ्गल में) भेज दिया।

पिता को प्रणाम कर राज-प्रासाद से उतरते समय उन्हें देख कर, सूर्य्यकुमार को भी बात मालूम होगई; और 'मैं भी भाइयों के साथ जाऊंगा' (सोच), वह भी उनके साथ निकल पड़ा।

वह हिमालय में प्रविष्ट हुये। बोधिसत्त्व ने मार्ग से हट, वृक्ष के नीचे बैठ, सूर्य्यकुमार को बुला कर कहा—"तात! सूर्य्य! इस तालाब पर जाओ, वहां नहा, पानी पी, हमारे पीने के लिये भी कमल के पत्ते में पानी ले आओ। उस तालाब को कुबेर (=वैश्रवण) ने एक जल-राक्षस को दिया था; और कुबेर ने उस (राक्षस) को कह रक्खा था कि देव-धर्म जानने वालों को छोड़, अन्य जो कोई इस तालाब में उतरेंगे, वे (सब) तेरे आहार होंगे; (तालाब में) न उतरने वाले तेरे आहार नहीं होंगे।"

तब से वह राक्षस, जो उस तालाब में उतरते, उन से देव-धर्म पूछता। जो न जानते, उनको खा जाता। सूर्य्यकुमार, उस तालाब पर पहुंचा, बिना

सोचे विचारे ही, उस में उतरा। राक्षस ने उसे पकड़ कर पूछा—"तुझे देवधर्म मालूम है ?"

उसने उत्तर दिया—"हां जानता हूं। चाँद सूर्य्य देव-धर्म हैं।"

"तू देव-धर्मों को नहीं जानता" (कह) उसने पानी में प्रवेश कर, उसे अपने वासस्थान पर लेजाकर रक्खा। बोधिसत्त्व ने उसे देर करता देख, चन्द्र-कुमार को भेजा। राक्षस ने उसे भी पकड़ कर पूछा—'तुझे देव-धर्म मालूम है ?' "हां जानता हूं। चारों दिशायें देव-धर्म हैं।" राक्षस ने 'तू देव-धर्म को नहीं जानता' कह उसे भी पकड़ कर वहीं रक्खा।

उसके भी देर करने पर "कोई आफत पड़ी" सोच, बोधिसत्त्व अपने आप वहां पहुंच, दोनों (जनों) के उतरने के पद-चिन्ह देख, 'यह तालाब राक्षस के अधिकार में होगा" (सोच) तलवार निकाल, (तीर-) कमान ले खड़े हो गये। जल-राक्षस ने बोधिसत्त्व को पानी में उतरते न देख जंगल में काम करने वाले मनुष्य का रूप धारण कर, बोधिसत्त्व से पूछा—"महाशय! रास्ते के थके तुम किस लिये इस तालाब में उतर, न्हा, (पानी) पी, भसींड खा, फूल को धारण कर, सुख पूर्वक (आगे) नहीं जाते?।"

बोधिसत्त्व ने उसे देख, सोचा, "यह वही यक्ष होगा" (और) यह जान कर पूछा—"क्या तू ने मेरे भाइयों को पकड़ रक्खा है ?"

"हां, मैंने (पकड़ रक्खा है)।"

"किस कारण से ?"

"इस तालाब में उतरने वालों पर मुझे अधिकार है।"

"क्या सब पर अधिकार है ?"

"जो देव-धर्म जानते हैं, उन्हें छोड़ बाकी सब पर अधिकार है ?"

"क्या तू देव-धर्म (जानना) चाहता है ? यदि चाहता है, तो मैं तुझ से देव-धर्म कहूंगा।"

"तो कहें, मैं देव-धर्मों को सुनूंगा।"

"मैं देव-धर्मों को कहने के लिए तय्यार हूं, लेकिन मेरा शरीर साफ नहीं है।"

यक्ष ने बोधिसत्त्व को न्हलाया, भोजन करवाया, पानी पिलाया, फूल धारण कराया, सुगन्धियों का लेप कराया, फिर अलङ्कृत मण्डप के बीच आसन प्रदान किया। बोधिसत्त्व ने आसन पर बैठ, यक्ष को पैरों में बिठा, 'तो, देवधर्मों को ध्यान-पूर्वक कान देकर सुनो' कह, इस गाथा को कहा—

हिरिओत्तप्पसम्पन्ना सुक्कधम्मसमाहिता,
सन्तो सप्पुरिसा लोके देव-धम्माति वुच्चरे'ति ॥

यहां हिरि ओत्तप्पसम्पन्ना का अर्थ है हिरि (=लज्जा) और ओत्तप्प (=भय) से युक्त। इन (दो शब्दों) में, कायिक दुराचार आदि में जो लज्जा मानना है, वह हिरि (=ह्री) है। 'हिरि' लज्जा का ही पर्य्याय-वाची शब्द है। और उन्हीं (=कायिक दुराचार आदि) से जो तपना है, वह 'ओत्तप्प' है; पाप से उद्विग्न होने का यह पर्य्यायवाची शब्द है । सो हिरि (=लज्जा) अपने (अन्दर) से उत्पन्न होती है; ओतप्प (=भय) बाहरी (कारणों) से। हिरि का स्वामी (=आधिपत्य) खुद में है; किन्तु ओतप्प का स्वामी लोक। हिरि में लज्जा का भाव रहता है; ओतप्प में भय का भाव । हिरि का लक्षण है (आत्म-) गौरव (आदि) का भाव, ओतप्प का लक्षण है दुष्कर्म (=वद्य) करने में भयभीत होना। सो (पुरुष) अपने (अन्दर) से उत्पन्न होने वाली 'हिरि' को चार कारणों से उत्पन्न करता है—जात (=जाति) का विचार करके, आयु का विचार करके, वीरता का विचार करके, तथा (अपनी) बहुश्रुतता (=पाण्डित्य) का विचार करके। सो कैसे ? (प्राणि-हिंसा आदि) पाप-कर्म (ऊंची) जात वालों का काम नहीं; यह कैवर्त्त आदि नीच जातियों का काम है। वैसी (ऊंची) जात वाले को ऐसा कर्म करना अनुचित है—इस प्रकार जात का विचार कर प्राण-हिंसा आदि पापकर्म के न करते हुये, हिरि उत्पन्न करता है । पाप-कर्म बच्चों का काम है; सयाने पुरुष के लिये ऐसा करना अनुचित है; इस प्रकार आयु का विचार कर, प्राणि-हिंसा आदि पाप को न करते हुये, हिरि उत्पन्न करता है। पाप-कर्म दुबलों का काम है, मेरे जैसे वीर (पुरुष) को इस प्रकार का कर्म करना अनुचित है; इस प्रकार वीरता (=शूरभाव) का विचार कर प्राणि-हिंसा आदि पाप-कर्म को न करते हुए, हिरि उत्पन्न करता है। पाप-कर्म (करना) अन्धे-मूर्खों का काम है; पण्डितों का काम नहीं । (मेरे) जैसे पण्डित, बहुश्रुत को इस प्रकार का कर्म करना अनुचित है, इस प्रकार बहु-श्रुत-भाव का विचार कर, प्राणि-हिंसा आदि पाप-कर्म को न करते हुये, हिरि उत्पन्न करता है । उत्पन्न कर, और उस हिरि को अपने चित्त में स्थापित कर, पाप कर्म नहीं करता। इस प्रकार हिरि अपने (अन्दर) से उत्पन्न होने वाली होती है।

ओतप्प कैसे बाहर (के कारणों) से उत्पन्न होने वाला है ? 'यदि तू

पाप-कर्म करेगा, तो चारों प्रकार की सभा (=परिषद्) में निन्दा का भागी होगा:—

"गरहिस्सन्ति तं विञ्ञू असुचिं नागरिको यथा
विवज्जितो सीलवन्तेहि कथं भिक्खु! करिस्ससिति॥"

(विज्ञ लोग तेरी उसी प्रकार निन्दा करेंगे, जैसे नागरिक (लोग) गन्दगी की। सच्चरित्र भिक्षुओं द्वारा (अकेला) छोड़ दिये जाने पर, हे भिक्षु! तू कैसे करेगा ?")

इस प्रकार विचार करने से बाहर (के कारणों) से उत्पन्न ओतप्प (=भय) के मारे, पाप-कर्म नहीं करता। इस प्रकार ओतप्प बाहर (के कारणों) से उत्पन्न होने वाला है।

हिरि (=लज्जा) का स्वामित्व कैसे अपने आप है? जब एक कुल-पुत्र अपने को अधिपति (= प्रधान), ज्येष्ठ मान कर सोचता है, मेरे जैसा श्रद्धा से प्रव्रजित, बहुश्रुत, धूतङ्ग * रखने वाले को पाप-कर्म करना अनुचित है, (और) यह सोच पाप-कर्म से बचा रहताहै। इस प्रकार हिरि का स्वामी अपने आप है। इसी लिये भगवान् ने कहा है:— "वह अपने को ही स्वामी करके, अकुशल को छोड़ता है, कुशल (=अच्छे) कर्म का अभ्यास करता है। सदोष को छोड़ता है, निर्दोष कर्म का अभ्यास करता है। अपने आप को पवित्र बनाये रखता है। †" ओतप्प का स्वामी कैसे लोक है? यहां एक कुल-पुत्र लोक को ही स्वामी (=अधिपति), ज्येष्ठ करके, पाप कर्म से बचता है। जैसे कहा है:— "यह लोक-समूह महान् है। इस लोक-समूह में (ऐसे) श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो ऋद्धि-मान् हैं; दिव्य चक्षु (वाले)हैं, दूसरों के चित्त की बात जान लेने वाले हैं। वे (अपने) दूर से भी देख लेते हैं, और स्वयं पास होने पर भी नहीं दिखाई देते। वे (अपने) चित्त से, (दूसरों के) चित्त को जान लेते हैं। वे मुझे जान लेंगे (और कहेंगे), 'भो! देखते हो। इस श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर (हो), प्रव्रजित हुये कुल-पुत्र को, जो पाप बुरे-कर्मों से युक्त हो, विहरता है।" (और) ऐसे देवता भी हैं, जो ऋद्धि-मान् हैं, दिव्य-चक्षु (वाले) हैं, दूसरों के चित्त की बात जान लेने वाले हैं। वे तो दूर से भी देख लेते हैं, और स्वयं पास होने पर भी दिखाई नहीं देते। वे (अपने) चित्त से, (दूसरों के) चित्त को जान लेते हैं। वे मुझे

---

* अवधूतों के नियम, आरण्यक, पिण्डपातिक, पांसुकूलिक आदि होना।

† अंगुत्तर-निकाय, तिक निपात।

जान लेंगें, (और कहेंगें)—, "भो ! देखते हो । इस श्रद्धा पूर्वक घर से बेघर (हो) प्रव्रजित हुये कुल-पुत्र को, जो पाप बुरे कर्मों से युक्त हो, विहरता है ।" (इस प्रकार) वह लोक को ही स्वामी (=अधि पति) मान कर बुराइयों को छोड़ता है, भलाइयों का अभ्यास करता है, सदोष को छोड़ता है, निर्दोष-कर्म का अभ्यास करता है, अपने आप को पवित्र बनाये रखता है । * इस प्रकार ओतप्प का स्वामी लोक है ।

'हिरि में लज्जा का भाव रहता है, ओत्तप्प में भय'—सो, यहां लज्जा का अर्थ है, लज्जा का आकार-प्रकार । इस भाव से जो युक्त हो, उसे हिरि (कहते हैं) । भय का अर्थ है नरक-भय, इस भाव से जो युक्त है, वह ओतप्प । ये दोनों (हिरि और) ओत्तप्प ही पाप के त्याग में कारण होते हैं । जैसे पाखाना-पेशाब करता हुआ कोई कुल-पुत्र, शरम खाने के योग्य किसी को देख कर, लज्जा करने लगे, शरम खाये; इसी प्रकार अपने-आप में लज्जा का भाव उत्पन्न होने पर, (व्यक्ति) पाप-कर्म नहीं करता । कोई नरक-गामी होने के भय से डरकर पाप नहीं करता । यहां यह उपमा है:—जैसे लोहे के दो गोलों में, एक शीतल हो, लेकिन मल लगा हुआ, दूसरा ऊष्ण अङ्गार-वर्ण । (उन दोनों में से) बुद्धिमान् (आदमी) शीतल को मल लगा रहने के कारण घृणा के मारे नहीं ग्रहण करता दूसरे को जलने के भय से । सो शीतल (गोले) के मल लगे रहने के कारण, घृणा के मारे न ग्रहण करने की तरह अपने-आप में लज्जा उत्पन्न होने से पाप-कर्म का न करना, और ऊष्ण (गोले) के जलने के भय से, न ग्रहण करने की तरह, नरक के भय से पाप का न करना,' जानना चाहिये ।

ही । (=हिरि) का लक्षण है (आत्म-) गौरव (आदि) का भाव; ओतप्प का लक्षण है दुष्कर्म करने में भय भीत होना—ये दोनों भी पाप-कर्म के त्याग में ही कारण होते हैं ! एक व्यक्ति अपनी जाति (=जात) की महानता का विचार कर, अपने शास्ता की महानता का विचार कर, अपनी वरासत की महानता का विचार कर, अपने गुरुभाइयों (=सब्रह्मचारियों) की महानता का विचार कर; (इन) चार कारणों से गौरव-के भाव और लक्षण-वाली ही को उत्पन्न कर पाप कर्म से बचता है । दूसरा व्यक्ति आत्म-निन्दा के भय से, पर-निन्दा के भय से, दण्ड के भय से, दुर्गति के भय से—(इन) चार कारणों से दुष्कर्म करने में भय रूपी ओत्तप्प को उत्पन्न कर पाप-कर्म नहीं करता । यहां जाति की महानता आदि के विचार, तथा

* अंगुत्तर निकाय, तिक निपात ।

आत्म-निन्दा आदि के भय विस्तार से कहने चाहिये । इन का विस्तार अङ्गुत्तर निकाय की अट्ठकथा में आया है ।

सुक्कधम्मासमाहिता (शुक्लधर्मासमाहित) का अर्थ है, इन हिरि तथा ओत्तप्प से ही आरम्भ करके, जितने भी आचरणीय भलाइयां हैं, वे सब शुक्ल धर्म हैं; और वे संक्षेप में चातुर्भूमिक लौकिक तथा लोकोत्तर धर्म हैं—इन धर्मों से समाहित= समन्वगत=युक्त । सन्तो सप्पुरिसा लोके:—काय-कर्मादि के शान्त होने से शान्त, कृतज्ञता=कृतवेदिता के कारण शोभायमान् पुरुष, सत्पुरुष । लोक:— संस्कार-लोक, सत्व (=प्राणि) लोक, ओकास (=आकाश) लोक, स्कन्ध-लोक, आयतन-लोक, धातु-लोक—ये अनेक प्रकार के लोक हैं। सो 'एक लोक—सब सत्वों की स्थिति आहार पर निर्भरहै·· ··अट्ठारह लोक, अट्ठारह धातु लोक'-* इस में संस्कार-लोक कहा गया है। स्कन्ध-लोक आदि सब उस के अन्तर्गत आ ही गये । यही लोक, परलोक, देव-लोक, मनुष्य-लोक आदि क्रम से सत्व-लोक कहा गया है:—

यावता चन्दिमसुरिया परिहरन्ति दिसाभन्ति विरोचना,
ताव सहस्सधा लोको एत्थ ते वत्तति वसो' ति ॥

(जहां तक चन्द्रमा तथा सूर्य्य घूमते हैं, प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित करते हैं; वहां तक सहस्र (चक्रवाल) लोक हैं; (और) इस सारे लोक पर तेरा वश है ।)

इस गाथा में ओकास-लोक का वर्णन किया गया है । इन में यहां मतलब है सत्व-लोक से। सत्व लोक में ही (जो) इस प्रकार के सत्पुरुष होते हैं, वे देव-धम्माति वुच्चरे, (=वे देव-धर्म कहलाते हैं) । इन में देव तीन प्रकार के होते हैं:—सम्मुति-देव, उत्पत्ति-देव और विशुद्धि-देव। महासम्मत के समय से लेकर, लोग (जिन २) राजा राजकुमार आदि को देव कह (करके) बुलाते हैं (=सम्मत करते हैं), वे सम्मुति-देव । देव-लोक में उत्पन्न हुये देव, उत्पत्ति-देव। क्षीणास्रव (=अर्हत्) विशुद्धि देव। ऐसा कहा भी गया है:— "सम्मुति-देव हैं राजा, महारानियां, (राज-) कुमार। उत्पत्ति-देव हैं भूमि के देवों से आरम्भ करके ऊपर के देवों तक । विशुद्धि-देव हैं बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, क्षीणाश्रव ।" इन देवों के धर्म हैं देव-धर्म । वुच्च का अर्थ हैं कहलाते हैं। हिरि तथा ओत्तप—यह दोनों, कुशल-धर्मों के मूल हैं । कुशल (-कर्म) रूपी सम्पत्ति से देव-लोक में उत्पत्ति होने से, और विशुद्धता का कारण होने से,

कारण के अर्थ में ही, तीन प्रकार के देवों के धर्म, देव-धर्म । उन देव-धर्मों से युक्त मनुष्य भी देव-धर्म हैं । इसलिये व्यक्ति की ओर संकेत करके उपदेश किये गये इस धर्मोपदेश में, इन धर्मों का उपदेश करते हुये कहा है, "सन्तो सप्पुरिसा लोके देव-धम्माति वुच्चरे ।"

यक्ष इस धर्म-देशना को सुन प्रसन्न हुआ, और बोधिसत्व से बोला, "पण्डित ! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूं । एक भाई को (लौटा) देता हूं । (बोलो) किस (भाई) को लाऊं ? ।"

"छोटे भाई को लाओ।"

"पण्डित ! तू देव-धर्मों को केवल जानता भर है, उन के अनुसार आचरण नहीं करता ।"

"कैसे (=किस कारण से) ?"

"क्योंकि तू ज्येष्ठ (भाई) को छोड़, उसके छोटे भाई को मंगवाकर ज्येष्ठ का गौरव नहीं रखता है ?"

"यक्ष ! मैं देव-धर्मों को जानता हूं, और उनके अनुसार आचरण करता हूं । इसी (भाई) के कारण, हमने इस वन में प्रवेश किया । इसी के कारण, हमारे पिता से इसकी मां ने राज्य मांगा । हमारे पिता ने उसे वर न दिया, (लेकिन) हमारी रक्षा के लिए, हमें बनवास की आज्ञा दी । (सो) इस कुमार को बिना लिये यदि हम लौटेंगे; तो—"इसे जंगल में एक यक्ष ने खा लिया"—यह बात कहने पर भी कोई विश्वास न करेगा । इसलिए मैं, निन्दा के भय से भय-भीत, इसी को मांगता हूं । "साधु, साधु पण्डित ! तू देव-धर्मों को जानता है, और उनके अनुसार आचरण भी करता है" कह, यक्ष ने बोधिसत्व को साधु (वाद) दे, (उसके) दोनों भाई लाकर, (उसे) दे दिये ।

तब बोधिसत्व ने उसे कहा—"सौम्य ! तू अपने पूर्व के पाप-कर्म के कारण, दूसरों का रक्त-मांस खाने वाले यक्ष की योनि में उत्पन्न हुआ । अब फिर भी पाप-कर्म ही करता है । यह पाप-कर्म नरक आदि से छूटने न देगा । (इसलिये) अब से तू पाप-कर्म को छोड़ कर पुण्य (=कुशल) कर्म कर ।" (इस प्रकार) बोधिसत्व, उस यक्ष को दमन कर सके । उस यक्ष का दमन कर, उसी यक्ष की रक्षा में वहीं रहने लगे । एक दिन नक्षत्र देख, पिता के मरने की बात जान, यक्ष को साथ ले, बाराणसी पहुंचे । फिर राज्य को ग्रहण कर, चन्द्र-कुमार को उप-राज और सूर्य कुमार को सेनापति का स्थान दिया । यक्ष के

लिये एक रमणीय स्थान पर, मन्दिर (=आयतन) बनवा दिया, और ऐसा (प्रबन्ध) कर दिया, जिससे उसे श्रेष्ठ माला, श्रेष्ठ पुष्प, और श्रेष्ठ भोजन मिलता रहे। धर्मानुसार राज्य करके वह कर्मानुसार (परलोक को) गये।

शास्ता ने इस धर्म उपदेश को दिखा कर, (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। आर्य-सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, उसने भिक्षुओं को स्रोत आपत्ति-फल में प्रतिष्ठित किया। सम्यक्-सम्बुद्ध ने दोनों कहानियां कह कर, तुलना कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का उदक-राक्षस, (इस समय का) बहु-भाण्डिक भिक्षु है। सूर्य्य-कुमार (इस समय का) आनन्द। चन्द्र-कुमार (इस समय का) सारिपुत्र। और महिंसास-कुमार नामक ज्येष्ठ-भ्राता तो मैं ही था।"

(इति) देवधम्म जातक ॥ ६ ॥

७ कट्ठहारिजातक (१।१।७)

"पुत्तो त्याहं महाराज..." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुये वासभ क्षत्रिया की कथा के सम्बन्ध में कही। वासभ–क्षत्रिया की कथा (जातक-अट्ठकथा के) बारहवें निपात में भद्दसाल जातक में आयेगी। महानाम शाक्य को नागमुण्डा नामक दासी की कोख से लड़की उत्पन्न हुई। (पीछे वह) कोसल-नरेश की पटरानी हुई। उस से राजा को पुत्र हुआ। लेकिन राजा ने उसका पूर्व में दासी होना जान, उसको तथा उसके पुत्र विडूडभ (विडूरथ) को भी स्थान से च्युत कर दिया। दोनों घर के भीतर ही रहते। शास्ता ने उस बात का पता पा, पांच सौ भिक्षुओं के साथ, प्रातः काल ही राजा के निवास-स्थान पर जा, बिछे आसन पर बैठ कर पूछा:—"महाराज! वासभ खत्तिया कहां है?" राजा ने (उसके सम्बन्ध में) उक्त बात कही। "महाराज! वासभ खत्तिया किसकी लड़की है?"

"भन्ते! महानाम की।"

"और (यहाँ) आकर, वह किसे प्राप्त हुई?"

"भन्ते! मुझे"

"महाराज! यह राजा की लड़की, राजा को प्राप्त हुई, राजा से ही इसे पुत्र हुआ; सो वह पुत्र किस लिये पिता के राज्य का अधिकारी नहीं? पूर्व समय में राजाओं ने लकड़हारिनी के मुहूर्त भर के सहवास से, उसकी कोख से उत्पन्न पुत्र को भी राज्य दिया है।" राजा ने भगवान् से,

* भद्दसाल जातक (४६५)

उस बात को स्पष्ट कर, कहने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की:—

"पूर्व समय में, बाराणसी में, ब्रह्मदत्त राजा बड़े समारोह के साथ उद्यान गया। वह वहां पुष्प-फलों की चाह से घूम रहा था; उसी समय उद्यान के वन-षण्ड में गा गा कर लकड़ी चुनती एक स्त्री को देख, उस पर आसक्त हो, उसने उस से सवास किया। उसी क्षण, बोधिसत्त्व ने उसकी कोख में प्रवेश किया। उसकी कोख, वज्र से भरी गई की तरह, भारी हो गई। उसने गर्भ स्थापित हुआ जान, (राजा से) कहा:—"देव! मुझे गर्भ हो गया है।" राजा ने अङ्गुली की अङ्गूठी दे कर कहा:—"यदि लड़की हो, तो इस (अङ्गूठी) को फेंक कर, (अपनी) लड़की को पालना। यदि लड़का हो, तो अङ्गूठी के साथ, उसे मेरे पास लाना"। इतना कह कर, वह चला गया। गर्भ-परिपक्व होने पर, उसने बोधिसत्त्व को जन्म दिया। बोधिसत्त्व के इधर उधर दौड़-भाग कर क्रीड़ा भूमि में खेलते समय, कोई २ (उसके सम्बन्ध में) कहते थे, "बिना बाप के ने हमें मारा"। इसे सुन, बोधिसत्त्व ने माता के पास जा कर पूछा–"माँ, मेरा पिता कौन है?"

"तात! तू बाराणसी-नरेश का पुत्र है"

"अम्मा! क्या इसका कोई साक्षी (=सबूत) है?"

"तात! राजा 'यदि लड़की हो, तो इस अङ्गूठी को फेंक कर, (अपनी) लड़की को पालना, यदि लड़का हो, तो अङ्गूठी के साथ, उसे मेरे पास लाना,' कह, यह अंगूठी दे गया है।"

"अम्मा! यदि ऐसा है, तो मुझे क्यों पिता के पास नहीं ले चलती?"

उसने पुत्र का विचार जान, राज-द्वार पर जा, राजा को कहला भेजा, और राजा के बुलवाने पर, राजा को प्रणाम कर कहा:—"देव! यह तुम्हारा पुत्र है।"

राजा ने पहचानते हुये भी, सभा में लज्जा के मारे, कहा—"यह मेरा पुत्र नहीं है।"

"देव! यह तुम्हारी अंगूठी है, इसे पहचानोगे?"

"यह अंगूठी भी मेरी नहीं है।"

"देव! तो अब मेरे पास सत्य क्रिया* के अतिरिक्त कोई दूसरा साक्षी

*सत्य-किरिया, सत्य और पुण्य की शपथ।

नहीं है। 'यदि यह बालक आप से पैदा हुआ है, तो आकाश में ठहरे, नहीं तो भूमि पर गिर कर मर जाये' कह, उसने बोधिसत्त्व को पैरों से पकड़, आकाश में फैंक दिया। बोधिसत्त्व ने आकाश में पालथी मार, बैठ, मधुर स्वर से पितृ-धर्म (=पिता का कर्तव्य) कहते हुये, यह गाथा कही :—

पुत्तो त्याहं महाराज ! त्वं मं पोस जनाधिप !
अञ्ञेपि देवो पोसेति किंच देवो सकं पजंति।

[महाराज ! तुम्हारा पुत्र हूं। जनाधिप ! तुम मेरा पालन करो। देव ! तुम तो औरों का भी पालन करते हो, (फिर) अपनी सन्तान की (तो बात ही) क्या ?]

इस में पुत्तो त्याहं का मतलब है, मैं तुम्हरा पुत्र हूं। पुत्र होते हैं चार प्रकार के:— आत्मज, क्षेत्रज, अन्तेवासिक तथा दिन्नक (=दत्तक)। अपने हेतु शरीर से जो उत्पन्न हुआ हो, वह आत्मज, शयनासन पर, पलंग पर, छाती पर;—इस प्रकार के स्थानों पर जो (अपने से) उत्पन्न हुआ, वह क्षेत्रज; अपने पास रह कर शिष्य (=विद्या) सीखने वाला अन्तेवासिक, तथा पालने-पोसने के लिये दिया गया (बालक) दिन्नक। यहां पुत्र शब्द का प्रयोग आत्मज के अर्थ में है। चारों प्रकार की संग्रह-वस्तुओं से जो प्रजा का रञ्जन करे, वह राजा; फिर महान्-राजा, सो महाराजा, आमन्त्रित करने के लिये ही महाराज ! कहा गया है। त्वं मं पोस जनाधिप का अर्थ है, हे जनाधिप ! हे महाजन (-समूह) में ज्येष्ठतम ! आप मेरा पोषण करें, भरण करें, वृद्धि करें। अञ्ञेपि देवो पोसेति का अर्थ है कि देव अन्य अनेक हाथी-पालक, अश्व-पालक आदि मनुष्यों तथा हाथी घोड़े आदि प्राणियों का पालन करते हैं। किञ्च देवो सकं पजं में किञ्च (=और क्या) शब्द निन्दार्थक तथा करुणार्थक निपात है। 'देव, अपनी सन्तान, मुझ अपने पुत्र की पालना नहीं करते' कह कर निन्दा भी की गई है; और 'अन्य बहुत जनों का पालन करते हैं' कह कर करूणा का भाव भी जाग्रत् किया गया है। इस प्रकार बोधिसत्त्व ने निन्दा करते हुये, तथा करूण का भाव जाग्रत करते हुये कहा:- "किञ्च देवो सकं पजं [=अपनी सन्तान की (तो बात ही) क्या ?]। राजा ने बोधिसत्त्व को आकाश में बैठे, इस प्रकार धर्मोपदेश करते सुन हाथ पसार कर कहा:- "तात ! आ ! मैं ही पालन करूंगा। मैं ही पालन करूंगा।" (और भी लोगों ने) सहस्रों हाथ फैलाये। बोधिसत्त्व, और किसी के हाथ में न उतर कर, राजा के ही हाथ में उतर, उस की गोद में बैठे। राजा ने उन्ह उप-राजा बना, उन

की माता को पटरानी (=अग्र-महिषी) बनाया। पिता के मरने पर वह लकड़हारा राजा के नाम से धर्म-पूर्वक राज्य का सञ्चालन कर (अपने) कर्मानुसार परलोक को गये। शास्ता ने कोसल-नरेश का यह धर्मोपदेश ला दोनों कहानियाँ कह, तुलना करके जातक कथा का सारांश निकाल दिखाया। उस समय की माता, (अब की) महामाया थी, पिता (अबका) शुद्धोदन राजा था और लकड़हारा-राजा तो मैं ही था।

(इति) कटठ्हारि जातक ॥७॥

८. गामणी जातक (१. १. ८.)

अपि अतरमानानं—यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक उद्योग हीन (=आलसी) भिक्षु के सम्बन्ध में कही। इस जातक की वर्तमान-कथा * तथा अतीत-कथा; * दोनों ग्यारहवें परिच्छेद के संवर-जातक में आयेंगीं। उस जातक में तथा इस में कहानी समान ही है, हां गाथा का भेद है

बोधिसत्त्व के उपदेश को मान कर, सौ भाइयों में सब से छोटा होने पर भी ग्रामणी कुमार, सौ भाइयों के बीच, श्वेतछत्र के नीचे, सिंहासनासीन हुआ। अपने यश रूपी धन पर विचार करते हुये, 'मेरा यह यश रूपी धन, मझे अपने आचार्य्य से मिला है' सोच,सन्तुष्ट-चित्त हो, यह उदान (=हर्ष से प्रेरित कथन) कहा:—

अपि अतरमानानं फलासाव समिज्झति,
विपक्क ब्रह्मचरियोस्मि एवं जानाहि गामणीति ॥

[जल्द-बाज़ी न करने वालों की विशेष फल की आशा पूर्ण होती है। गामणी! तू ऐसा जान कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूं।]

इस में जो अपि है, सो केवल निपात-मात्र है। अतरमानानं का मतलब है पण्डितों के=उपदेश को मान कर, जल्द-बाज़ी से काम न ले,ढंग(=उपाय कौशल) से काम करने वालों की। फलासाव समिज्झति का अर्थ है—इच्छित फल की जो आशा है,वह उस फल की प्राप्ति होने से पूरी होती ही है। अथवा फलासा=आशा फल की इच्छानुसार फल की प्राप्ति होती ही है, यह अर्थ है। विपक्कब्रह्मचरियोस्मि चारों † संग्रह-वस्तुयें श्रेष्ठ-चर्या होने से ब्रह्म-चर्या (कही गई हैं)। और क्योंकि वह यश रूपी धन की प्राप्ति का मूल-कारण है;इसलिये यश रूपी धन की प्राप्ती हुई रहने से

* पच्चुप्पन्न वत्थु तथा अतीत-वत्थु।

† दान, प्रिय वाणी, लोक-हित का आचरण तथा समानता।

(ब्रह्म-चर्य) का परिपक्व (=विपक्क) होना कहा गया है। और जो उस के यश की उत्पत्ति हुई है, वह भी श्रेष्ठता के कारण 'ब्रह्मचर्य' (कहा जा सकता है)। इसी लिये कहा है—विपक्क ब्रह्मचरियोऽस्मि। एवं जानाहि गामणी—कहीं २ ग्रामिक पुरुष को; और कहीं २ ग्राम में जो बड़ा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकिन यहाँ (अपने को) सब जनों में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, अपने को सम्बोधन करके उदान कहा है:—"भो ग्रामणी! तू इस बात को इस प्रकार जान। यह जो सौ भाइयों का अतिक्रमण करके, तुझे इस महाराज्य की प्राप्ति हुई है, सो यह आचार्य्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के बाद सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने २ निवास स्थान को चले गये। ग्रामणी राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसार परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखा कर, (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, (वह) आलसी भिक्खु अर्हत्-पद में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कहानियां कह, मेल तुलना कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

(इति) गामणी जातक ॥८॥

मखादेव जातक १.१.९.

उत्तमङ्गरुहा मय्हंति......इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, महानैष्काम्य के बारे में कहा। वह (=महाभिनिष्क्रमण) पहले निदान-कथा में कहा ही जा चुका है। लेकिन उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गृहत्याग (=अभि-निष्क्रमण) की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा में आ बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुओं को संबोधित किया—"भिक्षुओ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?"

"भन्ते! और कोई बात चीत नहीं, बैठे आप के अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की:—

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हज़ार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा (खेल कूद) में लगा रहा। उस के बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उस ने), एक दिन (अपने) नाई कप्पक से कहाः—"सौम्य कप्पक! जब तुझे मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) दिखाई दें, तो मुझे कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमे के रंग के (=काले) केशों में केवले एक सफ़ैद (बाल) देख कर राजा से निवेदन कियाः—"देव! आप के (सिर में) एक सफ़ैद (बाल) (दिखाई) दे रहा है।"

"तो सौम्य! उस सफ़ैद (बाल) को उखाड़ कर मेरी हथेली पर रक्खो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़ कर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हज़ार वर्ष की आयु शेष थी; लेकिन फिर भी सफ़ैद (बाल) को देखते ही, जैसे यमराज आकर समीप खड़ा हो गया हो, (अथवा) आग लगे घर में स्थित हो उसका चित, उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगाः—"मूर्ख मखादेव! सफ़ैद (बाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलों) का परित्याग न कर सका।" उस के इस प्रकार सफ़ैद (बाल) की उत्पत्ती पर बार २ विचार करने से, (उसका) हृदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भीग कर उतारने योग्य हो गये। उस ने 'आज ही मुझे निकल कर प्रव्रजित होना चाहिये' (का निश्चय कर), नाई को लाख (मुद्रा) आमदनी के गांव दे कर ज्येष्ठ-पुत्र को बुलाकर कहाः—"तात! मेरे सिर में सफ़ैद (बाल) उग आया है। मैं बूढ़ा हो गया हूं। (अभी तक) मैं ने मानुषिक भोगों का उपभोग किया है, अब मैं दिव्य भोगों की खोज करूंगा (यह) मेरा गृहत्याग (=निष्क्रमण) का समय है। (अब) तू इस राज्य को संभाल। मैं प्रव्रजित हो, मखादेव आम्र उद्यान में रहते हुये योगाभ्यास (=श्रमण-धर्म) करूंगा।"

इस प्रकार उसने जब इस प्रव्रज्या के लेने की इच्छा प्रकट की, तो अमात्यों ने आकर उसे पूछाः—"देव! आप के प्रव्रजित होने का क्या कारण है?" राजा ने सफ़ैद (बाल) को हाथ में लेकर, अमात्यों से यह गाथा कहीः—

उत्तमङ्गरुहा मय्हं इमे जाता वयोहरा,
पातुभूता देवदूता पब्बज्जा समयो ममाति॥

यहां उत्तमङ्गरुहा का अर्थ है केश। सब के हाथ पांव आदि अङ्गों में

उत्तमअङ्ग (=सिर) में उत्पन्न होने के कारण, केश, उत्तमङ्गरुहा कहलाते हैं। इमे जाता वयोहरा, अर्थात् तात ! देखो, सफ़ेद (बाल) होने से, यह तीनों प्रकार की आयु के हरण करने वाले (हैं), (इसलिये) इमे जाता वयोहरा। पातु भूता =उत्पन्न हुये। देवदूता, देव कहते हैं मृत्युको, उसके दूत, सो देवदूत। सिर में सफ़ेद (बालों) के उत्पन्न होने पर (मनुष्य अपनेको) यमराज (=मृत्यु-राज) के समीप खड़ा सा समझता है, इस लिये सफ़ेद (बाल) मृत्यु-देव के दूत कहलाते हैं। देवताओं जैसे दूत, इस अर्थ में भी देव-दूत। जिस प्रकार अलङ्कृत-सजे हुये देवता के, आकाश में खड़े होकर 'अमुक दिन मरेगा' कहने से वह (मरण) वैसे ही होता है, इसी प्रकार सिर में सफ़ेद (बाल) का उगना भी देवता की भविष्यद्वाणी के सदृश ही होता है। इस लिये सफ़ेद (केश) देव सदृश दूत कहलाते हैं। विशुद्धि-देवों के दूत, इस अर्थ में भी देव-दूत। सभी बोधिसत्त्व बूढ़े, व्याधिग्रस्त, मृत तथा प्रव्रजित को देख कर ही वैराग्य को प्राप्त हो, निकल कर प्रव्रजित होते हैं। जैसे कहा है:-

जिएणं च दिस्वा दुखितं च व्याधितं
मतञ्च दिस्वा गतमायुसङ्खयं
कासाव वत्थं पब्बजितञ्च दिस्वा
तस्मा अहं पब्बजितोम्हि राजा ॥

[जीर्ण (=बूढ़े) दुःखित=व्याधित को देख कर, आयुक्षय-प्राप्त=मृत को देख कर, (तथा) काषाय वस्त्र धारी प्रव्रजित को देख कर, हे राजन् ! मैं प्रव्रजित हुआ हूं।]

इस प्रकार सफ़ेद (केश) विशुद्धि-देवों के दूत होने से देव-दूत कहलाते हैं। पब्बज्जासमयो मम, स्पष्ट करता है कि यह मेरे लिये गृहस्थ-से निकलने के कारण 'प्रव्रज्या' कहे जाने वाले, साधु भेस धारण करने का समय है। यह (सब) कह कर, वह उसी दिन राज्य छोड़ ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ और उसी मखादेव आम्र वन में विचरते हुये, चौरासी हज़ार वर्ष तक चारों ब्रह्मविहारों की भावना करते ध्यानावस्था को बिना छोडे मरकर, ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हो, फिर वहां से मिथिला ही में निमि नामक राजा (के रूप में) उत्पन्न हुआ; और उसने अधोगति की ओर जाते हुये अपने वंश को संभाला ! फिर वहीं आम्रवन में प्रव्रजित हो, ब्रह्मविहारों की भवना कर, फिर ब्रह्मलोक ही में उत्पन्न हुआ।

शास्ता ने भी, "भिक्षुओ! तथागत ने केवल इसी जन्म में महाभिनिष्क्रमण नहीं किया, पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है"।

इस धर्म-उपदेश को लाकर, दिखा कर, चारों (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। (उस समय) कोई स्रोतापन्न हुये। कोई सकृदागामी। कोई अनागामी। इस प्रकार भगवान् ने इन दो कहानियों को कह कर, तुलना करके जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का नाई (अबका) आनन्द था, पुत्र (अबका) राहुल था। और मखादेव राजा तो मैं ही था।

(इति) मखादेव जातक ॥९॥

१० सुखविहारी-जातक (१.१.१०.)

'यञ्च अञ्ञे न रक्खन्ति—" यह गाथा, बुद्ध ने अनूपिय नगर के समीपस्थित अनूपिय आम्र-वन में विहार करते समय सुख पूर्वक विहार करने वाले भद्दिय स्थविर के बारे में कही। सुख पूर्वक विहार करने वाले भद्दिय स्थविर छ क्षत्रियों तथा सातवें उपाली की प्रव्रज्या के समय, प्रव्रजित हुये थे। उन (सात) में से भद्दिय स्थविर किम्बिल स्थविर, भृगु स्थविर तथा उपालि स्थविर अर्हत्व पद को प्राप्त हुये। आनन्द स्थविर स्रोतापन्न हुये। अनुरुद्ध स्थविर दिव्य-चक्षुता के लाभी हुये। देवदत्त ध्यान के लाभी हुये। अनूपिय नगर तक की, छओं क्षत्रियों की कथा खण्डहाल जातक में आयेगी। आयुष्मान् भद्दिय के राज करने के समय, अपनी हिफाज़त के लिये, पहरेदारों तथा और भी कई प्रकार की आरक्षा के साथ रहते थे। महल के ऊपरले तल्ले पर, बड़े पलंग पर लेटते समय भी, अपने भय-भीत होने की बात स्मरण कर, तथा अब अर्हतपद प्राप्त कर लेने पर जङ्गल आदि में, जहाँ तहाँ विचरते हुये भी, अपने को निर्भय देख, प्रसन्नता से कहते थे:—"अहो! सुख! अहो! सुख!"

इसे सुन भिक्षुओं ने भगवान् से कहा कि—

"आयुष्मान् भद्दिय अपना अर्हत् होना (=अञ्ञं) कह रहे हैं।"

भगवान् ने कहा, "भिक्षुओ! भद्दिय, केवल अब ही सुख पूर्वक विहार करने वाला नहीं है, यह पहले भी सुख पूर्वक ही विहार करने वाला था"। भिक्षुओं ने भगवान् से, उस बात के स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की:—

पूर्व-समय बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व ने (एक) प्रसिद्ध, महानुकुल में ब्राह्मण हो, जन्म लिया था। भोगों (=कामों) में

लिप्त रहने के दुष्परिणाम (=आदीनव) और वैराग्य (=निष्क्रमण) में लाभ देख कर, भोगों को छोड़, हिमवन्त् में प्रवेश कर, वह ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुये । उन्होंने आठ समापत्तियों को प्राप्त किया । इन के अनुयायी भी अनेक थे; पांच सौ तो तपस्वी थे । इन्हों ने वर्षा-काल आने पर हिमवन्त् से निकल, तपस्वियों के गण सहित, ग्राम, नगर (=निगम) आदि में घूमते हुये, बाराणसी पहुंच राजा के आश्रित, राज-उद्यान में वर्षा-वास किया । वहां वर्षा के चारों मास रह कर, राजा से (चलने के लिये) पूछा । राजा ने प्रार्थना की—"भन्ते आप वृद्ध हैं । आप को हिमवन्त् से क्या ? शिष्यों को हिमवन्त् को भेज कर, आप यहीं रहें ।"

बोधिसत्व ने अपने प्रधान शिष्य को पांच सौ तपस्वी सौंप कर कहा:—"जा । तू इन के साथ हिमवन्त् में रह । मैं यहीं रहूंगा ।" (इस प्रकार) उन को चलता कर, आप वहीं रहने लगे । इन का, वह प्रधान शिष्य राज-प्रव्रजित था । उस ने बड़े भारी राज्य को छोड़, प्रव्रजित हो कसिण-परिकर्म (=योग-अभ्यास) कर, आठ समापत्तियां प्राप्त की थीं । हिमवन्त् में तपस्वियों के साथ रहते २ एक दिन, उस ने (अपने) आचार्य्य को देखने की इच्छा से तपस्वियों को बुला कर कहा:—'तुम उत्कण्ठा रहित हो, यहीं रहो । मैं आचार्य्य की वन्दना करके लौटूंगा । और आचार्य्य के पास जा कर, प्रणाम कर, कुशल-क्षेम पूछ, एक चटाई फैला कर, उस पर आचार्य्य के समीप ही लेट रहा ।

उस समय राजा तपस्वी को देखने की इच्छा से उद्यान में जा कर, प्रणाम कर, एक ओर बैठ रहा । शिष्य-तपस्वी राजा को देख कर भी (अपने स्थान से) नहीं उठा । लेटा ही लेटा 'अहो ! सुख ! अहो ! सुख'—इस प्रकार का उदान (=प्रीति-वाक्य) कहता रहा । राजा ने 'यह तपस्वी मुझे देख कर भी नहीं उठा है' (सोच) असन्तुष्ट हो बोधिसत्व से कहा—"भन्ते । मालूम होता है, इस तपस्वी को पेट भर खाने को मिला है । तभी तो 'उदान' कहता हुआ सुख-पूर्वक लेटा है ।" "महाराज ! पहले, यह तपस्वी भी तुम्हारे सदृश एक राजा था । सो 'मैं ने राज्य-श्री का आनन्द लूटते कितने ही शस्त्रधारी पहरेदार मेरी रक्षा करते हैं, तो भी, इस प्रकार का सुख अनुभव नहीं किया' (सोच) यह अपने प्रव्रज्या-सुख के बारे में इस प्रकार का उदान कह रहा है ।"

यह कह बोधिसत्त्व ने राजा को धर्म-कथा कहने के लिये, यह गाथा कही :—

यञ्च अञ्जे न रक्खन्ति यो च अञ्जे न रक्खति,
स वे राज ! सुखं सेति कामेसु अनपेक्खवोति ॥

[जिसकी न दूसरे रक्षा करते हैं, और जो न दूसरों की रक्षा करता है; राजन् ! वही भोगों (=कामों) में अपेक्षा-रहित व्यक्ति सुख से सोता है ।]

यञ्च अञ्जे न रक्खन्ति का अर्थ है, जिस व्यक्ति की दूसरे बहुत से व्यक्ति आरक्षा नहीं करते । यो च अञ्जे न रक्खति का अर्थ है, जो अकेला व्यक्ति, मैं राज्य का सञ्चालन करूं,(सोच) दूसरे बहुत से व्यक्तियों की आरक्षा (=हिफाजत) नहीं करता है । स वे राज ! सुखं सेति का अर्थ है, महाराज ! वह अकेला, अद्वितीय, प्रविविक्त (=एकान्तसेवी) व्यक्ति, शारीरिक तथा मानसिक सुख से समन्वित हो सोता है । यह तो देशना (=पांति) का शब्दशः अर्थ हुआ । नहीं तो, इस प्रकार का व्यक्ति सुख से केवल सोता ही नहीं है, वह सुख से चलता है, ठहरता है, बैठता है, सोता है—अर्थात् सब अवस्थाओं में (=इर्य्यापथ) वह सुखी ही रहता है । कामेसु अनपेक्खवा=वस्तु-कामना तथा किलेस (=पापेच्छा)-कामना में आसक्ति-रहित हो, जिसके छन्द=राग का नाश हो गया है जो तृष्णा-रहित है 'हे राजन् ! इस प्रकार का व्यक्ति सब शारीरिक अवस्थाओं में सुख से विहार करता है । राजा धर्म-देशना (=धर्मोपदेश) सुन, सन्तुष्ट-चित्त हो, प्रणाम कर, (अपने) निवास-स्थान पर गया । और (वह) शिष्य भी आचार्य्य को प्रणाम कर हिमवन्त को चला गया । लेकिन बोधिसत्त्व वहीं विहार करते हुये, ध्यानावस्थित रह, काल करके ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुये । शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखा, दोनों कहानियों को कह, तुलनाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया । उस समय (का) शिष्य, भद्दिय स्थविर था, और शास्ता तो मैं ही था ।

(इति) सुखविहारि जातक ॥१०॥

॥ अपण्णक वर्ग प्रथम ॥

११ लक्खण जातक (१ । २ । १)

'होति सीलवतं अत्थो'—इस गाथा को, राज गृह के समीप वेलुवन में विहार करते हुये (बुद्ध ने), देवदत्त के बारे में कहा । देवदत्त का (भगवान् को)

मारने का प्रयत्न करने तक का वृत्तान्त खण्डहाल * जातक में; धनपाल (हाथी) को भेजने तक का वृत्तान्त चुल्लहंसजातक में, † तथा पृथ्वी में प्रवेश करने तक का वृत्तान्त सोलहवें परिच्छेद में समुद्दवाणिज जातक ‡ में आयेगा।

एक समय देवदत्त ने भगवान् से पांच बातें ** (=वस्तु) स्वीकार करने की प्रार्थना की। उस के (पांचबातें) अस्वीकृत होने पर, वह संघ में फूट पैदा कर, पांच सौ भिक्षुओं को साथ ले, गया-सीस में रहने लगा। (समय बीतने पर) उन भिक्षुओं को कुछ अक़ल आई। यह जान कर, बुद्ध ने (अपने) दोनों प्रधान शिष्यों, को कहाः-

"सारिपुत्त! तुम्हारे साथी पांच सौ भिक्षु, देवदत्त के मत को पसन्द कर उस के साथ चले गये, लेकिन अब उन को अक़ल आगई है। तुम बहुत से भिक्षुओं के साथ वहां जाओ, और उन्हें धर्मोपदेश द्वारा मार्ग-फल का बोध करवा, साथ ले आओ।" तब वह वैसे ही (गयासीस) गये; और उन्हें धर्मोपदेश द्वारा मार्ग-फल का अवबोध करवा, फिर एक दिन अरुणोदय के समय उन भिक्षुओं को साथ लेकर, वेलुवन चले आये। आकर, सारिपुत्र स्थविर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़े हुये। तब भिक्षुओं ने स्थविर की प्रशंसा करते हुये, भगवान् से कहाः—

"भन्ते! हमारे ज्जेष्ठ-भ्राता, धर्मसेनापति (सारिपुत्र) पांच सौ भिक्षुओं के बीच में आते कैसे सुन्दर लगते हैं लेकिन देवदत्त तो अनुयायियों (=परिवार) के बिना रह गया।"

"भिक्षुओ! जाति-संघ के बीच में आते हुये सारिपुत्र, केवल अब ही सुन्दर नहीं लगते हैं, पहले भी वह शोभा देते थे, और देवदत्त, केवल अब ही बे-जमाती (गण-रहित) नहीं हुआ, पहले भी हुआ ही है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात को प्रगट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट कीः—

पूर्व समय में मगध देश के राजगृह नगर में, कोई मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्त्व ने मृग की योनि में जन्म ग्रहण किया था। बड़े

---

* ५४२ जातक। † ५३३ जातक। ‡ ४६६ जातक।

** सभी भिक्षु आजीवन आरण्य वासी; वृक्षों के नीचे रहने वाले (=घर में न रहें); पंसु-कूलिक (=गुदड़ी धारी); पिण्डपातिक (=भिक्षा पर ही जीवित रहना) तथा शाकाहारी (=अमांस भोजी) हों।

हो कर वह (एक) हज़ार मृगों के दल के साथ, जंगल में वास करते थे। उन के लक्षण और काल नाम के दो पुत्र थे। उन्हों ने अपने बूढ़ा होने पर, "तात ! मैं अब बूढ़ा हो गया, अब तुम इस मृग-गण को संभालो" कह एक २ पुत्र को पांच २ सौ मृग सौंप दिये। उस समय से, वह दोनों जने मृग-गण को लेकर घूमने लगे। मगध देश में खेती के दिनों में, खेती पकने के समय, जंगल में मृगों को खतरा होता था। खेती-खाने वाले मृगों को मारने के लिये लोग जहां तहां गढ़े खोदते, कांटे लगाते, पत्थर-यन्त्रों (=पाषाण यन्त्र) को संवारते, कूट-पाश आदि बन्धन बांधते थे, (जिस से) बहुत से मृग मारे जाते थे। बोधिसत्त्व ने खेती पकने का समय जान, पुत्रों को बुलवा कर कहा—"यह खेती पकने का समय है। (इस समय) बहुत से मृग मारे जाते हैं। हम बड़े (लोग) तो जिस किसी ढंग से एक ही स्थान पर (रहते) दिन काट लेंगे, लेकिन तुम अपने २ मृग-गण को ले कर, जंगल में, पर्वत में जाओ; और (वहां रह) खेती कटने के समय (लौट) आना।"

वे पिता के वचन को 'अच्छा' (कह), अपने अनुयायियों सहित निकल पड़े। उन के जाने के मार्ग में रहने (वाले) मनुष्य, "इस समय मृग पर्वतों पर चढ़ते हैं, इस समय पर्वतों से उतरते हैं" जानते थे और जहां तहां छिपने योग्य जगहों पर छिप कर वे बहुत से मृगों को मार डालते थे। काल (नामक) मृग अपनी मूढ़ता के कारण, यह जाने योग्य समय है (अथवा) यह नहीं जाने योग्य समय है, न समझ, मृग-गण को ले पूर्वाण्ह के समय भी, सायङ्काल के समय भी, रात्री के समय भी, (तथा) प्रातःकाल के समय भी ग्राम-द्वार के पास से ही निकलता था। जहां तहां प्रगट ही खड़े, अथवा छिपे रह मनुष्य बहुत से मृगों को मार डालते। इस प्रकार अपनी मूढ़ता के कारण (उसने) बहुत से मृगों को मरवा कर, बहुत थोड़े से ही मृगों के साथ आरण्य में प्रवेश किया। लेकिन पण्डित=व्यक्त, उपायकुशल लक्षण (नामक) मृग, 'इस समय जाना चाहिये, इस समय नहीं जाना चाहिये' जानता था। वह न ग्राम-द्वार से जाता, न दिन में जाता, न रात्री (=शाम) के समय जाता, न प्रातः-काल के समय जाता; मृग-गण को लेकर केवल आधी-रात के समय जाता। इस लिये वह एक भी मृग का नाश बिना होने दिये ही जंगल में प्रविष्ट हुआ। वहां चार महीने रह कर वे (मृग) खेत कट जाने पर, पर्वत से उतरे। काल मृग, लौटते समय भी, पहली ही तरह से (लौट कर) बाकी मृगों को भी मरवा कर अकेला ही (वापिस) आया। लेकिन लक्षण मृग की मंडली का एक भी मृग नष्ट न हुआ और अपने पांच सौ मृगों के साथ, माता पिता के पास (वापिस)

आया। बोधिसत्व ने दोनों पुत्रों को आता देख, मृग-गण से सलाह (=बात चीत) कर, यह गाथा कही:—

होति सीलवतं अत्थो पटिसन्थार वुत्तिनं,
लक्खणं पस्स आयन्तं जाति संघ पुरक्खतं;
अथ पस्ससि मं कालं सुविहीनं च जातिहीति ॥

(सदाचारी) और श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने वालों की उन्नति होती है। जाति-संघ के आगे २ आते हुये लक्षण को देखो और जाति-संघ से रहित (अकेले) आते हुये इस काल को (तो) तुम देखते ही हो। यहाँ सीलवतं का अर्थ है, सुख-शील से युक्त; आचार-युक्त (=सदाचारी)। अर्थ = उन्नति। 'पटि सन्थार वुत्तिनं' धम्म पटिसन्थार तथा आमिष पटिसन्थार—इन दोनों की वृत्ति को कहते हैं पटिसन्थार वुत्ति। सो उन पटिसन्थारवृत्ति वालों का पाप निवारण सम्बन्धी उपदेश = अनुशासना रूपी पटिसन्थार (=बात-चीत) ही धर्म-पटिसन्थार है। गोचर, लाभ, गिलानुपट्ठाक (=रोगी की सेवा), धार्मिक रक्षा आदि सम्बन्धी पटिसन्थार ही आमिष-पटि सन्थार कहा जाता है। ऐसा कहा गया है कि इन दोनों पटिसन्थारों में जो स्थित हैं; सदाचारी हैं, पण्डित हैं; उनकी उन्नति होती है। अब इस उन्नति को दिखाने के लिये, जैसे पुत्र माता को बुलाता हो वैसे 'लक्खणं पस्स' आदि कहा। संक्षेप में इसका अर्थ है:—(सदा-)आचार-पटिसन्थार युक्त, एक मृग को भी बिना खोये, बिरादरी के साथ आगे २ आते हुये अपने पुत्र को देखा, और उसी (सदा-) आचार–पटिसन्थार सम्पत्ति से रहित, मूढ़, एक भी जाति भाई को बिना बचाये, सभी जातियों से रहित, अकेले आने वाले इस काल मृग को देखा (अथ पस्ससि मं कालं)। इस प्रकार पुत्र की प्रशंसा करते हुये बोधिसत्व आयु-भर (जीवित) रह कर कर्मानुसार परलोक सिधारे।

बुद्ध ने भी 'भिक्षुवो! जाति-संघ भाइयों के साथ आता हुआ सारिपुत्र केवल अब ही सुन्दर नहीं लगता, पहले भी शोभा देता था। और देवदत्त, केवल अब ही गण से रहित नहीं हुआ, पहले भी हुआ है'—इस धर्म देशना को दिखा, दोनों कहानियों को जोड़, तुलना कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का काल मृग (अब का) देवदत्त था और उसकी परिषद् भी देव-दत्त परिषद् ही थी। लक्षण मृग सारिपुत्र है। लेकिन उसकी मण्डली

बुद्ध की मण्डली ही है । माता, (अब की) राहुल-माता हुई । और पिता तो मैं ही था ।

(इति) लक्खण जातक ॥११॥

१२. निग्रोध मृग-जातक (१।२।२)

"निग्रोधमेव सेवेय्य ..." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, कुमार काश्यप स्थविर की माता के बारे में कही । वह राजगृह नगर के (एक) महासम्पत्तिशाली सेठ की लड़की थी । अति स्वच्छ-विचार (=ऊँचे कुशल-मूल, परिमार्जित-संस्कार, अन्तिम-शरीर वाली (उस लड़की) के हृदय में मुक्त होने का कारण वैसे ही जागृत हो रहा था, जैसे घड़े के अन्दर प्रदीप । जब से होश सम्भाला, तभी से उसका मन गृहस्थ में न लगता था । उसने प्रव्रजित होने की इच्छा से माता पिता से कहा:—"अम्मा-तात ! मेरा मन घर में नहीं लगता । मैं (मोक्ष की ओर) ले जाने वाले बुद्ध-धर्म में प्रव्रजित होना चाहती हूं । आप मुझे प्रव्रजित करायें ।"

"अम्म ! क्या कहती है ? यह धनी कुल, और तू हमारी अकेली लड़की ! तू प्रव्रजित नहीं हो सकती ।"

माता-पिता से बार २ प्रार्थना करने पर भी, प्रव्रज्या की आज्ञा न मिलने पर, वह सोचने लगी:—"अच्छा (=हो) । पति-कुल जाकर, स्वामी को मना कर प्रव्रजित होऊंगी" । फिर आयु-प्राप्त होने पर, पति-कुल जाकर, पति को देवता बना, शीलवान्, सदाचारिणी (=कल्याण धर्मा) हो गृहस्थ में रहने लगी । उनके सहवास से उसकी कोख में गर्भ प्रतिष्ठित हो गया । (लेकिन) उसको गर्भ के प्रतिष्ठित होने का पता नहीं लगा । उस समय उस नगर में उत्सव (=नक्षत्र) की घोषणा हुई । सब नगरवासी उत्सव मनाने लगे । नगर देव-नगर की भांति अलंकृत किया गया । लेकिन उसने, इस प्रकार के विशाल उत्सव के रहने पर भी, न अपने शरीर पर (चन्दनादि का) लेप किया, न उसे अलंकृत किया । स्वाभाविक वेष में ही घूमती रही ।

उसके स्वामी ने उस से पूछा:—"भद्रे ! सारा नगर (तो) उत्सव मना रहा है, तू अपने को क्यों नहीं सजा रही है ?"

"आर्य्य ! यह शरीर बत्तीस प्रकार की गन्दगियों से * भरा है, इसे अलङ्कृत करने ही से क्या ? यह शरीर न तो देव का बनाया हुआ है, न ब्रह्म का बनाया हुआ

* केस, रोम, नख, दान्त, त्वच् आदि देखो सत्तीपट्ठान सुत्त मज्झिम निकाय ।

है, न स्वर्णमय है, न मणिमय, न हरिचन्दनमय है, न ही पुण्डरीक, कमल, उत्पल (आदि) के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, न अमृतौषधि से पूर्ण है। (यह) गन्दगी में पैदा हुआ माता-पिता (के संयोग) से अस्तित्व में आया है। अनित्यता, नष्ट होना, मर्दित होना, टूटना, ध्वस्त होनाः--यही इस का स्वभाव है। यह श्मशान को बढ़ाने वाला है, तृष्णा का उपादान (-कारण) है। शोकों का घर है विलाप का कारण (=वस्तु) है सब रोगों का आलय है (दण्ड-) कर्मों का भोगने वाला है। अन्दर से गन्दा है; बाहर नित्य (गन्दगी)चूती रहती है। कीड़ों का निवासस्थान (=आवास) है। श्मशान का यात्री है। मरना (ही) इस का अन्त है। (यह शरीर) सब लोगों की दृष्टि में रहता हुआ भीः—

"अटठी नहारु संयुत्तो तचमंस विलेपनो,
छविया कायो परिच्छन्नो यथाभूतं न दिस्सति ॥
अन्तपूरो उदरपूरो यक पेलस्स वत्थिनो,
हदयस्स परफासस्स वक्कस्स पिहकस्स च ॥
सिङ्घाणिकाय खेलस्स, सेरस्स, मेदस्स च
लोहितस्स, लसिकाय, पित्तस्स च वसाय च ॥
अथस्स नवहि सोतेहि असुची सवति सब्बदा
अक्खिम्हा अक्खिगूथको, कण्णम्हा कण्णगूथको ॥
सिङ्घाणिका च नासातो मुखेन वमति एकदा
पित्तं सेम्हं च वमति कायम्हा सेदजल्लिका ॥
अथस्स सुसिरं सीसं मत्थ लुङ्गेन पूरितं,
सुभतो नं मञ्ञति बालो अविज्जाय पुरक्खतो ॥
अनंतादीनवो कायो विसरुक्ख समूपमो,
आवासो सब्बरोगगनं पुञ्जो दुक्खस्स केवलो ॥
सचे इमस्स कायस्स अन्तो वाहिरतो सिया।
दण्डं नूनमहेत्वान काके सोणे च वारये ॥
दुग्गन्धो असुची कायो कुणपो उक्करूपमो,
निन्दितो चक्खुभूतेहि कायो बालाभिनन्दितो ॥

(यह हड्डी और नसों का संयोग है, ऊपर से त्वच् और मांस का लेप है, और उस के ऊपर चमड़ी से ढका है। (इस लिये इस शरीर का यथार्थ स्वरूप

नहीं दिखाई देता। (यह) आँतों आमाशय, यकृत्-पेल, उदरस्थ (बस्ती), हृदय, फुफ्फुस, वुक्क, प्लीहा (पिहक) सींढ़, थूक पसीने वर (च्चोद), रक्त, लसिका * पित्त और चर्बी (वस)—इन सब से भरा हुआ है। इस के नौ स्रोतों से सदा गन्दगी बहती है—आँखों से आँख का मैल, कानों से कान का मैल, नाक से सींढ। कभी २ मुंह से पित्त और कफ की उल्टी, शरीर से पसीना (=स्वेद जल)। इस का छिद्रों वाला शीस मत्थ-लुङ्ग † से भरा है। अविद्या से घिरे हुये लोगों को यह (शरीर) आकर्षक (=शुभ) मालूम होता है। यह विष-वृक्ष सदृश शरीर अनेक दोषों (=आदिनव) से युक्त है। सब रोगों का घर है। केवल दुःख का ढेर है। यदि (किसी तरह से) इस शरीर के अन्दर का हिस्सा बाहर आ जाये, तो निश्चय से डण्डा लेकर कौओं और कुत्तों को हटाना पड़े। (इसी लिये) भगवान् (=चक्षुभूत) ने इस दुर्गन्ध-युक्त, अशुचि-पूर्ण कचवर-सदृश, गन्दे शरीर की निन्दा की है। बाल (मूर्ख) ही इस पर रीझते हैं (=प्रशंसा करते हैं)।"

"आर्य पुत्र! इस शरीर को अलङ्कृत करके क्या करूंगी? इस शरीर का अलङ्कृत करना क्या वैसा ही नहीं है जैसा गन्दगी भरे घड़े के बाहर चित्र बनाना? सेठ-पुत्र ने उस के इस वचन को सुन कर कहाः—भद्रे! यदि तू इस शरीर में इतने दोष देखती है, तो प्रव्रजित क्यों नहीं होती?" "आर्य पुत्र! यदि मुझे प्रव्रज्या मिले, तो मैं आज ही प्रव्रजित होऊं।" सेठ-पुत्र ने 'अच्छा' मैं तुझे प्रव्रजित कराऊंगा, कह, महा-दान दे, महासत्कार कर, बहुत सी साथनों (परिवार) के साथ, उसे भिक्षुणी-विहार में ले जा कर, वहाँ देवदत्त के पक्ष की भिक्षुणियों के पास प्रव्रजित कराया। वह प्रव्रज्या प्राप्त कर, संकल्प पूर्ण होने के कारण सन्तुष्ट हुई। तब उस के गर्भ के परिपक्व होने से, उस की इन्द्रियों (=आकार-प्रकार) का बिगाड़ (=अन्यथा होना); हाथ पैर तथा पीठ का भारीपन, तथा पेट (=उदर पटल) का मोटापन देख कर, भिक्षुणियों ने पूछाः—"आर्ये। तू गर्भिणी सी प्रतीत होती है। सो यह क्या है?"

"आर्ये। मैं इसे नहीं जानती कि यह क्या है, लेकिन मेरा शील (=सदाचार) परिपूर्ण हैं।"

तब उन भिक्षुणियों ने उसे देवदत्त के पास ले जा कर, देवदत्त से पूछाः— "आर्य! इस कुलपुत्री ने बड़ी कठनाई से (अपने) स्वामी को मना कर प्रव्रज्या

* कोहनी आदि जोड़ों में स्थित तरल पदार्थ।

† खोपड़ी के भीतर की चर्बी।

प्राप्त की। लेकिन अब इसे गर्भ दिखाई देता है। हम नहीं जानतीं कि यह गर्भ इसे गृहस्थ रहते समय से ही है, अथवा प्रव्रजित होने पर रहा है ? अब हम क्या करें ?" देवदत्त ने बुद्ध न होने के कारण, तथा क्षान्ति मैत्री और दया का भी अभाव होने के कारण, सोचा "मुझे चाहिये कि मैं इस का चीवर उतरवा दूं (= अपप्रव्रजित करा दूं), नहीं तो (लोग) मेरी यह कह कर निन्दा करेंगे कि देवदत्त के पक्ष की एक भिक्षुणी कोख में गर्भ लिये फिरती है और देवदत्त उस की उपेक्षा करता है।"

तब उसने बिना सोचे विचारे, पत्थर के रोड़े की तरह पलट कर कहा— "जाओ, इसे अपप्रव्रजित कर दो।" वे, उसका बचन सुन, उठ, प्रणाम कर विहार (=उपाश्रय) चली गईं।

तब इसने कम आयु की भिक्षुणियों से कहा—"आर्ये! न तो देवदत्त स्थविर 'बुद्ध' हैं, न ही मैं उनकी अनुयायी होकर प्रव्रजित हुई हूं। मैं, जो लोकाग्र, सम्यक् सम्बुद्ध हैं, उनकी अनुयायी हो प्रव्रजित हुई हूं। और यह 'प्रव्रज्या' मुझे बड़ी कठिनाई से मिली है, सो मेरी इस (प्रव्रज्या) का लोप मत करो। आओ, मुझे (साथ) लेकर, शास्ता के पास जेतवन चलो।" वे उसे साथ ले, राजगृह से पैंतालीस योजन मार्ग क्रम से चलकर, जेतवन पहुंचीं। बुद्ध को प्रणाम कर, उन्होंने वह बात निवेदित की। शास्ता ने सोचा— "यद्यपि इसको गृहस्थ के समय ही गर्भ रहा है, लेकिन फिर भी तीर्थिकों को यह कहने को हो जायगा कि श्रमण गौतम, देवदत्त द्वारा छोड़ी (भिक्षुणी) को साथ लिये फिरता है। इसलिये इस कथा को शान्त करने के लिये, राजा सहित परिषद् के बीच में, इस अधिकरण (=मुकद्दमे) का फैसला होना चाहिये।"

फिर एक दिन, कोशल-नरेश, प्रसनचित्, बड़े अनाथपिण्डिक, छोटे अनाथपिण्डिक, महाउपासिका विशाखा तथा अन्य प्रसिद्ध २ महाकुलों को बुलवा कर, सायङ्काल के समय चारों प्रकार की परिषद् के एकत्र होने पर, उपाली स्थविर को संबोधित किया:—"जाओ! चारों प्रकार की परिषद् के बीच में इस कुमार-वयस्का भिक्षुणी के कर्म की परीक्षा करो।"

"भन्ते! अच्छा" कह, स्थविर ने परिषद् के बीच में जाकर, अपने आसन पर बैठ, राजा के आगे उपासिका विशाखा को बुलवाकर, (उसे) यह अधिकरण सौंपा:—"विशाखे! इस कुमार-वयस्का ने अमुक महीने, अमुक दिन प्रव्रज्या ग्रहण की है। तू जाकर, इसका गर्भ प्रव्रज्या से पूर्व का है, अथवा पीछे का; इसे यथार्थ से जान।"

उपासिका ने 'अच्छा' कह, इसे स्वीकार कर, क़नात तनवा दी। और क़नात के अन्दर तरुण-वयस्का भिक्षुणी के हाथ, पाँव, नाभी तथा उदर तक देख कर, महीने और दिनों का विचार कर, ठीक से जान लिया, कि गृहस्थ रहते यह गर्भ ठहरा। फिर स्थविर के पास जाकर, यह बात निवेदित की। स्थविर ने चारों प्रकार की परिषद् के बीच में उस भिक्षुणी को बरी किया। वह बरी होकर भिक्षु-सङ्घ तथा शास्ता को प्रणाम कर, भिक्षुणियों के साथ ही भिक्षुणी-विहार को गई। गर्भ से पूर्व समय में पद्मोत्तर (बुद्ध) के चरणों में प्रार्थना करने के कारण गर्भ के परिपक्व होने पर उस के महाप्रतापी, पुत्र का जन्म हुआ।

तब एक दिन राजा ने भिक्षुणियों के विहार के समीप से जाते हुये, बालक की आवाज सुन कर मन्त्रियों से पूछा। अमात्यों ने मालूम कर उसे कहा—"देव! उस तरुण-वयस्का भिक्षुणी के पुत्र हुआ है। यह उसकी आवाज़ है।"

"भणे! भिक्षुणियों को बच्चों के पालन पोषण में कठिनाई होती है, इस लिये इस (बालक) को हम पालेंगे" (कह) राजा ने उस बच्चे को नटी स्त्रियों को दिलवा कर, (राज-) कुमार की तरह पालन करवाया। नामग्रहण के दिन, उस का नाम काश्यप रक्खा। (राज-) कुमार की तरह पालन होने से, वह कुमार-काश्यप नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह सात वर्ष की आयु में शास्ता के पास प्रव्रजित हुआ। आयु पूरी होने पर उपसम्पदा प्राप्त कर, समय बीतने पर सुन्दर धर्मोपदेशक हुआ। शास्ता ने 'भिक्षुओ! मेरे सुन्दर (=चित्र) धर्म-कथिक श्रावकों में कुमार काश्यप सर्व-श्रेष्ठ है' * (कह) उसे सर्व-श्रेष्ठ पद दिया। आगे चलकर, वम्मिक सूत्र † सुनने पर, उस ने अर्हत्-पद प्राप्त किया। उस की भिक्षुणी माता ने भी विदर्शना-भावना (=योगाभ्यास) द्वारा अग्र-फल (=अर्हत्व) प्राप्त किया। कुमार-काश्यप स्थविर, बुद्धों के शासन रूपी आकाश में पूर्ण-चन्द्र की भान्ति प्रकाशित हुये।

एक दिन तथागत, भिक्षाटन से लौट कर, भोजन करने के बाद, भिक्षुओं को उपदेश दे गन्धकुटी में प्रविष्ट हुये। भिक्षु उपदेश ग्रहण कर, अपने २ दिन के स्थानों तथा रात्रि के स्थानों में दिन बिता कर, शाम के समय धर्म-सभा में एकत्रित हो, "आवुसो! देवदत्त ने 'बुद्ध' न होने के कारण, तथा क्षमा, मैत्री और दया

* अंगुत्तर निकाय, एतदग्ग वग्ग।

† मज्झिम निकाय।

का अभाव होने के कारण, कुमार काश्यप स्थविर को क्षण में नष्ट कर दिया। लेकिन सम्यक् सम्बुद्ध ने, धर्म-राज होने के कारण, तथ क्षमा, मैत्री और दया रूपी सम्पत्ति से युक्त होने के कारण, उन दोनों को आश्रय दिया' कहते हुये, बैठे बुद्ध-गुणों की प्रशंसा कर रहे थे।

शास्ता ने बुद्ध-लीला से धर्म-सभा में आ, बिछे आसन पर बैठ कर पूछा, "भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे?"

सभी ने उत्तर दिया, "भन्ते! आप ही की गुण-कथा (कहने) में लगे थे।"

"भिक्षुओ! तथागत केवल अब ही, इन दोनों के आश्रय (=दाता) तथा प्रतिष्ठा (रखने वाले) नहीं हुये, पहले भी हुये हैं।"

भिक्षुओं ने भगवान् से, उस बात को प्रगट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की:—

"पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व ने मृग की योनी में जन्म ग्रहण किया। वह माता की कोख से निकलते ही सोने के रंग का था। उसकी आंखें मणि की गोलियों के सदृश, उसके सींग रजत-वर्ण के (उस का) मुंह लाल रंग के दो शाली की राशि के सदृश, हाथ पैर के सिरों पर, जैसे लाख से मढ़ा हो, और उस की पूंछ चमरी (गाय) की सी थी। लेकिन उस का शरीर घोड़े के बच्चे जितना बड़ा था। वह पांच सौ मृगों के साथ जंगल में रहता था। और उसका नाम था निग्रोध मृग-राज। वहां से थोड़ी ही दूर पर (=अविदूर) पांच सौ मृगों के साथ, एक दूसरा भी शाखा-मृग रहता था। वह भी सुनहरे ही रंग का था।

उस समय बनारस का राजा मृगों का बध करने पर तुला हुआ था। बिना मांस के वह खाता ही न था। मनुष्यों के काम छुड़ा, सारे निगमों तथा जनपदों के लोगों को इकट्ठा करवा, प्रतिदिन शिकार के लिये जाता था। मनुष्यों ने सोचा:— "यह राजा (प्रतिदिन) हमारा काम छुड़वाता है। क्यों न हम उद्यान में घास (=निवाप) बो पानी रख, बहुत से मृगों को उद्यान में दाखिल करा, द्वार बन्द कर, राजा को सौंप दें?" उन सब ने उद्यान में मृगों के लिये घास और तृण बो दिया, पानी रख दिया। फिर वे दरवाज़े लगा कर, नगर के मनुष्यों के सहित, मुद्गर आदि नाना प्रकार के हथियार हाथ में ले, जंगल में घुसे, मृगों को ढूंढते हुये, "(घेरे के) बीच में आये मृगों को पकड़ेंगे सोच, भोजन भर स्थान

को घेर, (उस घेरे को) कम करते हुये, निग्रोध मृग तथा शाखा मृग के निवास-स्थानों को बीच में घेर लिया। फिर, उस मृग यूथ को देख, वृक्ष, गुल्म आदि तथा भूमि को मुद्गरों से पीटते हुये, मृगों के झुण्ड को छिपी २ जगहों से निकाला और तलवार, शक्ति, धनुष आदि आयुधों को निकाल, कोलाहल करते हुये, उस झुंड को उद्यान में दाखिल कर, द्वार को बन्द कर, राजा के पास जा, कहा—'देव! लगातार शिकार के लिये आने से हमारे काम की हानि होती है। हम ने जंगल से मृगों को लाकर (उन से) आप का उद्यान भर दिया। अब से आप उन का मांस खायें'। फिर राजा से आज्ञा मांग चले गये।

राजा ने उन की बात सुन, उद्यान में जा, मृगों को देखते हुये, (उन में) दो सुनहरी मृगों को देख, उन्हें अभय-दान दिया। उस दिन से लगा कर, कभी वह स्वयं जा कर, एक मृग को मार लाता, कभी उस का रसोइया ही जा कर मृग को मार लाता। मृग धनुष को देखते ही मरने के भय से डर कर भागते। दो तीन चोटें खा कर दुःखित होते, ज़खमी (=रोगी) होते और मर भी जाते। मृग यूथ ने यह बात बोधिसत्त्व से कही। उस ने शाखा मृग को बुलवा कर कहाः— 'सौम्य! मृग बहुत नष्ट हो रहे हैं। यदि मरना अवश्य ही है, तो अब से मृग तीर से न बेंधे जायें। गर्दन काटने की जगह (धर्म गण्डिक स्थान) पर मृगों की बारी बंध जावे। एक मेरी परिषद् मंडली में से एक की बारी हो आवे, एक दिन तेरी मंडली में से एक की। जिस की बारी आवे, वह मृग धर्म गण्डिका पर जा कर, सिर रख कर पड़ रहे। इस प्रकार मृग ज़खमी न होंगे।"

उस ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उस समय से जिस की बारी आती, वह मृग जा कर, धर्म-गण्डिका पर सीस रख कर पड़ रहता। रसोइया आकर, वहां पड़े को ले कर, जाता।

एक दिन शाखा-मृग की टोली में एक गर्भिणी हिरणी की बारी आई। उस ने शाखा-मृग के पास जाकर कहाः—"स्वामी! में गर्भिणी हुं। पुत्र पैदा होने पर, हम दो जने बारी २ से जायेंगे। आज मेरी जगह किसी और को भेज दो।" उस ने उत्तर दिया, "मैं तेरी जगह, किसी दूसरे को नहीं भेज सकता जो तुझ पर पड़ी है, उसे तू ही जान। जा।" उस के दया न दिखाने पर, वह बोधिसत्त्व के पास गई, और जा कर वही बात कही। वह उस (हिरणी) की बात सुन, 'अच्छा तू जा, मैं तेरी बारी टाल दूंगा' कह, स्वयं जाकर धर्म गण्डिका पर सिर रख कर लेट रहा। रसोइये ने उसे देख, 'अभय-प्राप्त मृग-राज गण्डिका पर पड़ा

है, क्या कारण है ? ' (सोच) जल्दी से जा कर राजा से कहा। राजा ने उसी समय रथ पर चढ़, बहुत से जन-समूह (=परिवार) के साथ आकर, बोधिसत्त्व को देख कर पूछा—"सौम्य मृगराज ! क्या मैं ने तुझे अभय-दान नहीं दिया ? यहां तू किस लिये पड़ा है ?"

"महाराज ! गर्भिणी हिरणी ने आकर कहा कि मेरी बारी किसी दूसरे पर डालदो। मैं एक का मरण-दुख किसी दूसरे पर न डाल सकता था। इस लिये अपना जीवन उसे देकर, और उस का मरना अपने ऊपर लेने के लिये, मैं यहां आ कर पड़ा हूं। महाराज ! इस में और कोई दूसरी शंका न करें।"

राजा ने कहा—"स्वामी ! स्वर्ण-वर्ण मृग-राज ! मैं ने तेरे सदृश क्षमा, मैत्री और दया से युक्त मनुष्यों में भी किसी को इस से पहले नहीं देखा। इस लिये मैं तुझ पर प्रसन्न हूं। उठ, तुझे और उस को—दोनों को अभय देता हूं।"

"महाराज ! हम दोनों को अभय मिलने पर बाकी क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! बाकियों को भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! इस प्रकार केवल उद्यान के ही मृगों को अभय मिलेगी। बाकी क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उन को भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! मृग तो अभय प्राप्त करें, बाकी चतुष्पाद (=चौपाये) क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उन को भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! चतुष्पाद तो अभय प्राप्त करें, बाकी पक्षी (=द्विज) क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उन को भी अभय देता हूं।"

"महाराज ! पक्षी तो अभय प्राप्त कर, बाकी जल में रहने वाले जन्तु (=मच्छ) क्या करगें ?"

"स्वामी ! उन को भी अभय देताहूं।"

इस प्रकार महा-सत्व (=बोधिसत्त्व) राजा से सब सत्वों के लिये अभय की याचना कर, उठ कर, राजा को पांच शीलों में प्रतिष्ठित कर, "महाराज ! धर्माचरण करो। माता पिता, पुत्र पुत्री, ब्राह्मण-गृहपति, निगम तथा जनपद के लोग, (सब के साथ) धर्म का व्यवहार=बराबरी का व्यवहार करने से शरीर छूटने पर, मरने के बाद, सुगति, स्वर्ग लोक को प्राप्त होगे।"—इस प्रकार राजा

को बुद्ध-लीला से धर्मोपदेश दे, कई दिन उद्यान में रह, मृगों के झुंड के साथ, आरण्य में चला गया। उस हिरणी ने भी कर्णिक-पुष्प सदृश पुत्र को जन्म दिया। वह खेलता २ शाखा-मृग के पास चला जाता। उसकी माता उसे वहाँ जाता देख, 'पुत्र! अब से उस के पास ना जा कर (केवल) निग्रोध (-मृग) के पास ही जाना' कह उपदेश देती हुई, यह गाथा कहती—

निग्रोधमेव सेवेय्य न साखमुपसंवसे,
नीग्रोधस्मिं मतं सेय्यो यञ्चे साखस्मिं जीवितंति ॥

(निग्रोध की ही सेवा करे। साख के समीप न जाये। साख (के आश्रय) में जीने की अपेक्षा निग्रोध (के आश्रय) में मरना श्रेयस्कर है)।

निग्रोधमेव सेवेय्य का अर्थ है कि तात! तू, अथवा अपना हित चाहने वाला अन्य कोई निग्रोध की ही सेवा करे=भजे= पास रहे। न साखमुपसंवसे का अर्थ है कि साख-मृग के पास न रहे, पास जाकर रहे, उस के लिये जीवन पीरत्याग करने को तत्पर न हो। निग्रोधस्मिं मतं सेय्यो का अर्थ है कि निग्रोध राजा के चरणों में मरना भी श्रेष्ठ है; अच्छा है, उत्तम है। यञ्चे साखस्मिं जीवितं का अर्थ है, साख (-मृग) के पास जो जीना है, वह श्रेष्ठ नहीं है, अच्छा नहीं है, उत्तम नहीं है।

उस के बाद से अभय-प्राप्त मृग मनुष्यों के खेत खाने लगे। मनुष्य 'यह अभय-प्राप्त मृग हैं' (सोच) न उन्हें मारते थे, न भगाते थे। उन्हों ने राजाङ्गण में इकट्ठे हो, राजा से इस की शिकायत की। राजा ने उत्तर दिया—"मैं ने प्रसन्न चित्त हो, उस निग्रोध मृग-वर को वर दिया है। मैं राज्य छोड़ दूंगा, लेकिन उस प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ूंगा। जाओ, मेरे राज्य में किसी को मृग मारने की छुट्टी नहीं है।"

निग्रोध मृग ने उस समाचार को सुन, मृगों के समूह को एकत्र कर, "अब से दूसरों के खेत न खाये जायें" (कह) मृगों को (खेत खाने से) रोक मनुष्यों को कहलवाया कि अब से लगा कर खेती करने वाले खेती की रक्षा के लिये बाड़ न बांधें। (केवल) खेत को घेर करके पत्तों की झण्डी (=निशानी) बांध दें। उस समय से खेतों में पत्तों की निशानी बांधने की प्रथा आरम्भ हुई। उस के बाद से कोई भी मृग पत्तों की निशानी को न लांघता। (क्योंकि) बोधिसत्त्व ने उन को ऐसा करने का उपदेश दिया था। इस प्रकार मृग यूथ को उपदेश दे, बोधिसत्त्व आयु पर्य्यन्त जीवित रह, कर्मानुसार (परलोक) सिधारे। राजा भी

बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार पुण्य कर्म करके, कर्मानुसार (परलोक) को सिधारा।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ ! मैं केवल अब ही इस स्थविरी तथा कुमार काश्यप का आश्रय (-दाता) नहीं हुआ हूं; पहले भी आश्रय (-दाता) रहा हूं'—इस धर्म देशना को लाकर, चार आर्य-सत्य रूपी धर्म-देशना से तुलना कर, दोनों कहानियां कह, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का साख-मृग (अबका) देवदत्त था। उस की परिषद् (=टोली) भी देवदत्त-परिषद् थी। हिरणी (अबकी) थेरी (=स्थविरा) हुई। पुत्र (अबके) कुमार काश्यप। राजा (अबके) आनन्द (स्थविर)। लेकिन निग्रोध मृग-राजा तो मैं ही था।

(इति) निग्रोध मृग जातक ॥ १२ ॥

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
2.	12.	आमात्य	अमात्य
3.	5.	मुक्त	युक्त
6.	6.	अनाशक्ति	अनासक्ति
,,	12.	अभिज्ञा	अभिज्जा
,,	15.	उस	उन
7.	4.	अभिज्ज	अभिज्जा
8.	22.	राजओं	राजाओं
,,	27.	बहार	विहार
9.	2.	अभिज्ञा	अभिज्जा
,,	10.	कल फूले	फल फूल
,,	20.	कन्दाराओं	कन्दराओं
10.	6.	आधुओं	साधुओं
11.	7.	रक्खा	रक्खा
14.	4.	सम्राट	सम्राट्
19.	7.	आनन्दर	आनन्द
20.	16.	भेरी	मेरी
23.	17.	लगे	लगते
25.	17.	पूति	पूर्ति
30.	17.	नाराजी	नाराजगी
31.	16.	वर्तन	बरतन
35.	2.	सक्षात्कार	साक्षात्कार
36.	27.	प्रकाश	प्रकाश में
37.	25.	हो	हुआ
38.	11.	कर	करें
,,	20.	भेष	भेस
39.	18.	भेरे	मेरे
40.	21.	उत्तनी	उतनी
41.	24,25.	खेत	रवेत
,,	27.	तसरे	तीसरे
,,	,,	अति, देव,	अतिदेव
42.	4,8,19	खेत	रेवत
,,	16.	राज	राजा
46.	6.	अभितयश	आमितयश
,,	13.	दुलभ, उग्रतेज	दुर्लभ उग्रतेज
50.	3.	शिलयायें	शिष्यायें
,,	13.	वर	वे
,,	21.	ऋकुच्छ	ककुसन्ध
51.	1.	विशाषा	विशाखा
56.	20.	लोभहंस	लोमहंस
58.	20.	मान	भान
58.	28.	समय है	समय नहीं है
60.	13.	च्युत ही	च्युत हो
61.	7.	पद्य	पद्म
64.	11.	देवताओं ने शेष	देवता शेष
66.	28.	कल	कुल
67.	3.	उत्तग	उत्तम
70.	8.	सोलहा	सोलह
71.	10.	(वणन)	(वर्णन)
72.	14.	रक	कर
73.	10.	हा	हो
,,	18.	रकाप्र	प्रकार
74.	28.	`ल बूट	बेल बूटों
76.	18.	बढ़ावर्ती	वशवर्ती
78.	17.	फक	फैंक
79.	1.	आवश्यकताय	आवश्यकतायें
80.	15.	के	ने
81.	3.	द्बु	बुद्ध
84.	7.	(गौरवार्य)	(गौरवार्थ)
,,	15.	फर	फिर
88.	13.	विनिष्ट	विनष्ट
93.	19.	पिकट	पिटक
94.	19.	(=लिखते)	(=लिखते)
95.	19.	विरागी	जो विरागी

98.	2.	विहाह	विहार
112.	19.	चूतसुभद्रा	चूलसुभद्रा
115.	4.	तीर्थिक	तीर्थिक*
117.	17.	संधानुस्मृति	संघानुस्मृति
,,	28.	अंगुत्त	अंगुत्तर
118.	20.	गड़ियां	गाड़ियां
,,	21-	विचारते	विचरते
119.	4.	तब उस के	तब उस
,,	17.	उन्हों	उन्हों ने
120.	1.	कान्कार	कान्तार
124,126	10,11	एतदज्जाय	एतदञ्ञाय
,,	28.	अखन	निकाय
126.	27.	तुपित	तुषित
131.	9.	सच्चेक	पच्चेक
,,	15.	'शान्ती'	'शान्ति'
132.	11.	चूलुयस्थापक	चूलुपस्थापक
135.	4.	अनुतये	अनुतपे
,,	8.	तयोगे	तपोगे
,,	28.	आपके नापि	अप्पकेनापि
138.	18.	क	को
,,	26.	हि ी	ही
140.	19.	रागस्सेते	रागस्सेतं
141.	नोट	अनिच्या	अनिच्चा
142.	27.	लेने	होने
144.	24.	पकाने लिये	पकाने के लिये
152.	13.	यह सारी पंक्ति काट देनी चाहिये	
160.	6.	सवास	सहवास
,,	नोट	शषथ	शपथ
161.	8.	दव	देव
,,	19.	अञेपि	अञ्ञेपि
,,	22.	भुञ्ज	मुञ्ज
,,	25.	करुण	करुणा
,,	30.	उन्ह	उन्हें
166.	30.	महानुकुल	महान् कुल
167.	1.	(आदीनन)	(आदीनव)
168.	3.	अञ्जे	अञ्ञे

जातक

मूल पाली भाषा से प्रथम हिन्दी अनुवाद

--:o:--

अनुवादक

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

--:o:--

प्रकाशक

दयानन्द प्रेस,

नङ्गड़ मुहल्ला, लाहौर।

१९३६